उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,
प्रयागराज

(MAYO-102)

हठयोग के सिद्धान्त

प्रथम खण्ड – हठयोग का अर्थ एवं षट्कर्म

इकाई.01– हठयोग का अर्थ एवं उद्देश्य, हठयोग की प्रासंगिकता,

हठयोग में साधक और बाधक तत्व, मठ और मिताहार की अवधारणा

इकाई.02– घटशुद्धि की अवधारणा, हठयोग में शोधन क्रियाओं की महत्ता, शोधन क्रिया– धौति, वस्ति।

इकाई.03– शोधन क्रिया– नेति, नौलि, त्राटक, कपालभाति

द्वितीय खण्ड – हठ ग्रन्थों में आसन

इकाई .04 – आसन की परिभाषा, (नियम एवं सावधानियाँ), सूर्य नमस्कार (मंत्र सहित), सूक्ष्म योग

ताड़ासन, तिर्यक ताड़ासन, कटिचक्रासन, वृक्षासन, गरुणासन

इकाई .05 – सिद्धासन, पद्मासन, भद्रासन, वज्रासन, स्वास्तिकासन

गोमुखासन, वीरासन, गुप्तासन, मयूरासन, मत्स्येन्द्रासन, उष्ट्रासन

गोरक्षासन, पश्चिमोत्तानासन, उत्कट आसन, संकट आसन

इकाई .06 – कुक्कुटासन, कुर्मासन, उत्तानकुर्मासन, मण्डुकासन, उत्तान मण्डुकासन

नौकासन, पवनमुक्तासन, सर्वांगासन, मत्स्यासन, शवासन, शीर्षासन

शलभासन, भुजंगासन, धनुरासन, मकरासन

तृतीय खण्ड– हठ ग्रन्थों में प्राणायाम

इकाई.07 – प्राणायाम की अवधारणा, प्राणायाम की अवस्थायें और चरण।

हठयोग साधना में प्राणायाम करने के लिये पूर्व अपेक्षाएं। योग ग्रन्थों में वर्णित प्राणायाम।

इकाई.08 – नाड़ी शोधन प्राणायाम, सहित प्राणायाम (सगर्भ प्राणायाम, निगर्भ प्राणायाम)

उज्जायी प्राणायाम, भ्रामरी प्राणायाम, मूर्च्छा प्राणायाम, प्लाविनी प्राणायाम।

इकाई.09 – शीतली प्राणायाम, सीत्कारी प्राणायाम, भस्त्रिका प्राणायाम, सूर्यभेदी प्राणायाम, केवली प्राणायाम।

चतुर्थ खण्ड – हठयोग ग्रन्थों में बंध, मुद्रा और अन्य क्रियाएं

इकाई. 10– मूलबन्ध, जालन्धर बंध, उड्डियान बन्ध, महाबन्ध, षट्चक्र।

इकाई. 11– महामुद्रा, विपरीतकरणी, शांभवी मुद्रा, काकी मुद्रा, योग मुद्रा

मातड़िनी मुद्रा, भुजङ्गिनी मुद्रा, तड़ागी मुद्रा, अश्विनी मुद्रा

इकाई. 12 – घेरण्ड संहिता में प्रत्याहार, धारणा और ध्यान की अवधारणा।

हठ प्रदीपिका में नादानुसंधान की अवधारणा और लाभ नादानुसंधान की चार अवस्थाएं

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,
प्रयागराज

एम.ए.वाई.ओ.– 102 (MAYO-102)

संरक्षक एवं मार्गदर्शक

प्रो. सीमा सिंह –कुलपति, उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

विशेषज्ञ समिति –

डा० मीरा पाल प्रभारी निदेशक	स्वास्थ्य विज्ञान विद्याशाखा UPRTOU
डॉ. अतुल मिश्रा, असि, प्रोफेसर (सं.)	दर्शन शास्त्र, UPRTOU
श्री अनुराग सोनी, असि, प्रोफेसर	योग, आर.एम.एल.यू., अयोध्या
श्री अमित कुमार सिंह, असिस्टेंट प्रोफेसर (सं.)	योग, UPRTOU
श्री अनुराग शुक्ला, असिस्टेंट प्रोफेसर (सं.)	योग, UPRTOU
श्री निकेत सिंह, असिस्टेंट प्रोफेसर (सं.)	योग, UPRTOU
सुश्री जूमी सिंह, असिस्टेंट प्रोफेसर (सं.)	गृह विज्ञान, UPRTOU

लेखक –

श्री अमित कुमार सिंह –	सहायक आचार्य (योग) उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

सम्पादक –

डॉ. सुनील कुमार श्रीवास –	सह. आचार्य (योग) मोनाड विश्वविद्यालय एन.सी.आर. क्षेत्र, हापुड़, उत्तर प्रदेश

परिमापक –

डॉ. मीरा पाल –	प्रभारी निदेशक, स्वास्थ्य विज्ञान विद्याशाखा, उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

समन्वयक –

श्री अमित कुमार सिंह – प्रयागराज	सहायक आचार्य (योग) उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,

प्रथम खण्ड परिचय

हठयोग का अर्थ एवं षट्कर्म

परास्नातक योग कार्यक्रम के अन्तर्गत हठयोग के सिद्धन्त के प्रथम खण्ड हठयोग का अर्थ एवं षट्कर्म को तीन इकाईयों में विभाजित किया गया है। जिसमें प्रथम इकाई हठयोग का अर्थ एवं उद्देश्य, हठयोग की प्रासंगिकता, हठयोग में साधक और बाधक तत्व, मठ और मिताहार की अवधारणा के बारे में विस्तृत जानकारी दी गयी है। द्वितीय इकाई में घटशुद्धि की अवधारणा, हठयोग में शोधन क्रियाओं की महत्ता, शोधन क्रिया– धौति, वस्ति के बारे में विस्तृत जानकारी दी गयी है। तृतीय इकाई में शोधन क्रिया– नेति, नौलि, त्राटक, कपालभाँति के बारे में विस्तृत जानकारी दी गयी है।

अतः इन समस्त इकाईयों के माध्यम से आप हठयोग का अर्थ उद्देश्य, महत्व और शरीर शुद्धि की समस्त विधियों को समझ सकेंगे– जो जीवन के परम लक्ष्य की प्राप्ति में सहायक होंगे।

इकाई .01 – हठयोग का अर्थ एवं उद्देश्य, हठयोग की प्रासंगिकता, हठयोग में साधक और बाधक तत्व, मठ और मिताहार की अवधारणा

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 हठयोग का अर्थ एवं परिभाषायें

1.2.1 परिभाषा

1.3 हठयोग का उद्देश्य

1.4 हठयोग की प्रासंगिकता

1.4.1 हठयोग का महत्व

1.5 हठयोग में साधक–बाधक तत्व

1.5.1 साधक तत्व

1.5.2 बाधक तत्व

1.6 मठ

1.7 मिताहार की अवधारणा

1.7.1 भोजन की मात्रा

1.7.2 भोजन की गुणवत्ता

1.7.2.1 पथ्य आहार

1.7.2.2 अपथ्य आहार

1.8 सारांश

1.9 अभ्यास प्रश्न

1.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन करने के उपरांत शिक्षार्थी निम्न बिन्दुओं को जान सकेंगे।

1. हठयोग के अर्थ एवं परिभाषा को परिभाषित कर सकेंगे।
2. हठयोग के वर्तमान महत्व को जान सकेंगे।
3. हठयोग के विभिन्न तत्वों के बारे में अध्ययन कर सकेंगे।
4. योग मठ एवं मिताहार की अवधारणा को स्पष्ट कर सकेंगे।
5. योग मार्ग में साधक–बाधक तत्वों को जान सकेंगें।

1.1 प्रस्तावना

भारतीय चिंतन में अनवरत आत्म ज्ञान तथा सत्य की खोज पर वैचारिक प्रायोगिक मंथन होता रहा है योग साधना के क्षेत्र में हठ योग साधना नाथ पंथ की एक अनुपम और मौलिक देन है। योग वास्तव में पढ़ने सुनने मात्र तक ही सीमित नहीं है वरन अधिक उससे गहरा अनुभवात्मक है। इस इकाई में शिक्षार्थी अध्ययन के बाद हठयोग के अर्थ, परिभाषा, उद्देश्य व महत्व, साधक बाधक तत्व, मठ, मिताहर, इनके विभिन्न पहलुओं के बारे में सम्यक विश्लेषण कर सकेंगे।

1.2 हठयोग का अर्थः–

श्रीआदिनाथाय नमोऽस्तु तस्मै येनोपदिष्टा हठयोगविद्या।
विभ्राजते प्रोन्नतराजयोगमारोढुमिच्छोरधिरोहिणीव।। ह0प्र0 1/1

सर्वप्रथम आदिनाथ को नमस्कार है जिन्होंने हठयोग विद्या की शिक्षा दी, जो राजयोग के उच्चतम शिखर पर चढ़ने की इच्छा रखने वाले अभ्यासियों के लिये सीढ़ी के समान है।

उपरोक्त श्लोक के आधार पर यह कहा जा सकता है कि भगवान शिव, जिन्हें यहाँ आदिनाथ कहा गया है। सर्वप्रथम अपनी पत्नी पार्वती को हठयोग की शिक्षा दी। श्री स्वात्माराम जी ने हठप्रदीपिका के माध्यम से हठयोग के आदिवक्ता परम्शिव को माना है। हठयोग का उद्भव तंत्रयोग से

हुआ है। ऐसा माना जाता है कि भगवान शिव तंत्रयोग और हठयोग के आदि प्रणेता थे और उन्हीं से इन विद्याओं का अविर्भाव हुआ।

हठ दो शब्दों से मिलकर बना हुआ है। ह और ठ। ह से तात्पर्य हकार अर्थात् सूर्य स्वर तथा ठ से तात्पर्य ठकार अर्थात् चन्द्र स्वर अर्थात हठयोग का तात्पर्य सूर्य स्वर एवं चन्द्र स्वर का एकीकरण।

हकारः कथितः सूर्य ठकारचन्द्र उच्यते।

सूर्य चन्द्रंमसोर्योगात् हठयोग निगधते।। –सिद्ध सिद्धांत पद्धति

हकार सूर्य स्वर और ठकार से चंद्र चलते हैं। इन सूर्य और चंद्र स्वर को प्राणायाम आदि का विशेष अभ्यास कर प्राण की गति को सुषुम्नावाहिनी कर लेना ही हठयोग है।

ह अर्थात हमं, पिगलां, सूर्य स्वर, ग्रीष्म, पित्त, दिन, शिव, ब्रह्म तथा दक्षिण होता है। इसी प्रकार **ठ** अर्थात् ठम्, इड़ा, नाड़ी चन्द्र स्वर, शीत, कफ, रात्रि, शक्ति, जीव, वाम होता है।

हठयोग में जब इड़ा और पिंगला नाड़ी वाम और दक्षिण स्वर जब एक समान चलने लगे तो सुषुम्ना निरन्तर चलने लगती है तो शरीर में सूक्ष्म रूप में विद्यमान कुण्डलिनी शक्ति का जागरण होता है। जब कुण्डलिनी छः चक्रो का भेदन करती हुई सहस्त्रार में जाकर परमशिव से मिलती है तो आध्यात्मिक अर्थों में यही हठयोग है।

हठयोग शरीर एवं मन के सन्तुलन द्वारा राजयोग प्राप्त करने की एक शाखा है।

1.2.1 परिभाषा

हठयोग की परिभाषा देते हुये ग्रन्थों में कहा गया है–

श्रीमद् भगवद्गीता के अनुसार–

अपाने जुहहति प्राणं प्राणेअपानं तथा परे।

प्राणपानगती रूद्धवा प्राणायाामपरायणाः।। श्रीमद्भगवद्गीता 4.29

अर्थात प्राण और अपान वायु को प्राणायाम के अभ्यास के द्वारा मिलकर सम कर लेना हठयोग है।

शिव संहिता के अनुसार–

प्राणपानौ नाद बिन्दु जीवात्मा, परमात्मनौ।

मिलित्वा घटते यस्मात्तस्माद वै घट उच्यते।।

अर्थात

जिसमें प्राण और अपान, नाद और बिन्दु, जीवात्मा और परमात्मा एक हो जाता है। उसी को हठयोग कहते है।

योग ग्रन्थों में पांच प्राणों की चर्चा की गई है– उदान, प्राण, समान, अपान और व्यान पांच प्राण है। ये शरीर के अलग–अलग स्थानों के कार्यों एवं ऊर्जाओं का नियत्रंण और नियमन करते है। उदान मुख में, प्राण हृदय में, समान नाभि में, अपान गुहय प्रदेश में, व्यान सम्पूर्ण शरीर के क्रियाकलापों का नियन्त्रण करता है। हठयोग में इसी प्राण को प्राणायाम के माध्यम से मिलाकर मन को नियन्त्रित किया जाता है।

हठयोग में जीवात्मा और परमात्मा के बीच सारे बन्धन व कारण हट जाते है। योग और आयुर्वेद विज्ञान में डॉ0 शिव चरण योगी कहते है कि स्थूल शरीर के माध्यम से सूक्ष्म शरीर को प्रभावित करके चित्तवृत्तियों का निरोध करना ही हठयोग है।

उपर्युक्त परिभाषा से निम्न तथ्य सामने आते है–

- सूक्ष्म शरीर को स्थूल शरीर के माध्यम से प्रभावित किया जा सकता है।
- चित्त वृत्तियों का निरोध सूक्ष्म शरीर को प्रभावित करके किया जा सकता है।

  इस प्रकार कहा जा सकता है कि स्थूल शरीर अर्थात इन्द्रिय शरीर का सम्बन्ध सूक्ष्म शरीर अर्थात विचार शरीर से है। इन्द्रिय चक्षु, स्वाद, कर्ण, घ्राणेन्द्रिय एवं जननेन्द्रिय है। इन पांचों में दो इन्द्रियां मुख्य रूप से योग में प्रमुख भूमिका निभाती है वे है स्वादेन्द्रिय और जननेन्द्रिय। यदि दोनों को संयमित किया जाय तो योग सिद्ध को आसानी से जीता जा सकता है। यदि विचार सात्विक हों तो इन्द्रिया संयमित रहती है तथा यदि सात्विक आहार–विहार किया जाय तो मन संयमित रहता है। हठयोग को करने से सबसे पहले शरीर का मल शुद्ध होता है और फिर मन शुद्ध होता है।

तंत्रशास्त्र के अनुसारः–

मूलाधार में स्थित शक्ति का सहस्त्रार में शिव से मिलन ही हठ योग है। योगशास्त्रों की यह धारणा है कि मूलाधार में शिवलिंग के चारों ओर शक्ति साढ़े तीन फेरे लपेटे हुये सोई हुई है एवं योग के माध्यम से उसे जगाकर षटचक्रों का भेदन कर जब सहस्त्रार में शिव से मिलेगी तो ही मानव मोक्ष को प्राप्त होगा।

1.3 हठयोग का उद्देश्य

अशेषतापतप्तानां समाश्रयमठो हठः।

अशेषयोगयुक्तानामाधारकमठो हठः।। ह0प्र0 1/10

हठयोग मानसिक एवं आध्यात्मिक विकास के लिये, जिज्ञासु लोगों के लिये एवं भवताप से त्रस्त लोगों के लिये है।

हठविद्या परं गोप्या योगिनां सिद्धिमिच्छताम्।

भवेद वीर्यवती गुप्ता निर्वीर्या तु प्रकाशिता।। ह0प्र0 1/11

योग में सिद्धि की इच्छा रखने वाले साधकों को यह हठविद्या नितान्त गुप्त रखनी चाहिये। गुप्त रहने पर यह शाक्तिशाली होती है। तथा प्रकट करने से यह शक्तिहीन हो जाती है। इसलिये इस विद्या का अभ्यास एकान्त में करना चाहिये जिससे अधिकारी साधन को देखकर अनाधिकारी इसका अभ्यास करने में हानिग्रस्त न हो जाये। हठयोग का उद्देश्य व्यक्ति के स्वास्थ्य संरक्षण, रोग से मुक्ति, सुप्त चेतना की जागृति, व्यक्ति विकास तथा आध्यात्मिक उन्नति है।

स्वास्थ्य संरक्षण–

शरीर स्वस्थ रहे, रोगग्रस्त न हो, इसके लिये हम हठयौगिक अभ्यासों का आश्रय ले सकते है। हठयोग में 'आसनेन भवेद् दृढम', षटकर्मणा शोधनम् आदि कहकर आसनों के द्वारा मजबूत शरीर तथा षटकर्मों के द्वारा सभी दोषों का शमन करने की बात कहीं गई हैं। विभिन्न आसनों के अभ्यास से शरीर को मजबूत बनाया जा सकता है। शरीर में गति देने में सभी अंग युक्त बने रहे है तथा शारीरिक कार्य क्षमता में वृद्धि होती है। जिससे शरीर स्वस्थ रहता है। घेरण्ड संहिता में सप्त साधनों का वर्णन इसी पक्ष को लेकर किया है एवं सप्त साधनों में षटकर्म स्वास्थ्य में उन्नति लाने के दृष्टिकोण में बहुत महत्वपूर्ण कदम है–

धौतिर्वस्तिस्तथा नेतिः लौलिकी त्राटकं तथा।

कपालभातिश्चैतानि षट्कर्माणि समाचरेत्।। –घे0 सं0 1/12

अर्थात धौति (सफाई करना), वस्ति (उपस्थ श्रेत्र की सफाई), नेति (आँख, नाक, गले की शुद्धता के लिये, लौलिकी (आँतों की सफाई के लिये) एवं त्राटक और कपाल भाति छः कर्म है। प्राणिक ऊर्जा एवं प्रतिरोधक क्षमता का विकास हठयौगिक क्रियाओं से होता है। आसनों से शरीर में दृढ़ता आती है। उपनिषदों में जो आसन बताये गये है वे ध्यानात्मक आसन है। आसन करने से व्यक्ति में सजगता आती है। स्वास्थ्य संरक्षण हठयोग के माध्यम से आज के युग की मांग बनती जा रही है। उनका जीवन

शारीरिक और मानसिक रूप से थका हुआ है। मन और शरीर सामंजस्य बनाने में हठयोग महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

रोग से मुक्तिः– हठयोग का उद्देश्य शरीर व मन को रोगमुक्त करना है। कहा भी गया है–

कुर्यान्तदासनं स्थैर्यमारोगयं चाड़ गलाघवम्

आसन शरीर और मन की स्थिरता, आरोग्यता और हल्कापन लाता है। हठयोग के अभ्यास से शरीर और मन दोनों स्वस्थ रहते हैं। मन से शरीर का सीधा सम्बन्ध है एवं हठयोग शरीर को साधकर मन को साधने की कला है।

मत्स्येन्द्रपीठं जठरप्रदीप्तिं प्रचण्डरूग्मण्डलखण्डनास्त्रम्।

अभ्यासतः कुण्डलिनीप्रबोधं चन्द्रस्थिरत्वं च ददाति पुसांम्।। ह0प्र0 1/27

मत्स्येन्द्रासन का अभ्यास करने से जठराग्नि प्रदीप्त होती है। यह रोगों को नष्ट करने में अस्त्र के समान है। इससे कुण्डलिनी जाग्रत होती है तथा चन्द्रमण्डल स्थिर होता है।

कासश्वासप्लीहकुष्टं कपरोगाश्च विशतिः।

धौतिकर्मप्रभावेण प्रयान्त्येव न संशयः।।

धौति से कास, श्वास, प्लीहा सम्बधी रोग, कुण्ठ रोग, कफदोष नष्ट हो जाते है। आधुनिक युग में जैसे जैसे विज्ञान उन्नति कर रहा है। वैसे वैसे रोग भी जटिल होते जा रहे है जैसे मानसिक तनाव, मधुमेह, प्रमेह, उच्चरक्त चाप, निम्नरक्त चाप, साइटिका, कमरदर्द आदि रोगों को हठयोग के माध्यम से दूर किया जा सकता है।

सुप्त चेतना की जाग्रतिः– हठयोग करने से शरीर को नियंत्रित किया जा सकता है। हठयोग प्राणों को उत्थान कर चेतना के नये आयामों को सामने लाता है व मानव मन को शक्तिशाली व प्रतिभावान बनाता है। प्राणायाम, ध्यान, धारणा के अभ्यास से सुप्त चेतना की जाग्रति होती है।

व्यक्तित्व विकास– हठयोग के अभ्यास करने से व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास स्वतः हो जाता है। शरीर गठीला, निरोग, चुस्त होकर व्यक्तित्व का विकास करता है। हठयोग को करने से प्राणी में मृदुलता, आचरण में पवित्रता, व्यवहार में सादगी, स्नेह, सौमनस्य आदि का समावेश हो जाता है।

आध्यात्मिक उन्नति– जो लोग योग द्वारा साधना में सफल होकर साक्षात्कार करना चाहते है। उनके लिये योग के उत्तम साधन है। हठयोग का उद्देश्य आध्यात्मिक उत्थान है। यह शारीरिक, मानसिक

रूप से सम्पन्न तो करता ही है परन्तु सर्वोच्च उद्देश्य आध्यात्मिक उन्नति ही है। सम्पूर्ण हठयोग को हं और ठं का सन्तुलन कहा जाता है। यही सन्तुलन आध्यात्मिक विकास की सीढ़ी है।

प्राणायाम से मानसिक विकार दूर होते है। मन अपनी इच्छानुकूल गति न करके साधक के वश में हो जाता है और साधक का अन्तःकरण पवित्र होने के कारण उसमें दोषों या विकारों के लिये कोई स्थान नहीं बचता है। इसी कारण ऐसा साधक संसार में एकत्व की भावना रखता है। वह न किसी से राग, न किसी से द्वेष की स्थिति प्राप्त होने पर सब पापों से मुक्त होकर अध्यात्म मार्ग पर अग्रसर हो जाता है। ऐसा साधक ही संसार का आभूषण बनकर सबके हृदयों पर राज करता है।

आध्यात्मिक दृष्टिकोण से प्राणायाम का उद्देश्य चित्त को स्थिर करके कैवल्य को प्राप्त करना होता है।

चले वाते चलं चित्तं निश्चले निश्चलं भवेत्।

योगी स्थाणुत्वमाप्नोति ततो वायुं निरोधयेत्।। ह0प्र0 2/2

अर्थात् चित्त की चंचलता को समाप्त करने के लिये प्राणायाम का प्रयोग किया जाता है। साधना की प्रारम्भिक अवस्था में आसन का अभ्यास दृढ़ हो जाने के बाद चित्त को नियंत्रित करने में प्राणायाम की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। **ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्।** प्राणायाम के अभ्यास से विवेकज्ञान पर पड़े अविद्या रूपी अज्ञान के आवरण को नष्ट किया जाता है और **धारणासु च योग्यता मनसः।** चित्त में धारणा, ध्यान और समाधि की योग्यता उत्पन्न हो जाती है जिससे कैवल्य की प्राप्ति संभव हो सकती है।

प्राणायाम मनुष्य के लिये दैवी–वरदान है जिसका उपयोग करके वह संसार में रहकर सफलतापूर्वक जीवन–यापन कर सकता है। दोषों के नष्ट होने तथा सुसंस्कारों के अर्जन से वह उच्चतर योनियों में जन्म धारण करेगा और असीम आनन्द का उपभोग करेगा।

1.4 हठयोग की प्रासंगिकता

योग की परम्परा में हठयोग का महत्वपूर्ण स्थान है। पतंजलि के अष्टांग योग के साथ जिस योग विद्या ने मानव जाति का समग्र विकास किया, उन्हीं में से एक लोकप्रिय एवं अति महत्वपूर्ण नाम है–हठयोग।

हठयोग वस्तुतः राजयोग का ही अभिन्न अंग है। यह एक ऐसी प्रणाली है, जिसके माध्यम से न केवल शरीर एवं मन को स्वस्थ बनाया जा सकता है, वरन इनके पारस्परिक सम्बन्धों को भी ठीक प्रकार से समझा जा सकता है। इसके निरन्तर एवं नियमित अभ्यास द्वारा अपना खोया हुआ स्वास्थ्य एवं

सौन्दर्य प्राप्त किया जा सकता है। मानसिक शक्ति को प्राप्त करके सुप्त क्षमताओं को जाग्रत किया जा सकता है।

हठयोग के दीर्घकालीन अभ्यास से अनन्त संकल्प शक्ति के धनी बनकर राजयोग के सर्वोच्च शिखर पर आसीन हो सकते है।

यदि कोई साधक सभी योगों में कुशलता प्राप्त करना चाहता है, तो उसे हठयोग का अभ्यास करना चाहियें। क्योंकि सभी प्रकार की सांसारिक एवं आध्यात्मिक उपलब्धियों को स्वस्थ शरीर एवं स्वस्थ मन रूपी साधन के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। रोगग्रस्त शरीर एवं मन के द्वारा नही। आयुर्वेद में कहा गया है–

''धमार्थकाममोक्षाणां आरोग्यं मूलमुप्तमम्''। चरक संहिता सूत्र 1/24

धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की सिद्ध के लिये शरीर का स्वस्थ रहना अत्यन्त आवश्यक है। रोगी शरीर के द्वारा किसी भी प्रकार के पुरूषार्थ की प्राप्ति नहीं हो सकती। स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन का निवास होता है।

आज की मानवता जो विविध प्रकार की शारीरिक, मानसिक, भावात्मक समस्याओं से ग्रस्त है, हठयोग उनके लिये वरदान है। सार्वभौमिक शान्ति और समता स्थापित करने के लिये हठयोग एक प्रभावशाली साधन है, क्योंकि बाहरी संसार की शान्ति व्यक्ति के अन्तर्मन की शान्ति पर निर्भर है। जब तक प्रत्येक हृदय में योगाभ्यास के द्वारा क्रोध, द्वेष, लोभ, कामना, अज्ञान और अन्य ऋणात्मक वृत्तियों को समाप्त नहीं की जाती तब तक संसार में सुख, शान्ति और समता लाने के सभी बाहरी प्रयास व्यर्थ और निरर्थक सिद्ध होगें।

षट्कर्मों की महत्ता– हठयोग में षटकर्म के अन्तर्गत छः शोधन क्रियायें है।

क्रियाओं– धौति, वस्ति, नेति, नौलि, त्राटक एवं कपालभाँति से है। जो शरीर से विजातीय द्रव्यों को बाहर निकालकर, शरीर को स्वस्थ रखते है। प्रत्येक शोधन क्रिया शरीर के एक विशिष्ट संस्थान पर अपना प्रभाव डालती है और उसकी कार्यक्षमता को बढ़ाती है।

धौति क्रिया– धौति क्रिया पाचन संस्थान को शुद्ध करती है। श्वास रोग, कफरोग, रक्त विकार, एलर्जी, मोटापा, कब्ज रोगों में यह क्रिया विशेष उपयोगी है।

वस्ति क्रिया– वस्ति क्रिया से मलाशय एवं बड़ी आंत की सफाई होती है। इसके अभ्यास से प्लीहा, कब्जरोग, वातरोग इत्यादि विकारों को दूर किया जा सकता है।

नेति क्रिया– इसके अभ्यास से नाक, कान एवं गले की सफाई हो जाती है।

नौलि क्रिया– पाचन एवं प्रजनन संस्थान की समस्याओं के निराकरण में यह क्रिया मुख्य रूप से उपयोगी है।

त्राटक– आंख एवं तंत्रिका तंत्र से सम्बन्धित विकारों को दूर करने के लिये त्राटक का अभ्यास किया जाता है। इस प्रकार षटकर्मों के नियमित अभ्यास से विभिन्न प्रकार के रोगों से दूर रहा जा सकता है।

आसन का महत्व– स्थिर एवं सुखपूर्वक स्थिति में बैठना आसन है। आसनों के नियमित अभ्यास से शरीर दृढ़ एवं हल्का बन जाता है। विभिन्न प्रकार के आसन हमारे शरीर के विभिन्न संस्थानों जैसे कि मांसपेशीय संस्थान, पाचन संस्थान, तंत्रिका संस्थान, रक्त परिसंचरण संस्थान, प्रजनन संस्थान इत्यादि पर अनुकूल प्रभाव डालते है।

1.4.1 प्राणायाम का महत्व–

मन एवं इन्द्रियों को नियंत्रित करने के लिये जिस प्राणशक्ति की आवश्यकता होती है, प्राणायाम के अभ्यास से उस शक्ति को संरक्षित किया जाता है। प्राणायाम के अभ्यास से नाड़ियां शुद्ध होती है। शरीर में हल्कापन आता है। तनाव, चिन्ता, भय, शंका इत्यादि को दूर कर मन में उत्साह, उमंग का संचार करने में प्राणायाम की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

ध्यान का महत्व–

ध्यान, अन्तःकरण की साधना का नाम है, ध्यान के माध्यम से प्रसुप्त मानसिक शक्तियों का जागरण होता है तथा मानसिक असन्तुलन एवं भावनात्मक विक्षोभ से उत्पन्न होने वाले रोग दूर होते हैं।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि हठयोग के नियमित निरन्तर अभ्यास से व्यक्ति यांत्रिक जिन्दगी में बिना एलौपैथी दवाइयों के न केवल अनेक रोगों को दूर कर सकता है वरन स्वास्थ्य का संरक्षण भी कर सकता है।

जब शरीर स्वस्थ होगा तो मन भी स्वस्थ होगा और जब व्यक्ति स्वस्थ शरीर एवं स्वस्थ मन के साथ जिस भी कार्य को करेगा, उसी कार्य में सफलता उसके कदम चूमेगी। हठयोग का मुख्य कार्य शरीर का शोधन करना और नाड़ियों के मल दोषों को दूर कर उसे शुद्ध करना। हठयोग पेट के तमाम गड़बड़ियों को दूर करता है। स्नायु तथा मांसपेशियों में शक्ति एवं स्फूर्ति प्रदान करता है।

1.5 हठयोग– साधक तत्व एवं बाधक तत्व

योग को प्राचीन काल से कला और विज्ञान माना जाता है। प्राचीन काल में योगियों को वैज्ञानिक माना जाता था क्योंकि वो न तो केवल अध्यापक थे बल्कि शरीर विज्ञान और चेतना को जागृत करने में भी निपुण थे। हठयोग को मात्र शारीरिक अभ्यास नहीं अपितु महत्वपूर्ण ऊर्जा को जगाने वाला भी अभ्यास कहा गया है। जैसे प्राण, चक्र तथा कुण्डलियाँ। हठयोग को सभी उच्च श्रेणियों के योग का आधार माना गया है।

1.5.1 साधक तत्वः–

स्वात्माराम के अनुसार, 'हठयोग का मुख्य उद्देश्य आत्मबोध का मार्ग प्रशस्त करना है। इस प्रकार कहा जाता है कि हठयोग वह कुंजी है। जिसमे आत्मबोध के द्वार खोलने की सामर्थ्य है हठयोग प्रदीपिका मे इसकी व्याख्या की गई है जो इस प्रकार है।

उत्साहात् साहसाद्धैर्यात्तत्त्वज्ञानाच्च निश्चयात्।

जनसंगपरित्यागात्,षड्भिर्योगः प्रसिद्धयति।। हठयोग प्रदीपिका 1/16

उत्साह साहस धैर्य यथार्थज्ञान संकल्प तथा लोकसंग का परित्याग इन छः से योग की सिद्धि होती है अर्थात ये योग के साधक तत्व है। जो योग साधना बनाते है।

उत्साहः–

उत्साह एक सकारात्मक अभिवृति है जो आध्यात्मिक वृद्धि के लिए अति आवश्यक है। जब प्रवीणता पाने को अपना उद्देश्य मान लेते है तब उत्साह के स्तर को बनाये रख सकते है। उत्साह से हम अपनी साधना मे नियमितता को बनाए रख सकते है। हर दिन जैसे साधना का पहला दिन लगना चाहिए तब जाके साधना रोमांचकारी और स्फूर्तिदायक लगेगी।

साहसः–

ध्यान के समय अच्छे बुरे खराब या भ्रष्ट विचार या कई तरह के संवेदनाए उठते रहते है। साहस वह क्षमता है जिसके उपयोग से विचारो को स्वीकार करते हुये आगे बढ सकते है। दृढता और आस्था से साहस और मजबूत होता है।

धैर्यः–

व्यक्ति को अभ्यास नियमित रूप करना चाहिये जैसे परिस्थितयॉ कैसी भी हो भले ही बहुत वर्षो से आपका अभ्यास चल रहा हो जब तक आपका लक्ष्य पूर्ण नही हो जाता साधना रुकनी नही चाहिये।

यथार्थज्ञानः–

व्यक्ति को अपने जीवन मे जो भी कार्य करता है वह साधना मे सहायक होना चाहिये सही समझ रखना या ठीक से अन्तर योग मे सफलता प्राप्त करने का तीसरा मापदण्ड है। एक साधक जीवन से आवश्यक पहलुओं और व्यर्थ चीजों मे अन्तर करना आना चाहिये यदि हमारे लिए हानिकारक सिद्ध हो रहा है तो हमे वह छोड़ देना चाहिये।

निश्चयः–

सभी प्रकार की परिस्थितियों मे नियमित अभ्यास का संकल्प गुरू मे अटूट श्रद्धा होना एक साधक के लिये सबसे महत्वपूर्ण साधन है गुरू जो कहें और करें केवल इन बातो मे पूर्ण विश्वास रखने से साधक को उत्तम अनुभूतियॉ होने लगती है गुरू पर श्रद्धा से कुछ भी करना सम्भव है। जैसे विवेकानन्द जी, शिवाजी

जनसंग परित्यागः–

जितना कम आप दूसरो से उलझेंगे उतना अधिक समय आप अपनी साधना के लिये दे पायेगें और अपने आंतरिक ज्ञान की वृद्धि कर पायेगे। साथ ही किसी को कम या छोटा समझना एक साधक के लिए अनुचित है परन्तु जब तक साधक का शारीरिक,मानसिक भावनात्मक और आध्यात्मिक शक्तियॉ विकसित नही हो जाती तब तक समाजिक आदान प्रदान और नकारात्मक प्रभावो से दूर रहना ही बेहतर है।

1.5.2 बाधक तत्वः–

अत्याहारः प्रयासश्च प्रजल्पो नियमाग्रहः।

जनसङ्गश्च लौल्यं च षडभिर्योगो विनश्यति।। ह0प्र0 1/15

अधिक भोजन, अधिक श्रम, अधिक बोलना, नियम पालन में आग्रह, अधिक लोग सम्पर्क तथा मन की चंचलता ये छः योग को नष्ट करने वाले तत्व है अर्थात् योगमार्ग में प्रगति के लिये बाधक है।

(1) अत्याहारः– अपनी भूख से अधिक भोजन ग्रहण करना अत्याहार कहलाता है। अत्याहार, साधना के मार्ग में मुख्य बाधक है। जब शरीर भोजन से अतिभार होता है तब सुस्ती और नीरसता हमें पकड़ लेता है। कुछ समय के बाद आम बनना शुरु हो जाता है और इस शरीर तंत्र को अवरोध करता है। जो

ऊर्जा साधना से उत्पन्न होती है, साधक को गहराई में लेकर जाने के बजाय, आम को कम करने में और बिमारी को दूर करने में दूर हो जाती है। अत्याहार और उसके दुष्परिणामों से बचकर, साधक साधना में वृद्धि पा सकता है।

(2) अधिक–प्रयासः– क्षमता से अधिक शारीरिक व मानसिक कार्य करने से ऊर्जा तंत्र पर दबाव पड़ता है जिससे दोने ऊर्जाओं में असन्तुलन हो जाता है। एक हठयोगी को अपनी ऊर्जा को बचाए रखना चाहिये।

(3) प्रजल्पः– व्यर्थ की बातचीत करना, अर्थात वाचाल या अतिभाषित प्रजल्प कहलाता है। साधक को व्यर्थ की बातचीत में नहीं पड़ना चाहिये इससे विवाद होता है और समय नष्ट होता है अधिक बात करना, निरर्थक चर्चाएं करना, अतिआवश्यक ऊर्जा को समाप्त कर देता है।

(4)नियमाग्रहः– पारम्परिक नियमों एवं कानूनों का पालन करना नियमाग्रह कहलाता है नियमों का पालन करना अनुशासन है परन्तु परिस्थिति के अनुसार यदि खुद को ना ढाला जाये, तो मन संकीर्ण हो जाता है। योग का तात्पर्य है चेतना को फैलाना ना कि उसे सीमित करना, एक योगी का मन खुला होना चाहिए जो किसी भी परिस्थिति के अनुसार ढलने के लिये तत्पर हो।

जनसंगः–

लोगों की संगत में रहना जनसंग कहलाता है। यह योगी के लिये बाधा उत्पन्न करता है, क्योंकि जनसंग में रहने से वासना, क्रोध, प्रेम, रोष, कष्ट आदि भावनाएँ उत्पन्न हो जाती है। योगाभ्यास का प्रदर्शन भी जनसामान्य के मध्य नहीं करना चाहिये, सदैव एकान्त स्थान में स्थित होकर साधना करनी चाहिये।

लौल्यं (चंचल मन):–

लौल्य शब्द का अर्थ हे चंचलता, योगाभ्यासी को सदैव चंचलता रहित रहना चाहिये। चंचल मन अभ्यास में बाधक होता है। जब शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक असंतुलन हो तब ऊर्जा बिखरने लगती है। अस्थिरता का मतलब डगमागाती हुई इच्छाशक्ति भी है। अदृढ़ता और अव्यवस्थित जीवनशैली, शरीर में असंतुलन को दर्शाता है।

यह छः बाधक तत्व हठयोगाभ्यास में विशेष रुप से हानि पहुँचाते है। इन बारह कारणों में प्रथम छः योगाभ्यास के साधक तथा बाद के छः कारण योग साधना के बाधक है। अतः योगाभ्यासी को सदैव उपर्युक्त बातों का ध्यान रखते हुये योग साधना करनी चाहिये क्योंकि एकाग्र मन एवं कठिन अभ्यास के द्वारा ही धीरे–धीरे योग साधना में पारंगता प्राप्त हो सकती है।

1.6 मठ

योगाभ्यास में पूर्ण सफलता प्राप्त करने के लिये हमें कई बातों को ध्यान में रखना पड़ता है जैसे उचित स्थान, समय वातावरण, आहार आदि क्योंकि इन सबका हमारे योगाभ्यास की सफलता में काफी योगदान रहता है। विध्नरहित स्थान जैसे शोरगुल से दूर खुली हवा में योग का अभ्यास करना काफी अच्छा हो सकता है। उचित समय एवं वातावरण का भी योगाभ्यास में महत्वपूर्ण स्थान है। योगाभ्यास में आहार का महत्व तो विशेष रूप से है, क्योंकि उचित आहार–विहार ही हमारी योग साधना को उच्च शिखर पर पहुँचा सकता है। कहा भी गया है–

जैसा खायें अन्न वैसा बने मन।

वह स्थान जहाँ साधक साधना प्रारम्भ करता है उसे मठ कहते है। साधनात्मक जीवन में स्थान का बहुत महत्व है प्राचीन भारतीय योग परम्परा में ऋषियों ने ऐसे स्थानों का चयन किया जहाँ उच्च आध्यात्मिक ऊर्जा का प्रभाव था। इसलिये ऋषिगण पहले साधना के लिये हिमालय का चयन करते थे, क्योंकि वहाँ ध्यान लगाने की आवश्यकता नहीं पड़ती थी अपितु ध्यान स्वतः ही लग जाता था। हिमालय क्षेत्र में जाकर साधना आज के युग में संभव नहीं है, परन्तु खुले एवं शान्त स्थान का चुनाव करना निश्चित ही उपयोगी एवं आवश्यक है।

वह स्थान जहाँ निम्न शक्तियों को उर्ध्व बनाया जा सकता है, वह स्थान योग मठ कहलाता है। योगमठ दो शब्दों से मिलकर बना है।

योग और मठ–

योग– जीवन के उद्देश्यों को पूर्ण करने के लिये संकल्पपूर्वक किया गया कार्य योग है।

मठ– जहाँ मन का ठहराव हो।

इस प्रकार योगमठ वह स्थान है, जहाँ योग की साधना की जाती है। वह स्थान जो आध्यात्मिक शक्तियों सें भरा हो, जहाँ योगी शान्त होकर योगाभ्यास कर सके।

अब प्रश्न उठता है कि योगमठ कहाँ बनाया जाय।

घेरण्ड संहिता के अनुसारः–

सुदेशे धार्मिके राज्ये सुभिक्षे निरूप्रद्रवे।

कृत्वा तत्रैकं कुटीर प्रचीरैः परिवेष्टितम्।। –घे0सं0 5/5

ऐसा सुन्दर धार्मिक स्थान जहाँ भोजन के लिये खाद्य पदार्थ सहजता से उपलब्ध हो, और वहाँ किसी प्रकार का उपद्रव न हो और कुटी के चारों तरफ चारदीवारी हो।

अभ्यास सुन्दर धार्मिक स्थान पर करना चाहिये, दूर देश अथवा जंगल आदि में कोलाहल पूर्ण वातावरण में नहीं करना चाहिये। दूर जंगल में अभ्यास करने से असुविधा होगी। जंगली जानवरों आदि का भय बना रहेगा। अतः महर्षि घेरण्ड ने सुन्दर धार्मिक स्थल की बात कही है। भोजन के लिये बहुत अधिक परिश्रम करने पर कहीं पूरा ध्यान केवल भोजन को अर्जित करने पर ही न रह जाये, अतः कहा गया है कि भोजन की सुलभता पर भी ध्यान दिया जाये।

स्वामी विज्ञाननन्द सरस्वती के अनुसारः– योग के लिये एकान्त एवं पवित्र स्थान का प्रबन्ध होना चाहिये। जहाँ तक संभव हो अभ्यास एक ही जगह पर करना चाहियें।

श्रीमदभगवदगीता के अनुसारः–

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः

नात्युच्छितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम्। श्रीमद्भगवद्गीता 6.11

शुद्ध भूमि पर कुश, मृगछाल और वस्त्र बिछे हो। जो न अधिक ऊँचा हो और न अधिक नीचा हो। वहाँ अपने आसन को स्थापित करना चाहिये।

योगमठ कहाँ न बनायें–

घेरण्ड संहिता के अनुसार

दूरदेशे तथाऽरण्ये राजधान्यां जनांतिके।

योगारम्भं न कुर्वीत कृतश्चेत्सिद्धिहा भवेत्।। –घे0सं0 5/3

दूर देश में, जंगल के बीच में, राजधानी में, जहाँ लोगों का शोरगुल हो, लोगों का आना जाना अधिक हो, ऐसे स्थान पर योगाभ्यास करने से सिद्धि की प्राप्ति नहीं होती है।

अविश्वासं दूरदेशे अरण्ये रक्षिवर्जितम्।

लोकारण्ये प्रकाशश्च तस्मात्त्रीणिविवर्जयेत्।। –घे0सं0 5/4

परदेश में किसी पर विश्वास नहीं किया जा सकता, जंगल में असुरक्षित रहेंगे और राजधानी मे लोगों के अत्यधिक आने–जाने से प्रकाश और कोलाहल रहता है। अतः उपर्युक्त तीन स्थानों पर योगाभ्यास करना वर्जित है।

अतः योग साधना का अभ्यास दूर देश या दूर जंगल या राजधानी अर्थात् जनता के बीच नहीं करना चाहियें।

योगमठ कैसा हो–

योगमठ के आस– पास कुआँ और तालाब हो और योगमठ चारों तरफ से घिरा हुआ हो। कुटीर की भूमि न ज्यादा ऊँची हो और न नीची हो। समतल हो और वहां कीड़े–मकोड़े न हो। वहाँ बिल या छिद्र आदि न हो। गाय के गोबर से लीपा होना चाहिये। ऐसे गुप्त स्थान में कुटी बनाकर प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिये।

1.7 मिताहार की अवधारणा

प्रत्येक प्राणी को जीवन यापन करने और शरीर के प्रत्येक अंग को उचित ढंग से कार्य करने हेतु ऊर्जा की आवश्यकता होती है, जो हमें भोजन से प्राप्त होती है। अतः हमें इस बात की जानकारी होनी चाहिए कि हमारा भोजन यानी आहार कैसा हो? शुद्ध तथा प्राकृतिक आहार से मन शुद्ध होता है। मन शुद्ध होने से शरीर समृद्ध व शक्तिशाली होता है। आहार शुद्ध होने के साथ–साथ संतुलित भी होना चाहिए। लेकिन योगमय जीवन जीने के लिए आहार का शुद्ध व सात्विक होना आवश्यक है। छान्दोग्य उपनिषद् में

सात्विक आहार की उपयोगिता का वर्णन निम्न श्लोक में किया गया है–

आहारशुद्धौ सत्त्व शुद्धिः
सत्त्वशुद्धौ ध्रुवास्मृतिः
स्मृतिलम्भे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः।। छान्दोग्य उप. 7.2 6.2

अर्थात् आहार शुद्धि से चित्त की शुद्धि होती है व चित्त शुद्धि से स्मृति लाभ होता है तथा स्मृति से सभी बन्धनों से मुक्ति प्राप्त होती है।

मानव जीवन में आहार–विहार का शरीर पर गहरा प्रभाव पड़ता है। यौगिक परम्परा में आहार–विहार का अत्यधिक महत्व है। प्रत्येक व्यक्ति जो अच्छा स्वास्थ्य एवं मन चाहता है। उसे इन दोनों तत्वों का ख्याल रखना अत्यन्त आवश्यक है। योग साधक एवं सामान्य व्यक्ति दोनों के लिये उचित आहार जो पौष्टिक तथा सात्विक हो की आवश्यकता होती है।

योग ग्रन्थों एवं आयुर्वेद में मिताहार का वर्णन मिलता है। मिताहार अर्थात् अल्पाहार, मात्रा में कम और पचनें में आसान भोजन।

ज्योत्सना टीका में वर्णित है–

द्वौ भागौ पूरवेदन्नैस्तोयेनैकं प्रपूरयते।

वायोः सन्चरणाथीय चतुर्थभवशेषयेत।।

अर्थात दो चौथाई ठोस आहार, एक चौथाई द्रव पदार्थ तथा एक वायु पदार्थ से भरना चाहिये।

मिताहार का महत्वः– योग साधना में आहार का विशेष महत्व है। उचित आहार के बिना साधना कर पाना मुमकिन नहीं है क्योंकि आहार ही हमारे शरीर का पोषण करता है। साधक शरीर को ही आधार बनाकर योग साधना करते है।

शरीर का ध्यान रखने के लिये आहार का ध्यान रखना आवश्यक है। योग साधना उनके लिये है जो संयमित भोजन करते है। जो अपने आहार पर ध्यान नहीं देते वे योग साधना में सफल नहीं हों सकते है। आहार हमारे शरीर के लिये इतना ही आवश्यक है जितना गाड़ियों के लिये पेट्रोल–डीजल। भोजन जितना पवित्र और सात्विक होगा साधक उतना ही निरोग और आनन्द का अनुभव करेगा। भोजन जितना तामसिक होगा साधक उतना ही निर्बल और अशान्त होगा।

आयुर्वेद के अनुसार– शरीर का हम पोषण करते है तो शरीर हमारा पोषण करता है। हमारे द्वारा खाये गये पदार्थ शरीर में पचकर शरीर के अन्य भागों में पहुँचता है। अतः योग साधक को सात्विक आहार लेना चाहिये।

गीता के अनुसार– जो व्यक्ति शरीर के साथ विचारणा, भावना को शुद्ध, पवित्र एवं निर्मल रखना चाहता है उसे राजसी एवं तमसी आहार त्यागकर सात्विक आहार लेना चाहिये।

आचार्य शंकर के अनुसारः– जो इन्द्रियों द्वारा ग्रहण किया जाय वह आहार है। अर्थात सन्तुलित मात्रा में जो ग्रहण किया जाये, वह मिताहार है। यह न अधिक मात्रा में लिया जाय और न ही कम मात्रा में लिया जाय।

मिताहार का वर्गीकरण –

यौगिक साहित्य में मिताहार को तीन भागों में बांटा गया है।

(1) भोजन की मात्रा

(2) भोजन की गुणवत्ता

(3) विशिष्ट मनः स्थिति

1.7.1 भोजन की मात्रा–

हमें कितना भोजन करना चाहिये। यह व्यक्ति की पाचन शक्ति पर निर्भर करता है।

चरणदास के अष्टांग योग के अनुसार–

प्रत्येक व्यक्तियों को प्रकृति ने तृप्तता का भाव दिया है। प्रत्येक व्यक्ति के तृप्तता का पैमाना अलग–अलग है। किसी को कम एवं किसी को अधिक भूख लगती है अथवा कम एवं अधिक खाने से तृप्तता का एहसास होता है। मिताहार के अभ्यास द्वारा इस गुण को विकसित किया जा सकता है।

दर्शनोपनिषद के अनुसार– भाग्य में रखे गये भोजन के एक चौथाई भाग को छोड़कर भोजन ग्रहण करना चाहिये।

वेदों के अनुसार– त्याग के साथ भोजन ग्रहण करना चाहिये।

युक्ताहार विहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।

युक्तस्वप्नाव बोधस्य योगो भवति दुःखहा।। श्रीमद्भगवद्गीता 6/17

जो खाने, सोने, आमोद–प्रमोद तथा काम करने की आदतो में नियमित रहता है। वह योगाभ्यास द्वारा समस्त भौतिक क्लेशो को नष्ट कर सकता है।

गीता के अनुसार– उचित आहार, उचित विहार, कर्मों में उचित चेष्टा, सही समय पर सोना, सही समय पर जगना, ऐसा करने वाले योगी के सारे कष्ट, रोग नष्ट हो जाते है।

मिताहार की परिकल्पना हठ योग प्रदीपिका के अनुसार

हठ योग प्रदीपिका (1.57) मिताहार के महत्व को दर्शाते हुए कहता है, जो ब्रह्मचारी मिताहार (अल्पाहार) और त्याग (निवृत्ति, एकान्तवास) का निरंतर अभ्यास करता हो और पूर्ण रूप से योग को समर्पित है, उसे 6 महिनों में ही अपने प्रयास और खोज में सफलता प्राप्त होती है।

हठयोग प्रदीपिका यह भी बतलाता है के हमारी भोजन सम्बंधी आदतें हमारे स्वादानुसार नहीं होनी चाहिए। सबसे उत्तम आहार वह होता है जो स्वादिष्ट, पौष्टिक और उपयुक्त हो एवं अपने शारीरिक तथा आत्मिक आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए पर्याप्त हो ।

मिताहार मतलब ताजा, सुखद, रुचिकर आहार, अनुपयुक्त आहार का मतलब है जो बेस्वाद है या फिर किसी के शारीरिक रस प्रक्रिया के अनुकूल नहीं है। पेट पर अधिक भार नहीं डालना चाहिए, बल्कि आधा हिस्सा भोजन से भरना चाहिए, एक चौथाई पानी से और दूसरा चौथाई हवा से भरना चाहिए। शिव को प्रसन्न करके भोजन ग्रहण करने का मतलब, योगी को यह न लगे, कि वह अपने लिए भोजन

कर रहा है। दृष्टीकोण ऐसा हो, के वह अपने शरीर का लालन पालन, आध्यात्मिक विकास के लिए कर रहा है।

जब आहार पक जाता है और ठंडा होने के बाद दुबारा गर्म किया जाता है तो उसमे विषाणु होते हैं। इस आहार को ग्रहण करने से उदर में किण्वन होता है, जिससे अजीर्ण, वात और अम्लता होती है। सूखा आहार जिसमे प्राकृतिक तेल या पानी बिलकुल भी नहीं बचता है। कम मात्रा में तेल आवश्यक है। अधिक नमक या अम्लता, से शरीर में असंतुलन आता है, वास्तविकता में नमक प्रत्यक्ष रूप से हृदय के रक्त चाप को प्रभावित करता है।

कई प्रकार की सब्जियां एक साथ नहीं बनाना चाहिए, क्योकि रासायनिक क्रिया के परिणामस्वरूप, यह पाचन तंत्र को बिगाड़ सकता है और शरीर के कार्य को बाधित कर सकता है। पाचन क्रिया शीघ्रता और सहजता से होनी चाहिए, जो पाचन तंत्र को ज्यादा थकाए या ज्यादा गर्म ना कर दे। और प्राण ऊर्जा पाचन में बर्बाद न हो जाये ।

1.7.2 भोजन की गुणवत्ता– यौगिक शास्त्र में भोजन की गुणवत्ता को दो भागों में बांटा गया है।

क. पथ्य आहार ख. अपथ्य आहार

1.7.2.1 पथ्य आहार–

पथ्यं पथो·पनेत पघच्चोवतं मनसः प्रियम्

यच्चाप्रियमपश्यं च नियतं तन्न लक्षयेत्।।

पथ्य वह है जो सर्वशरीर के हितकर हो तथा मन के लिये प्रसन्नता व आनन्दकर हो और साथ–साथ पंचभौमिक संगठन की दृष्टि से भी सही हो।

योगी के लिए सबसे अनुकूल आहार हैं अच्छा अनाज, गेहू, चावल, जौ, दूध, घी, भूरी शक्कर, मिश्री, शहद, सूखा अदरक, पटोला फल (खीरे की प्रजाति), पांच सब्जियां, मूंग और इस तरह की दाल और शुद्ध पानी । (ह. यो. प्र. 1.62)

पूर्ण अनाज और चावल, जरूरी कार्बोहाइड्रेट और विटामिन बी देते है । तजा दूध और घी पाचन नली और आहार नली की म्यूकस कि परत को बनाये रखते हैं जो कि षट्कर्म करने में निकल जाती है। और अभ्यास के कारण उदर में बनने वाली अम्लता और गर्मी को निष्प्रभाव करते हैं। शक्कर मस्तिस्क और शरीर के अन्य अंगो के कार्य के लिए आवश्यक है। शहद खाने कि सलाह दी जाती है, क्योकि यह एक पूर्व पचित और पूर्ण आहार है। और अदरक भी बहुत अच्छा होता है

महर्षि घेरण्ड के अनुसार–

साधक को चावल, जौ का सत्तू, गेहूँ का आटा, मूँग, उड़द, चना आदि का भूसी रहित, स्वच्छ करके भोजन ग्रहण करना चाहिये। परवल, कटहल, करेला, कुन्दस, अरबी, ककड़ी, केला, गुलर आदि का शाक भक्षण करे। कच्चे या पक्के केले के गुच्छे का दण्ड, बैगन, कच्चा शाक, परवल के पत्ते, बथुआ और छुरछुर का शाक खा सकते है।

घेरंड संहिता (5.20) के अनुसार पांच सब्जियां यह हैं बलासका, कलासका, पतोलापत्रका, वस्ताका, हिमालोचिका। यह पत्तेवाली सब्जियां है जो पलक के समान हैं। हल्की, सुपाच्य दालें जैसे मूंग, लाल मसूर आदि प्रोटीन के लिए बताई गयी हैं। लेकिन हरा चना और गरिष्ठ दालें, जो सुपाच्य नहीं हैं और उदर वायु को बढाती हैं छोडनी चाहिए। शुद्ध पानी जो कि रसायनिक पदार्थ, ज्यादा मात्र में खनिज (मिनरल्स) और हानिकारक विषाणु से मुक्त है बहुत आवश्यक है मुख्यतः शुद्धिकरण क्रियाओं के समय।

योगी को पौष्टिक और मीठा आहार, जिसमे घी और दूध मिला हुआ हो, लेना चाहिए। जो कि शरीर में धातुओं कि पुष्टि करे, सुखदायक और उपयुक्त हो। (ह. यो. प्र. 1.63)

आहार का सबसे आवश्यक गुण है, धातुओं का पोषण करना. सात प्रकार के धातुएं या शारीरिक सरंचनाये होते है, जैसे त्वचा, मांस, हाड़, रक्त, मज्जा, मेध, शुक्राणु/अंडा ऐसा भोजन, जों इनके स्वाभाविक संतुलन को बिगाड़ दे, कदापि नहीं लेना चाहिए।

यद्यपि दूध और घी लेने की अनुमति है, परंतु अधिक मात्रा में नहीं. अत्याधिक दूध बलगम का निर्माण करता है और प्रयोजन के अतिरिक्त घी, शारीर में मेध बनकर जम जाता है. दूसरी ओर यदि दूध से एलर्जी होती है, तो दूध नहीं लेना चाहिए। साथ ही, चावल से जठर में सूझन या पानी भरता हो, तो चावल भी नहीं खाना चाहिए।

सुखदायक और योग्य आहार का अर्थ है जो अपने शारीरिक रस प्रक्रिया के अनुकूल हो, जिसे ग्रहण करके शारीरिक तौर पर तंदुरुस्त बनें और मानसिक तौर पर संतुष्ट और स्थायी बनें।

हर किसी की भोजन संबंधी आदतें अलग अलग होती है, इसलिए संभवतः तरह तरह के भोजन के साथ प्रयोग करना पड़ सकता है, जब तक आपको अपना उपयुक्त आहार का ज्ञात न हो जाए।

अवश्य ही, यहाँ जों पथ्य बताया गया है, मौसम और भारत के पर्यावर्णिक परिस्थिति के अनुकूल है। यह पथ्य एक हठ योगी के लिए भी उपयुक्त है जो घंटो तक, निरंतर, अपने साधना में लीन रहता है। ना कि उसके लिए है, जों हफ्ते में, केवल एक घंटा योग क्लास जाता हो या फिर अपने पारिवारिक दायित्वों से बोझिल रहता हो ।

हालाँकि यहाँ जिन जिन पथ्यों का उल्लेख किया गया है, पूरे विश्व में उपलब्ध है और यदि आप एक गृहस्थ है, इस प्रकार का आहार आपके शारीर को शुद्ध करने में सहयोग करेगा और मन और लालसा को स्थिर करेगा ।

शिव हमारे भीतर की चेतना है, हमारी आत्मा है, योगी जो भी आहार ग्रहण करता है, उसे परमानन्द, परमात्मा का प्रसाद मनना चाहिए। परंतु ऐसा देखा गया है, बहुत लोग, अपने जीवन में तनाव, निराशा और असुरक्षा से बचने केलिए, भोजन को साधन बनाकर अत्याधिक खाते रहते है। जब कि आहार को औषधि समझकर, एक योगी को सदैव भोजन करना चाहिए, जिससे उसके मन और शरीर में शुद्धता बनी रहे और साधना में वृद्धि होती रहे ।

1.7.2.2 अपथ्य आहार–

जो आहार सर्वशरीर के लिये हितकर न हो, मन को आनन्द और प्रसन्नता देने में असमर्थ हो और साथ ही साथ पंच भौतिक संगठन की दृष्टि से भी ठीक न हो, वह अपथ्य भोजन कहलाता है।

योगियों को एक विशिष्ट मनः स्थिति के साथ भोजन ग्रहण करना चाहियें, क्योंकि इसका प्रभाव शरीर पर ही नहीं हमारे अन्तःकरण पर भी पड़ता है।

हठ योग प्रदीपिका, योगी के लिए वर्जित आहार कि सूची देती है। बहुत मात्रा में खट्टा, नमक, कड़वा, तेल और मसाले वाला आहार योगी कि लिए वर्जित है। साथ में मदिरा, मछली, मांस, दही, छांछ, काला चना, खजूर, हींग और लहसुन भी वर्जित है।

भोजन साधारण और सौम्य होना चाहिए. अधिक तला हुआ मसालेदार या फिर बासी भोजन, हमारे शरीर में उष्णता पैदा करता है। जिसके कारण पेट की समस्याएँ आरंभ हो जाती है जैसे एसिडिटी, गैस, इत्यादि. इसलिए निश्चित रूप से ऐसे आहार से दूर रहना चाहिए. खास कर मांसाहारी भोजन जों हमारे अतड़ियों में सड़ता रहता है और अम्ल का निर्माण करता है. इसका निषेध होना ही चाहिए। इसके अलावा हींग और लहसुन को अफ्रोदिसिअक्सक बताया गया है जो सेक्स हार्मोन को उत्तेजित करते है।

यह नुकसानदायक नहीं हैं और कम मात्रा में औषधीय गुण वाले हैं। लेकिन ये बहुत तीव्र हैं और शरीर में दुर्गन्ध छोड़ जाते हैं। मदिरा से निश्चित रूप से बचना चाहिए, केवल इसलिए नहीं की यह मादककारी है, अपितु इसलिए ज्यादा कि यह यकृत और मस्तिष्क कोशिकाओं को नष्ट करती है, जो फिर स्वयं नहीं बन पाती।

अस्वास्थकारी भोजन नहीं ग्रहण करना चाहिए, जो कि ठंडा होने के बाद पुनः गर्म किया गया हो, जो कि सूखा हो (प्राकृतिक तेल से रहित), जो की अति खारा या अम्लीय हो, बसी या कई हरी सब्जियों वाला हो. (ह. यो. प्र. 1.60)

1.8 सारांश

इस इकाई के विस्तृत और व्यवस्थित अध्ययन से हमें यह ज्ञात हुआ है कि मानव सभ्यता के प्रारम्भ में मानव अपने शरीर के विविध क्रिया–कलापों के बीच पूर्ण सामन्जस्य स्थापित करना चाहता था ताकि सम्पूर्ण शरीर उसके हित में कार्य करें। उन्होने शरीर को एक घड़े के रूप में देखा, जो पदार्थ से बनी हुई एक आकृति है, जिसमें इन्द्रिय, मन, बुद्धि, अहंकार सब मिलाकर हमारा घड़ा बना है। जिसमें समय–समय पर असन्तुलन उत्पन्न होने से अनेकों तरह की व्याधियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। इन द्वन्दों से विचलित न होकर उनका सामना करने के फलस्वरूप हठयोग का उदय हुआ, जिसकी। शुरुआत शरीर से होती है। और शरीर को शसक्त सबल एवं प्रभावकारी रखने हेतु यम, नियम एवं षटकर्म की अवधारणा अस्तित्व में आयी। तत्पश्चात शारीरिक योगाभ्यास के माध्यम से हम अपने मानसिक तथा भावात्मक स्तरों को नियन्त्रित करके आध्यात्मिक अनुभूतियों को जागृत कर परम चेतना के विस्तार तथा उच्च सत्ता की अनुभूति प्राप्त करने में और इस विद्या को ईश्वरीय वरदान के रूप में समस्त संसार में मुक्ति साधना के रूप में प्राप्त कराने में सहयोगी बने हैं। योग मार्ग में आगे बढ़ने के लिए अपने आस–पास के वातावरण, रहन–सहन, आहार, साधक और बाधक तत्वों का विशेष ध्यान रखना होगा, जिससे व्यक्ति अपने जीवन के परम् लक्ष्य को प्राप्त कर पायेगा।

हठयौगिक जीवन शैली एक ऐसी अनुभूति है। जिसे बुद्धि से नहीं समझा जा सकता। अभ्यास तथा सतत् अभ्यास द्वारा ही इसे जीवन्त बनाया जा सकता है

1.9 अभ्यास प्रश्न

प्रश्न .1 – हठयोग का शाब्दिक अर्थ क्या है?

प्रश्न .2 – हठयोग की परिभाषा बताएँ?

प्रश्न .3 – हठयोग के प्रमुख अंग कौन–कौन से हैं?

प्रश्न .4 – योगमठ क्या है, हठयोग ग्रन्थों के अनुसार योगमठ के लिये स्थान बताइये?

प्रश्न .5 – साधक को किस तरह का आहार ग्रहण करना चाहिए?

प्रश्न .6 – हठयोग के अनुसार योगाभ्यास हेतु पथ्य एवं अपथ्य आहार क्या है?

प्रश्न. 7 – योग साधक के साधना मार्ग में साधक एवं बाधक तत्वों का वर्णन कीजिए?

प्रश्न .8 – हठयोग के अभ्यास हेतु उपयुक्त वातावरण कैसा होना चाहिए?

प्रश्न .9 – एक योग मठ प्रारम्भिक योगभ्यासी के लिये कितना आवश्यक है यह समझाइये।

1.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. घेरण्ड संहिता – स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती , योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर बिहार, भारत
2. आसन , प्राणायाम, मुद्रा बंध – स्वामी सत्यानन्द सरस्वती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर बिहार, भारत
3. योगासन विज्ञान – धीरेन्द्र ब्रम्हचारी, धीरेन्द्र योग प्रकाशन, नई दिल्ली
4. हठयोग प्रदीपिका– स्वात्मारामकृत संस्करणकर्ता – स्वामी दिगम्बर जी , कैवल्य धाम लोनावाला
5. योग विज्ञान – स्वामी विज्ञानान्द सरस्वती, योग निकेतन ट्रस्ट मुनि की रेती, ऋषिकेश, उत्तराखण्ड

इकाई 02 – घटशुद्धि की अवधारणा, हठयोग में शोधन क्रियाओं की महत्ता, शोधन क्रिया– धौति, वस्ति।

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 षटशुद्धि की अवधारणा

2.3 षटकर्म का परिचय

2.4 शोधन क्रिया – धौति

- 2.4.1 वातसार अन्तर्धौति
- 2.4.2 वारिसार अन्तर्धौति
- 2.4.3 वाहिसार धौति या अग्निसार क्रिया
- 2.4.4 बहिष्कृत अन्तर्धौति
- 2.4.5 दन्तधौति
  - 2.4.5.1 दन्तमूल धौति
  - 2.4.5.2 जिह्वाशोधन धौति
  - 2.4.5.3 कर्णरन्ध्र धौति
  - 2.4.5.4 कपालरन्ध्र धौति

2.4.6 हृदधौति

- 2.4.6.1 दण्डधौति
- 2.4.6.2 वमन धौति या कुन्जल क्रिया
- 2.4.6.3 वस्त्रधौति

2.4.7 मूल शोधन

2.5 शोधन क्रिया वस्ति

- 2.5.1 जल वस्ति
- 2.5.2 स्थल वस्ति

2.6 सारांश

2.7 अभ्यास प्रश्न

2.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

2.0 उद्देश्य–

इस यूनिट का अध्ययन करने के बाद आप

1. षटकर्म क्या है यह परिभाषा कर सकेंगे।
2. षटकर्म के विभिन्न अंगों को विस्तार पूर्वक अभिव्यक्त कर सकेंगे।
3. शरीर पर उनका प्रभाव और लाभों का वर्णन कर सकेंगे।
4. धौति, वस्ति के लाभ एवं सावधानियों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
5. षटकर्म की अभ्यासो का मूल उद्देश्य क्या है शक्ति संपन्न व स्वस्थ शरीर एवं मन का विकास।

2.1 प्रस्तावना

हठयोग में हम शरीर को स्वस्थ निर्मल बनाकर राजयोग का पात्र बनाते हैं। क्योंकि राजयोग में यम नियमों द्वारा अन्तःकरण को पवित्र कर ध्यान एवं समाधि में प्रवेश पाते हैं।

हठयोग से ऋषियो ने प्रकृति भेद के अनुसार वात पित्त एवं कफ प्रधान शरीर के शुद्धीकरण के लिए षटकर्म के विधान निर्धारित किए हैं। षटकर्म की क्रियाएं स्थूल शरीर को शुद्ध करती हुई सूक्ष्म शरीर के शुद्धिकरण में भी अत्यंत सहायक होती है।

योग के परिप्रेक्ष्य में षटकर्म का अर्थ शारीरिक शुद्धि से है। षटकर्म कि यह क्रियाएं मानव शरीर का कायाकल्प कर के उसे रोगमुक्त दीर्घायु, स्वस्थ एवं कांतिमय बनाती है।

2.2 घटशुद्धि की अवधारणा

धेरंड संहिता में घटस्थ योग के बारे में कहा गया है अर्थात शरीर पर आधारित योग, घट का अर्थ होता है शरीर घट है, घट का दूसरा अर्थ होता है घड़ा, जब हम घड़े की कल्पना करते हैं तो मिट्टी से बनी एक आकृति मानस पटल में उभरती है।

षटशुद्धि से ही घटरूपी शरीर हठयोग साधना के योग बनता है, घट की शुद्धि बिना यह कच्चे घड़े के समान, हठयोग के अन्य साधनों का अभ्यास घटशुद्धि के बिना संभव नहीं है।

योग के परिप्रेक्ष्य में षटकर्म का अर्थ शारीरिक शुद्धि से है। हठयोग में षटशुद्धि के लिए शोधन क्रियाएं षटकर्म कहलाती हैं। षटकर्म की यह क्रियाएं स्थूल शरीर को शुद्ध करती हुई सूक्ष्म शरीर को शुद्धिकरण में भी अत्यंत सहायक है।

हठयोग प्रदीपिका में कहा गया है–

हठं बिना राजयोगं राजयोगं बिना हठः।

न सिद्धयति ततो युग्मानिष्पत्तेः समश्यसेत्। हठ. 2/76

अर्थात हठयोग के बिना राजयोग सिद्ध नहीं होता तथा राजयोग के बिना हठयोग अपूर्ण है इसलिए साधक को हठयोग एवं राजयोग दोनों का सतत् अभ्यास करना चाहिए।

षटकर्म की ये क्रियाएं मानव शरीर का कायाकल्प करके उसे रोगमुक्त, दीर्घायु, स्वस्थ, पुष्ट एवं कांतिमय बनाती है।

हठयोग में शोधन क्रियाओं की महत्ता –

मानव शरीर के चार उद्देश्य बतलाए गए हैं धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष। प्रायः सभी भारतीय दर्शनों ने इस बात को स्वीकारा है। पुरुषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति हेतु स्वस्थ शरीर का होना पहली शर्त है। इस शर्त की पूर्ति हेतु हठयोग में शुद्धि क्रियाओं का उल्लेख किया है। इनके अभ्यास के दो मुख्य उद्देश्य हैं– (1) शरीर को कफ, पित्त तथा वायु आदि के दोषों से मुक्त करना। (2) शरीर के प्राणिक–प्रवाह में संतुलन स्थापित करना। शोधन क्रियाएं जिनके करने के बाद कायाग्नि तीक्ष्ण होती है और स्वास्थ्य का पुनरावर्तन होता है।

आज के भागदौड़ वाली जिंदगी में व्यक्ति का खान–पान, रहन–सहन के तौर–तरीके सब कुछ बदले और प्रदूषित हुए हैं। इनके फलस्वरुप व्यक्ति का शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक तथा सामाजिक इन सभी स्तरों का ह्रास होता जा रहा है। ऐसे में हठयोग के अभ्यास शरीर से विजातीय तत्व का निष्कासन कर व्यक्ति को शारीरिक, मानसिक रूप से सबल बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। इन अभ्यासों का मूल उद्देश्य है– सुगठित, शक्ति संपन्न वस्वस्थ शरीर एवं मन का विकास। इन गुणों के बिना व्यक्तिगत जीवन व साधना दोनों ही कष्टप्रद हो जाते हैं। वैसे भी दुर्बल शरीर मन के द्वारा व्यक्ति अपने कर्मों और आकांक्षाओं को सही रूप से अभिव्यक्त नहीं कर पाता है।

2.3 षटकर्म का परिचय

षटकर्म दो शब्दों से मिलकर बना है षट्कर्म, षट का अर्थ है छः, कर्म का अर्थ है क्रियाएं। हठयोग में शरीर की शुद्धि के लिए जिन छः क्रियाओं का वर्णन किया गया है उन्हें षटकर्म कहा जाता है। यह शोधन क्रियाएं कपाल प्रदेश से गुदाद्वार तक की आंतरिक शुद्धि के प्रयोग में लायी जाती हैं।

षटकर्म की ये क्रियाएं कौन–कौन सी हैं। आइए जानते हैं– हठयोग प्रदीपिका में स्वामी स्वात्माराम जी के अनुसार–

धौतिर्वस्तिस्तथा नेतिस्त्राटकं नौलिकं तथा।

कपालभातिश्चैतानि षट्कर्माणि प्रचक्षते।। हठ प्रदीपिका 2/22

अर्थात धौति, वस्ति, नेति, त्राटक, नौति एवं कपालभाति ये छः शोधन क्रियाएं कही गए हैं।

पहले यह सब साधिये, काया होवे शुद्धि।

रोग न लागे देह को, उज्जवल होवे बुद्धि।।

हम जो आहार ग्रहण करते हैं, उसका अवशोषित हिस्सा मल एवं मूत्र के रूप में नियमित बाहर निकलता रहता है नाक, कान, मुख, आंख और रोम छिद्रों से निकलता रहता है। गलत आहार विहार और आंतरिक अंगों की निष्क्रियता से ये मल विकार सुचारू रूप से पूरी तरह से बाहर नहीं निकल पाते। जिससे शरीर मन निस्तेज, भारी और अस्वस्थ हो जाता है।

प्राकृतिक चिकित्सा के अनुसार यहां मल जिन्हें विजातीय द्रव्य कहा जाता है, ये सभी रोगों के कारण बनते हैं। आयुर्वेद के अनुसार वात, पित्त, कफ के असंतुलन से रोगों की उत्पत्ति होती है। इसलिए आयुर्वेद में भी त्रिदोषों के समान के लिए शरीर के मल को बाहर निकालने के लिए कई विधियां बताई गई हैं। शरीर के अंदर आहार ग्रहण करने से रासायनिक प्रतिक्रियाएं होती है, ऐसे यह भी शरीर के कोषों की टूट–फूट हमेशा होती रहती है। जो शरीर में ज्यादा समय रहकर उसे तरह–तरह से नुकसान पहुंचाते हैं।

यही नहीं भय, आशंका, अनुराग, ईर्ष्या, द्वेष इत्यादि मन के विकार यदि स्थाई भाव बना लेते हैं, तो इनसे भी शरीर के अंदर अस्वास्थ्यकर रासायनिक प्रतिक्रियाएं होती है, जिससे शरीर का प्रत्येक अणु शुद्ध चैतन्य और प्राणवंत नहीं बना रहता है।

संक्षेप में इनका अर्थ या उद्देश्य निम्नांकित है–

1. **नेति–** यह नासिका प्रदेश के शुद्धिकरण की विधि है।

2. **धौति–** मुंह से गुदाद्वार तक की संपूर्ण अन्ननलिका के शुद्धिकरण की प्रक्रियाओं की श्रृंखला को धौति कहते हैं, इसमें नेत्र, कर्ण, दांत, जीह्वा तथा खोपड़ी की सरल सफाई की विधियां भी सम्मिलित है।

3. **वस्ति–** बड़ी आंत की सफाई और उसमें सुचारूता लाने के लिए है।

4. **नौलि–** उदरस्थ अंगों की मालिश तथा सुचारूता लाने के लिए एक अच्छी विधि है।

5. **त्राटक–** त्राटक के अभ्यास से एकाग्रता में वृद्धि होती है तथा प्रत्येक व्यक्ति में निहित उन सुषुप्त आत्मिक शक्तियों का विकास होता है। जिनके प्रति हम अचेत रहते हैं नेत्रों को शक्ति प्रदान करता है।

2.4 शोधन क्रिया धौति–

शोधन क्रियाओं में सर्वप्रथम धौति क्रिया का वर्णन किया गया है। समान्यतः धौति का अर्थ है धोना या सफाई करना। घेरण्ड संहिता में धौति के चार प्रकार बतलाए गए हैं

अन्तर्धौतिर्दन्त धौतिर्हृद्धौतिर्मूल शोधनम्।

धौतिं चतुर्विधां कृत्वा घटं कुर्वन्ति निर्मलम्। 1/13 घेरण्ड संहिता

जिनमें अन्तधौति, दंतधौति, हृद्धौति मूलशोधन आते हैं।

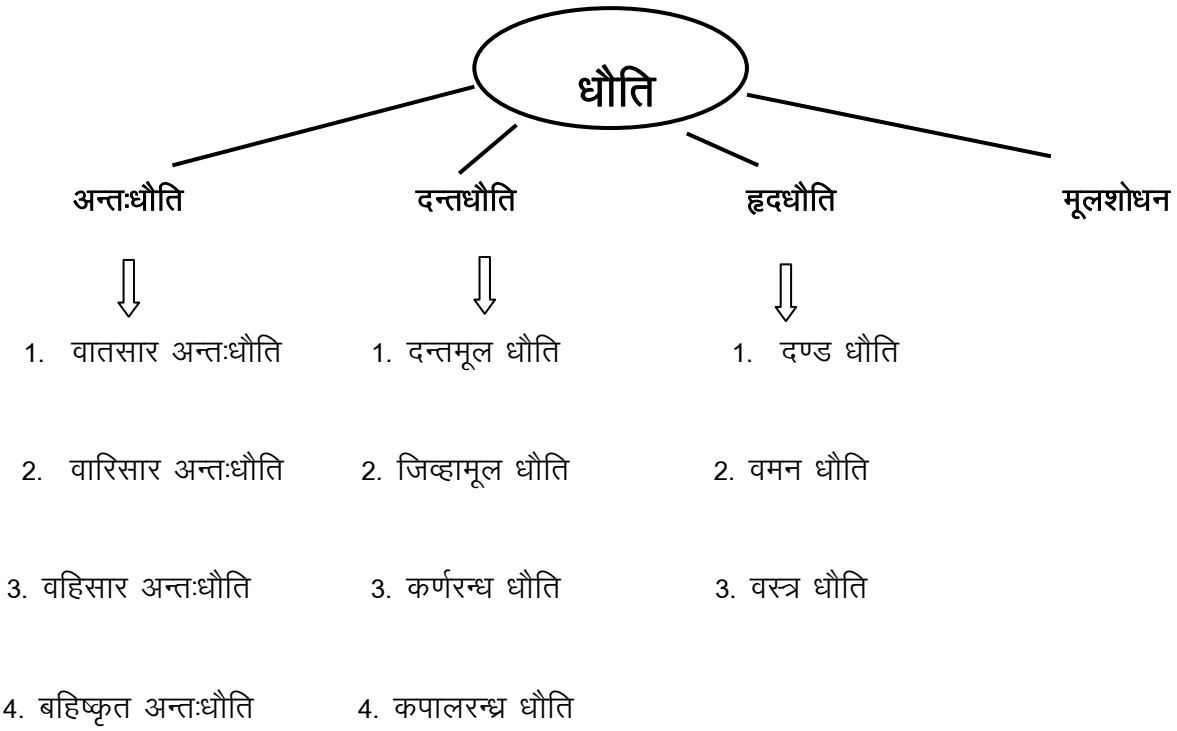

2.4.1 वातसार अन्तर्धौति– वात अर्थात हवा या वायु और सार का अर्थ है तत्व अर्थात वायु तत्व से अंतःकरण की सफाई करना महर्षि घेरण्ड संहिता में निम्न विधि बताई है–

काकचञ्चुवदास्येन पिबेद्धायुं शनैः शनैः।

चालयेदुदरं पश्चाद्वर्त्मना रेचयेच्छनैः।। 1/15 घे. सं.

कौवे की चोंच के समान दोनों होठों को शनैः शनैः वायु को पिये। पूर्ण रूप से पान कर लेने पर उसका परिचालन करें और फिर उस वायु को निकाल दें।

विधि– किसी सुविधाजनक आसन में बैठकर, मुंह खोलकर कौवे की चोंच जैसा आकार बनाइये। नाक से श्वास छोड़िए, मुंह से वायु को धीरे–धीरे पीकर उदर में भरने का प्रयत्न कीजिये। यह काकी मुद्रा कहलाती है। वायु से ही पेट को जितना भर सकते हैं भरते जाइये। जब पेट पूरी तरह भर जाए तो शरीर को ढीला छोड़ दें और वायु को उदर में कुछ समय घुमाए। उसके बाद धीरे–धीरे रेचक के माध्यम से उस वायु को बाहर निकाल दें।

लाभ–

- यह क्रिया शरीर को निर्मल बनाती है।
- जठराग्नि को तीव्र करती है।
- पेट में उत्पन्न दूषित गैस को बाहर निकालती है।
- यह कफ दोष को दूर करती है, तथा पेट को बढ़ने नहीं देती है।
- बहुत रोगों का क्षय करती है जैसे कब्ज, कीटाणुओं से उत्पन्न रोग पेचिश, पेट के फोड़े, हर्निया, अल्सर, मोटापा इत्यादि दूर हो जाते हैं।

सावधानियां –

- यह क्रिया खाली पेट करना चाहिए।
- यह अभ्यास पाँच बार से अधिक नहीं करना चाहिए।
- अधिक वृद्ध या कमजोर व्यक्ति यह अभ्यास नहीं करें।
- हृदय रोग से पीड़ित व्यक्ति इस अभ्यास को ना करें।

2.4.2 वारिसार धौति–

वारि का अर्थ होता है जल, सार का अर्थ तत्व, धौति का अर्थ धोना अर्थात जल से तत्व को धोना, इस क्रिया को कायाकल्प नाम से भी जाना जाता है, पूरे शरीर का नवनिर्माण होता है। अर्थात शरीर के अंदर से विषाक्त तत्व निकाल दिये जाते हैं। इसे शंख प्रक्षालन भी कहते हैं। यह क्रिया अन्न नली के मुख से गुदाद्वार की सफाई करती है जिससे विषाक्त तत्वों का निष्कासन होता है।

शंख प्रक्षालन–

शंख अर्थात शंख या सीपी और प्रक्षालन अर्थात शुद्धीकरण। जैसे शंख के अंदर पानी घूमते हुए ऊपर से नीचे की ओर रास्ता ढूंढता है उसी प्रकार आंतों के गुफामय और कुंडलित पथ द्वारा पानी अवांछित और अपाच्य को निकालते हुए जाता है। अतः इसका नाम शंख प्रक्षालन है। आंत की लंबाई लगभग 32 फीट होती है। आंत की दीवार पर मल जमने से विभिन्न प्रकार की बीमारियां पैदा होती है। मल की परत बनने के कारण निष्कासन की क्रिया सही नहीं होती है जिससे रोग को बढ़ावा मिलता है।

मल सड़ने के बाद पेट में दुर्गंध पैदा होती है। जिसके परिणाम स्वरूप अपचन एवं खट्टी डकारें आती है। यह गैस्ट्रिक को भी बढ़ावा देती है। शंख प्रक्षालन से समस्त रोगों में लाभ मिलता है जैसे सभी उदर रोग, मोटापा, बवासीर, उच्च रक्तचाप, मधुमेह, अस्थमा, सर्दी साइनस आदि।

तैयारी

- शंख प्रक्षालन करने से पांच सात दिन पहले इसके आसनों का अभ्यास शुरू कर दें।
- शंख प्रक्षालन जिस दिन करना हो उसके पूर्ण शाम को सुपाच्य एवं हल्का भोजन ले।
- शंख प्रक्षालन क्रिया के बाद खिचड़ी एवं घी का सेवन पर्याप्त मात्रा में करना चाहिए। खिचड़ी में अल्प मात्रा में हल्दी डाल सकते हैं, परंतु नमक नहीं।
- शंख प्रक्षालन की क्रिया प्रातः काल शौच इत्यादि क्रियाओं से निवृत्त होने के बाद करें, यदि शौच नहीं हो तो कोई बात नहीं।
- शंख प्रक्षालन करते समय कपड़े ढीले–ढीले होने चाहिए।
- गुन–गुने पानी की व्यवस्था कर लेनी चाहिए जिसे सरलता से पीया जा सके। इसमें आवश्यकतानुसार नमक मिला लें। पानी ज्यादा गर्म हो उसमें ठंडा पानी मिला लें।
- उच्च रक्तचाप एवं चर्म रोगियों को गर्म पानी में नमक के स्थान पर नींबू का रस मिलाकर लेना चाहिए।

विधि– गरम नमकीन पानी के दो गिलास जल्दी–जल्दी पी जाएं। फिर शंख प्रक्षालन के निर्धारित पाँच आसन क्रम से करें। आसन का क्रम समाप्त हो जाने पर पुनः दो गिलास पानी पीएं और फिर पांच आसनों का क्रम शुरू कर दें। इन पांच आसनों का क्रम निम्न प्रकार है–

1. ताड़ासन

2. तिर्यक ताड़ासन

3. कटि चक्रासन

4. तिर्यक भुजंगासन

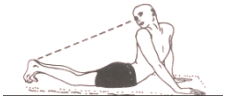

5. उदराकर्षण आसन

निर्धारित पाँच आसनों की आवृत्ति को दो या तीन बार पूरा करने के बाद शौच जाना शुरू हो जाएगा। पाँच आसन का क्रम जब भी समाप्त हो फिर दो या तीन गिलास पानी पीकर क्रम शुरू करें। आसन के क्रम में विश्राम नहीं करें। शौचालय में ज्यादा देर तक न बैठे और न शौच के लिए दबाव डालें। यदि आरंभ में शौच नहीं भी आए तो कोई बात नहीं। पानी पी–पीकर निरंतर आसनों का अभ्यास करें। यदि आसन करते–करते शौच की आवश्यकता महसूस हो तो शौच जाएं। पुनः पानी पीकर आसनों का क्रम फिर एक से शुरू कर दें, न कि जिस आसन को छोड़ कर गए थे वहां से शुरू करें।

इस तरह लगभग 15–20 गिलास पानी पीकर आसन करने के बाद पांच–छः बार शौचालय जाएं। शुरू में शौच के साथ ठोस पदार्थ बाहर आएगा उसके बाद जल मिश्रण मल निकलेगा। फिर शौच में पानी निकलेगा। जब शौच में साफ पानी निकलने लगे तो अभ्यास छोड़ देना चाहिये। इसके बाद कुंजल की क्रियाएं करें। इस अभ्यास के बाद शवासन में जाकर पूर्ण विश्राम करें। लगभग 30 से 45 मिनट तक विश्राम करें। इस अवस्था में पूर्ण मौन का पालन करें तो अच्छी बात होगी। इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि शवासन में विश्राम करने के बाद घी के साथ खिचड़ी भरपूर मात्रा में खाना

चाहिये। खिचड़ी में मूंग की दाल ही डालें एवं किसी प्रकार के मसाले का प्रयोग न करें, हल्दी का प्रयोग बहुत कम करना चाहिए।

सावधानियां–

- शंख प्रक्षालन के तीन घंटे बाद तक पानी नहीं पिएं।
- तीन घंटे तक सोना नहीं चाहिए।
- शंख प्रक्षालन के तीन घंटे बाद पानी पिएं तो अच्छा होगा। ठंडा पानी पीने से जुकाम सर्दी हो सकती है।
- अभ्यास के दिन की शाम और अगले दो दिनों तक खाने में घी खिचड़ी का सेवन करें।
- क्रिया के बाद विश्राम करें, (किंतु पंखा, कूलर, ए.सी. में नहीं) हवा में भ्रमण नहीं करें।
- शंख प्रक्षालन करने के बाद सर्दी के मौसम में धूप में एवं गर्मी में पंखे की हवा में नहीं बैठना चाहिए।
- जिस दिन आकाश साफ नहीं हो यह वर्षा हो रही हो, उस दिन इन क्रिया को नहीं करें।
- प्रक्षालन के बाद ठंडे पानी से हाथ पैर ज्यादा न धोएं।
- बालक, कमजोर व्यक्ति, मासिक धर्म के समय और गर्भवती स्त्री को यह क्रिया नहीं करनी चाहिए।
- क्रिया के पश्चात तीन दिनों तक मिर्च मसाला, अचार एवं अन्य प्रकार के मसालेदार वस्तुओं का सेवन न करें।
- अगले पाँच दिनों तक मिठाई, दही या दूध से बनी हुई चीजें न खाएं।
- फल या जूस तीन दिनों तक बिल्कुल नहीं लें।
- मांसाहार, मदिरा सेवन एवं तामसिक भोजन से बचें। यह स्वस्थ सुखी जीवन के लिए लाभदायक नहीं है।
- बाजार में उपलब्ध पेय, कोल्ड ड्रिंक एवं सॉफ्ट ड्रिंक से परहेज करें।

चेतावनी–

- इस अभ्यास का विशेषज्ञ के मार्गदर्शन में ही अभ्यास करना चाहिये।
- किसी भी हानिकारक दुष्प्रभाव से बचने के लिए सभी निर्देशों और प्रतिबंधों का कड़े रूप में पालन करना चाहियें।
- जो उपरोक्त प्रतिबंधों का पालन करने में असमर्थ हैं, उन्हें शंख प्रक्षालन का अभ्यास नहीं करना चाहिए। इसका सरल संस्करण, लघु शंख प्रक्षालन उनके लिए श्रेष्ठतर विकल्प है।
- हृदय समस्या, गुर्दे की विफलता, मिर्गी और मधुमेह से पीड़ित लोगों का सामान्यतः चिकित्सक पर्यवेक्षण के बिना अभ्यास से बचने की सलाह दी जाती है।

लाभ–

- पूरी आहार नाल (मुंह से गुदाद्वार तक) की सफाई हो जाती है।
- शरीर का शुद्धिकरण होता है, गंदे और विषैले तत्व बाहर निकल जाते हैं, शरीर हल्का एवं कांतिवान होता है।
- सभी प्रकार के रोग दूर होते हैं कब्ज, गैस, बवासीर, खट्टी डकारें, मन्दाग्नि इत्यादि।
- मोटापा, मधुमेह, श्वास संबंधी रोग, हृदय रोग, सिर दर्द, अपेन्डिसाईटिस एवं अन्य रोगों में लाभदायक है।
- स्त्रियों में मासिक धर्म संबंधी विकृतियाँ दूर होती हैं।
- नाड़ी के अवरोध टूटते हैं एवं चक्रों का शुद्धिकरण होता है।

नोट– शंख प्रक्षालन की क्रिया साल में दो बार करनी चाहिए। यह समय सितंबर–अक्टूबर एवं मार्च–अप्रैल का है। जो ऋतु परिवर्तन का समय होता है। शंख प्रक्षालन का अभ्यास योग शिक्षक की देखरेख में ही संपन्न करना चाहिए।

2.4.3 बाह्निसार धौति या अग्निसार क्रिया–

अग्नि का अर्थ अग्नि, सार का अर्थ होता है तत्व। अग्निसार क्रिया का अर्थ है– जिस क्रिया को तीव्र करके पाचन शक्ति को बढ़ाया जाए। धौति का अर्थ होता है धोना, अर्थात यह क्रिया शरीर की अशुद्धियों को बाहर निकालने का काम करती है।

नाभिग्रन्थिं मेरूपृष्ठे शतवारं च कारयेत्।

अग्निसारमियं धौतिर्योगिनां योगसिद्धिदा।। घे.सं.1/19

उदरामयजं त्वक्त्वा जठराग्निं विवर्द्धयेत् ।

एषा धौतिः परा गोप्या देवानामपि दुर्लभा

केवलं धौतिमात्रेण देवदेहं भवेद्ध्रुवम् ।। घे. सं.1/20

अर्थ–

प्राणवायु को रोककर नाभि को मेरू पृष्ठ भाग में लगायें। इससे अग्निसार संज्ञक धौतिकर्म संपन्न होता है। इससे सभी उदर रोग नष्ट होते हैं, जठराग्नि तीव्र होती है। यह धौतिकर्म अत्यंत गोपनीय और देवकाओं के लिए भी दुर्लभ है। केवल इस कर्म के करने मात्र से देवताओं जैसा शरीर हो जाता है। इससे इसमें संदेह नहीं है।

विधि–

इस क्रिया का अभ्यास बैठकर या खड़े होकर भी किया जा सकता है। सर्वप्रथम किसी ध्यानात्मक आसन में बैठे, रीढ़ की हड्डी सीधी रहे। हाथ तनी हुई अवस्था में घुटनों पर रहे, ताकि घुटने जमीन से सटे रहे, सिर को थोड़ा आगे करें, मुंह खोलकर जीभ को बाहर निकालें। आंखें खुली या बंद रह सकती हैं। सबसे पहले लंबी गहरी श्वास अंदर लेनी है। उसके बाद होंठ को गोल बनाकर, मुंह से पूरी वायु को बाहर निकाल देना है। श्वास को नाक से नहीं मुँह से बाहर निकालना है, जब तक फेफड़े

और पेट पूर्णतया खाली न हो जाये, उसके बाद श्वास को बाहर ही रोक देना है, अंदर नहीं लेना है। श्वास को रोक कर पेट को जल्दी–जल्दी अंदर बाहर करना है, यह श्वास क्रिया कुत्ते के हाँफने की तरह हो, श्वासोच्छवास क्रिया लगभग 25 बार कीजियें। इस अभ्यास में नाभि को अंदर ले जाकर मेरुदंड से सटाने का प्रयास करना पड़ता है।

खड़े होकर अभ्यास –

- पंजों को कंधों की पूरी पर रखते हुए सीधा खड़ा हो जाएं और पूरे शरीर का भार दोनों पंजों पर संतुलित रहे।
- पीठ को सीधा रखते हुए कमर से थोड़ा आगे की ओर झुकें।
- हाथ को घुटनों पर या घुटनों से ऊपर रखकर पीठ को सहारा दें।
- यह सुनिश्चित करें कि भुजाएं सीधी हो परंतु आरामदायक नहीं है तो उन्हें कोहनियों से थोड़ा मोड़ सकते हैं।
- श्वास छोड़ें, फेफड़ों को जितना हो सके उतना खाली करते हुयें। जालंधर बंध लगाएं।
- पेडू की मांसपेशियों को जल्दी–जल्दी सिकोड़े और फैलाएं जितनी देर तक श्वास को आराम से रोककर रख सकें।
- तनावग्रस्त न हो जालंधर बंध को छोड़ दें।
- धीरे से सिर उठाए और धीमी लंबी गहरी श्वास लें। यह एक चक्र है।
- अगला चक्र प्रारंभ करने से पहले जब तक श्वास सामान्य न हो जाए, तब तक विश्राम करें।

सावधानियां–

- यह क्रिया गुरू निर्देश में लेना आवश्यक है क्योंकि अगर यह क्रिया ठीक से नहीं किया तो अनेक हानियों के संभावना रहती है।
- योग क्रिया खाली पेट करना चाहिए।
- यह क्रिया तंत्रिका तंत्र में तीव्र उत्तेजना उत्पन्न होती है इसलिए यह अभ्यास हृदय रोग, उच्च रक्तचाप, पेट या अमाशय में नासूर हर्निया जैसे रोगों से पीड़ित व्यक्तियों के लिए वर्जित है।

- गर्भावस्था में इसका अभ्यास वर्जित है।
- ग्रीष्मकालीन महीने में इस क्रिया को अधिक सावधानी से करना चाहिए, क्योंकि अत्याधिक अभ्यास करने पर यह गर्मी या रक्तचाप को बढ़ा सकती है।

लाभ–

- अग्निसार क्रिया भूख को उत्तेजित करती है और अपच, अति अम्लता, पेट फूलना, कब्ज, यकृत और गुर्दे की निष्क्रियता को दूर करती है।
- अग्निसार क्रिया के अभ्यास से उदरस्थ सभी अंगों की मालिश होती है और उनकी क्रियाशीलता बढ़ती है।
- अग्निसार क्रिया पांचों प्राण वायु को उत्तेजित करती है, जिससे ऊर्जा स्तर बढ़ जाता है, बढ़ा हुआ ऊर्जा स्तर अवसाद, नीरसता और आलस्य को दूर करता है।
- इसे उड्डियान बंध और नौलि से पूर्व प्रारंभिक तैयारी के रूप में किया जाता है।

2.4.4 बहिष्कृत अन्तर्धौति–

काकीमुद्रां शोधयित्वा पूरयेदुदरं मरूत्।

धारयेदर्धयामं तु चालयदधोवर्त्मना।

एषा धौतिः परा गोप्या न प्रकाश्या कदाचना।। घे.सं.1/21

अर्थ– कौवे की चोंच के समान होठों को करके उनके द्वारा वायु पान करते हुये, उदर को भर लें। उस पान की वायु को आधे पहर (डेढ़ घण्टा) तक उदर में रोककर परिचालित करते हुये अधोमार्ग से निकाल दें। यह परम गोपनीय बहिष्कृत धौति कहलाती है।

बहिष्कृत धौति का एक दूसरा अभ्यास भी है जिसे महाधौति या बहिष्कृत प्रक्षालन धौति कहते हैं।

प्रक्षालन कर्म–

नाभि तक जल में खड़े होकर शक्ति नाड़ी को बाहर निकालना है, फिर उसे साफ करना है। उससे मल का त्याग होता है। जब नाड़ी की सफाई हो जाए। उसे पुनः अंदर ढकेल दे। यह प्रक्षालन की क्रिया, धौति की क्रिया उत्पन्न गोपनीय है। जब तक साधक में इतना सामर्थ्य उत्पन्न न हो जाए

कि वह वायु को आधे प्रहर तक उदर में रोक सके। तब तक उसे यह बहिष्कृत संज्ञक महाधौति नहीं करनी चाहिए। यह अभ्यास नदी में करना है, जहां पानी चलायमान हो, जहां पर पानी रुका हुआ है जैसे कुएँ या हौज में इसका अभ्यास नहीं करना है।

जब हम नाभि तक पानी में खड़े हो जायें और गुदाद्वार से अश्विनी–व्रजोली के माध्यम से पानी अंदर खींचे।

लाभ–

- इस अभ्यास से शक्ति नाड़ी में संवेदना उत्पन्न होती है।
- क्रिया की संवेदना पिंगला नाड़ी को जागृत करती है।
- पिंगला नाड़ी की जागृति के बाद शरीर में प्राण जागृत होते हैं।
- क्रिया से प्राणोत्थान होता है उसके बाद कुंडलिनी जागृत होती है।

सावधानियां–

- वही व्यक्ति महाधौति का अभ्यास करें, जिसे डेढ़ घंटे से अधिक सांस रोकने का पूरा अभ्यास हो, अन्यथा इसमें शरीर को खतरा रहता है।
- इसलिए सभी व्यक्ति यह अभ्यास न करें।
- पहले प्राणायाम का अभ्यास करें, अभ्यास को सिद्ध करें, जब शरीर में वह क्षमता आ जाये तभी अभ्यास करें।

2.4.5 दन्तधौति–

(1) दन्तमूल (2) जिह्वामूल (3) कर्णरन्ध्र दोनों (4) कपालरन्ध्र

दन्तमूलं जिह्वामूलं रन्ध्रं च कर्णयुग्मयोः

कपालरन्ध्रं पञ्चैते दन्तधौतिर्विधीयते।। 25 ।।

दन्तधौति के पांच भेद है– दन्तमूल, जिह्वामूल, कर्णरन्ध्र और कपालरन्ध्र। ये चार प्रकार के धौतियाँ है, इनमें दोनों कान के रन्ध्रों से होने वाले दो धौति मानी जाती है। इस प्रकार पाँच हुई।

ये सभी क्रियाएं हमारी ज्ञानेंद्रियों की संपूर्ण स्वच्छता के लिए प्रयोग में लायी जाती है।

2.4.5.1 दन्तमूल धौति –

संस्कृत शब्द दन्त का अर्थ है दांत, धौति का अर्थ है धोना और मूल का अर्थ है जड़। अतः यह प्रक्रिया दांतों और मसूड़ों की सफाई से संबंध रखती है। महर्षि घेरण्ड ने दंड संहिता में बताया है कि– जब तक मैल न छूटे तब तक खादिर के रस अथवा विशुद्ध मिट्टी से दांतो की जड़ों को मांजना चाहिए। हर व्यक्ति को यह क्रिया अपने दांतों की सुरक्षा के लिए नित्य प्रातः काल अवश्य करना चाहिये।

क्रिया विधि– खादिर अर्थात कत्था जो पान में खाते हैं। खादिर या कथे का रस और शुद्ध चिकनी काली या पीली मिट्टी इन दोनों का उपयोग बताया गया है। कत्थे को भीगा कर उसका जो रस निकलता है, उसे अपनी अंगुली पर रखकर दाँतो के मूल को दो–तीन मिनट तक मसूड़ों की जड़ में घिसते हैं। फिर शुद्ध पानी से कुल्ला करना है। यह क्रिया प्रातः काल व सायं भोजन के बाद भी की जा सकती है।

लाभ–

- इस क्रिया से मसूड़ों में स्वास्थ्य अनुभव होता है। मसूड़ों में रक्त का संचार होता है।
- इस अभ्यास से दांतो की सफाई होती है साथ ही साथ दाँतों में फंसा मल भोजन के टुकड़े बाहर निकल जाते हैं।
- मुंह में यदि छाले पड़े हो तो खादिर का रस औषधि का काम करता है।

सावधानियां–

- जिस भी चूर्ण (दंत मंजन, खादिर, मिट्टी) का उपयोग कर रहे हो वह बारीक पीसा गया हो।
- दातों में पीव, कीड़े या छेद हो तो आयुर्वेदिक चिकित्सा के बाद ही अभ्यास करें।

विशेष–

- भारत में पारंपरिक पद्धति में दांतो को नीम के पेड़ की टहनी से रगड़ के साफ करते हैं। टहनी साधारणतः 12 से 15 सेंटीमीटर लंबी और आधे से एक सेंटीमीटर मोटी होती है।
- डंडी के अंतिम सिरे को तब तक चबाना होता था जब तक उसके कड़े रेशे न बन जाएँ। इन रेशों को फिर दाँतों और मसूड़ों को रगड़ने के काम में लिया जाता था। दांतो का रगड़ना प्रत्यक्ष रूप से दांतों और मसूड़ों को सुदृढ़ और साफ बनाता था।

- प्राचीन काल में योगी सदैव स्वयं ही अपना दंत मंजन सुपारी, फिटकरी, हरड़ और नारियल के छिलके की राख से बनाते थे।

- दंतमंजन चूर्ण बनाने की एक सस्ती व सरल प्रक्रिया है। बादाम के छिलकों को आग में जलाकर कोयला बना लें। फिर उस कोयले का पाउडर बनाकर उसमें पीसी लोंग, सेंधा नमक, नीम के पत्तो का पाउडर मिला लें। इस चूर्ण का प्रयोग भी दांतो के लिए लाभकारी है।

- लकड़ी की राख या नींबू का रस कुछ दूसरे विकल्प है। नींबू के छिलके को दांतों और मसूड़ों पर ऊपर नीचे रगड़ सकते हैं।

- लकड़ी की राख या नींबू का रस कुछ दूसरे विकल्प हैं।

2.4.5.2 जिह्वाशोधन धौति–

जीभ की स्वच्छता ही जिह्वाशोधन धौति कहलाती है। इस क्रिया द्वारा जिह्वा की लंबाई बढ़ती एवं व्याधि, बुढ़ापा तथा मृत्यु को दूर भगाया जाता है। जीभ पर जमी हुई प्रतिदिन की मोटी पीली परत वास्तव में शरीर से निकलने वाली अशुद्धि है। यह गंदगी कीटाणुओं की वृद्धि में सहायक होती है। यह कीटाणु भोजन के साथ शरीर में प्रवेश करते हैं और शरीर को रोगी बनाते हैं। इन अशुद्धियों को जिह्वा धौति द्वारा दूर किया जाता है।

विधि–

- जिह्वा पर मक्खन मलिये।

- तर्जनी, मध्यमा और अनामिका तीनों अंगुलियों को मिलाकर जीभ की जड़ तक गले में ले जाएं और कुछ समय उस पर मालिश करें।

- उसके बाद जीभ में दोनों बगल से अंगूठे तथा अंगुलियों के सहायता से दोहन किया अर्थात दूध दूहने सी क्रिया करें।

- उसके बाद लोहे की चिमटी से जीव को बाहर खींचे।

- अभ्यास को सुबह–शाम करने से जिह्वा की लंबाई बढ़ जाती है।

लाभ–

- इस क्रिया से जीत की लंबाई बढ़ती है जिससे भाषा की स्पष्टता रहती है।

- जीभ के दोहन से गले व श्वास नली में एकत्र श्लेष्मा निकल जाता है।
- इससे व्याधि, बुढ़ापा, मृत्यु को दूर भगाया जा सकता है।
- खेचरी मुद्रा की सिद्धि में लाभकारी है।
- इससे कफ दोष का निवारण होता है।

सावधानियां –

- जीभ में छाले हो तो इस अभ्यास को नहीं करें।
- अपनी अंगुलियों को मुंह के अंदर ज्यादा न डालें।
- नाखून अवश्य कटे हो नहीं तो चोट लग सकती है।

2.4.5.3 कर्णरन्ध्र धौति–

इस क्रिया से कान के छिद्रों की सफाई की जाती है इसलिए इसे कर्णरन्ध्र धौति कहते हैं–

तर्जन्यनामिका योगान्मार्जयेत्कर्णरन्ध्रयोः।

नित्यमभ्यास योगेन नादान्तरं प्रकाशयेत्।। 32 ।।

तर्जनी और अनामिका को मिलाकर योगीजन दोनों कानों के छिद्रों की सफाई करते हैं। इस योग विधि के नित्य अभ्यास से नाद की अनुभूति होती है।

विधि–

1. अंगुली को गीला कर लें, ताकि वे ठीक से कर्णनली के मुहाने पर चिपक जाये।
2. इसके बाद अंगुलियों को धीरे–धीरे दबाव के साथ अन्दर डाले और गोलाकार घुमाते हुए नाक के भीतर ले जाने का प्रयास करें।
3. फिर गोलाकार घुमाते हुए बाहर खींच लें. ताकि अंदर निर्वात बन कर चूषण हो सके।
4. सत्ताह में किसी खाद्य तेल में लहसुन की दो कली डालकर उबालें और कपास का फोआ बनाकर कानों पर दो–चार बूंद डाले। उसके थोड़ी देर कानों को कपास से बंद रखें।
5. इससे मैल एवं मोम भूल जाते हैं तथा अंगुली से साफ करने पर तुरंत मैल साफ हो जाता है।

लाभ–

1. कानों की सफाई होती है, दिव्यनाद की अनुभूति होती है।
2. कान की रक्त वाहिनीयों में रक्त का संचार होता है।
3. श्रवण इन्द्रिय तीव्र होती है सुनने की क्षमता बढ़ती है।

2.4.5.4 कपालरन्ध्र धौति–

वृद्धाङगुष्ठेन दक्षेण मार्जयेभ्दालरध्रंकम् ।

एवमभ्यासयोगेन कफदोषं निवारयेत्।।घे.सं1/33

नाड़ी निर्मलतां याति दिव्यदृष्टिः प्रजायते।

निद्रान्ते भोजनान्ते च दिवान्ते च दिने दिने।। घे. सं.1/33

अपने दाहिने हाथ की अंगुलियों को समेटकर एक कप की आकृति बनानी चाहिए और उस कप की आकृति वाले हाथ में पानी भरकर अपने कपालरन्ध्र में ब्रह्मरन्ध्र में थपकी देनी चाहिए।

विधि–

दाहिने हाथ की अंगुलियों तथा अंगूठे को जोड़कर हथेली को कपनुमा आकृति में बना ले। फिर हाथ में पानी लेकर सिर को सामने झुकाते हुए सिर के ऊपरी हिस्से में पानी के छपके मारें। ताकि ब्रह्मरन्ध्र का हिस्सा गीला हो तथा हथेली से उस पर तीन–चार बार थपकी लगे। इसे प्रक्रिया को पुनः चार–पांच बार दोहराये।

लाभ–

- मस्तिष्क में शीतलता प्रदान होती है, मोतियाबिंद में लाभकारी है।
- दूर व निकट दृष्टि दोष दूर होते हैं।
- कफ दोषों (सर्दी, खांसी) में लाभकारी है।
- उच्च रक्तचाप में लाभ मिलता है, पूरे शरीर में शीतलता आती है तो स्फुर्ती और ताजगी का अनुभव होता है।

सावधानियां –

- जाड़ों में इसका प्रयोग वर्जित है, योग शिक्षक से सलाह अवश्य ले।

2.4.6 हृद्धौति–

हृद्धौतिं त्रिविधां कुर्याद्दण्डवमनवाससा।। 35 ।।

हृद्धौति के तीन भेद है– दण्डधौति, वमन धौति और वसन धौति अर्थात वस्त्र धौति।

2.4.6.1 दण्डधौति–

रम्भादण्डं हरिद्दण्डं वेत्रदण्डं तथैव च।

हृन्मध्ये चालयित्वा तु पुनः प्रत्याहरेच्छनैः।। घे. सं.1/36

कफं पित्तं तथा क्लेदं रेचयेदूर्ध्ववर्त्मना।

दण्डधौतिविधानेन हृद्रोगं नाशयेद् ध्रुवम्।। घे. सं.1/37

केले के मृदु भाग के डण्डे, हल्दी के डण्डे या बेंत को हृदय के मध्य बार–बार घुसा कर धीरे–धीरे निकालना चाहिए। फिर कफ, पित्त, क्लेद मुख द्वार से रेचक करना चाहिए। यह हृदय रोग का भी निश्चित रूप में से नाश कर देता है।

तैयारी एवं अनुशासन –

- दण्डधौति की तैयारी कुंजल क्रिया के समान ही की जाती है।
- गुनगुना आवश्यकतानुसार नमक मिला हुआ पानी अपने समीप रखते हैं।
- रबड़ का दंड गर्म पानी में भली प्रकार से स्वच्छ करके रख लेते हैं।
- दण्डधौति को खाली पेट प्रातः काल ही संपन्न किया जाता है।
- दण्डधौति करने के बाद घृतयुक्त खिचड़ी का सेवन किया जाता है। मिर्च मसालों का सेवन वर्जित है।

विधि –

- घेरण्ड संहिता में दंड धोती के लिए हल्दी के दण्ड केले अथवा बेंत (बाँस) के दंड का विधान किया गया है।

- दंड सामान्यतः केले के तने का कोमल भाग होता है– मोटाई में आधा इंच और 2 फुट लंबा। तने को सावधानी से गले के नीचे डाला जाता है। जब तक उसका अंतिम भाग पेट में न पहुंच जाए।
- तत्पश्चात उसे धीरे से बाहर निकालते हैं।
- वर्तमान में रबर की बनी हुई दंड बाजार में उपलब्ध है।
- एक चम्मच नमक एक लीटर गुनगुने पानी में डालें।
- पानी को जितना जल्दी हो सके गटक जाए, जब तक कि आपको लगे और नहीं ले सकते।
- रबर नली (ट्यूब) को धीरे से गले में घुसाएं और निगलें।
- निगलते रहे जब तक की नली का सिरा पेट तक न पहुंच जाए।
- आगे की ओर झुकें और नमकीन पानी की धार को नली से फूटने के लिए अनुमति दें।
- जब पूरा नमकीन पानी बाहर आ गया हो, धीरे से नली को निकालें।

लाभ–

- कफ, पित्त, क्लेद का निष्कासन इस क्रिया से होता है।
- आम पित्त दवा में यह अभ्यास लाभकारी है।
- फेफड़ों की क्षमता बढ़ती है हृदय रोग से भी लाभकारी है।
- इस दण्डधौति के लाभ कुंजल क्रिया के समान ही है।

सावधानी–

- अमाशयिक व्रण में इस क्रिया को नहीं किया जाता है।
- उच्च रक्तचाप से पीड़ित व्यक्तियों को इसका अभ्यास नहीं करना चाहिए।

- अनवरत प्रयासों के होते हुए भी यदि आपसे ट्यूब को निकलना संभव नहीं हो रहा है। तो ट्यूब को नीचे धकेलने के लिए बल न लगाए। सदैव किसी विशेषज्ञ के साथ ही अभ्यास करें, जब कि आप इस तकनीक में सिद्ध न हो जाए।

2.4.6.2 वमन धौति या कुंजल क्रिया–

भोजनान्ते पिबेद्वारि चाकण्ठं पूरितं सुधीः।। धे. सं.1/38

उर्ध्वा दृष्टिं क्षणं कृत्वा तज्जलं वमयेत्युनः।

नित्यमभ्यास योगेन कफपित्तं निवारयेत।। घे. सं.1/39

ज्ञानी साधक को भोजन के अंत में कण्ठ पर्यन्त जल पीना और फिर क्षण भर बाद ऊपर की ओर देखते हुये उसे वमन द्वारा निकाल देना चाहिए। इस क्रिया से कफ और पित्त का निवारण होता है।

व्याख्या– वमन धौति के दो प्रकार होते हैं। पहले प्रकार के अभ्यास को खाली पेट किया जाता है और दूसरे को भोजन के बाद। वमन धौति के प्रथम प्रकार को कुंजल क्रिया, दूसरे को व्याघ्र किया करते हैं।

कुंजल क्रिया का अभ्यास सामान्य और स्वस्थ व्यक्ति के लिए है।

व्याघ्र क्रिया का अभ्यास रोग की अवस्था में करना चाहिए, जब पेट में तकलीफ हो।

कुंजल क्रिया मुंह, अन्न नली एवं अमाशय तक की सफाई करती है। इसका अभ्यास खाली पेट किया जाता है। इस क्रिया के अभ्यास का सही समय प्रातः काल है। इसमें नमकीन गुनगुना पानी पेट भर कर पीने के तुरंत बाद वमन किया जाता है।

तैयारी–

- हाथ स्वच्छ हो, कुंजल से पूर्व हाथों की अच्छी तरह सफाई कर लें। नाखून कटे हों।

- जग एवं गिलास अपने पास रखें।
- गुनगुने पानी में नमक मिलाकर रखें।
- कुंजल क्रिया खाली पेट संपन्न की जाती है।
- इस क्रिया को प्रातः काल शौचादि से निवृत्त होकर संपन्न करना चाहिए।
- कुंजल करने के बाद घृत युक्त खिचड़ी सेवन करने का विधान है।
- कुंजल क्रिया संपन्न करने के दिन किसी प्रकार का मिर्च मसाला का सेवन नहीं करना है।

विधि –

- उकडू बैठकर शीघ्रता के साथ एक–एक गिलास करके पानी पीते जाएं।
- इतना पानी पी ले कि पूरा पेट पानी से भर जाए।
- पेट भरने के पश्चात वमन का मन होने लगता है।
- फिर खड़े होकर कमर से आगे की ओर झुकें।
- फिर मुंह खोल कर सीधे हाथ की तीन अंगुलियों से जीभ के मूल में घर्षण करने से पानी मुंह से बाहर निकलने लगता है।
- शुरुआत में पानी कम–कम मात्रा में निकलता है।
- अतः बार–बार जीह्वामूल से अंगुलियों को स्पर्श अथवा घर्षण से वमन होने लगता है।
- अभ्यास होने पर बिना जीह्वामूल में अंगुलियों को लगाए वमन होने लगता है।
- चालू रखे कर जब तक पेट पूर्णतः खाली न हो जाए।

ध्यान रखें–

- योग प्रशिक्षक की सलाह पर सादे गुनगुने पानी का उपयोग कर सकते हैं।
- यद्यपि नमकीन धारा पानी, बलगम को जलाता है और अम्ल के स्राव रोक देता है, पर उन लोगों के लिए श्रेयस्कर बना देता है जो उच्च अम्लता (हाइपर एसिडिटी) से छुटकारा चाहते हैं।

- यदि उल्टी अभी तक नहीं आई है तो पेट का पानी मलद्वार से सहजता से निकल जाएगा।
- निर्वासित पानी खमीर युक्त कण, पित्त या बलगम के कारण ही पीले रंग का हो सकता है।
- जब पेट पूर्णतः स्वच्छ होगा तो पानी साफ हो जाएगा।

लाभ–

- कुंजल क्रिया स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए उपयोगी है।
- यह अमाशय की अमृता (एसिडिटी) को दूर करने में परम लाभकारी है।
- दमा के रोगी को भी इसके अभ्यास से आराम मिलता है।
- यह श्वास की दुर्गंध, गले के बलगम को दूर करता है।
- सूक्ष्म स्तर पर यह नाड़ियों में से अवरोध हटाकर शरीर को पुनर्जीवित करके उसमें शक्ति और ऊर्जा की लहर भर देता है।
- मानसिक स्तर पर यह मस्तिष्क का पुनर्भरण करता है जो मन में दबी हुई भावनाओं और भावात्मक अवरोधों, अवसाद, अस्वस्थ, माइग्रेन और भय को बढ़ावा और विकास में रुकावट डालते हैं, के निर्गमन में सहायक हैं।

सावधानियाँ–

- उच्च रक्तचाप से पीड़ित व्यक्तियों को यह अभ्यास नहीं करना चाहिए।
- अमाशय में अल्सर एवं हृदय संबंधी व्याधियों में इसका अभ्यास नहीं करना चाहिए।
- सप्ताह में एक बार इस क्रिया को संपन्न किया जा सकता है।
- भोजन के कम से कम छः घंटे के बाद ही यह क्रिया करनी चाहिए अर्थात खाली पेट (प्रातः काल)
- कुशल प्रशिक्षक के निर्देशन पर ही यह क्रिया करें।

2.4.6.3 वस्त्र धौति–

वस्त्र धौति जैसे– वस्त्र का अर्थ है कपड़ा और धौति का सफाई, इस क्रिया द्वारा गले, अन्न नलिका तथा अमाशय को लंबे कपड़े की सहायता से साफ किया जाता है।

चतुरङ्गुल विस्तारं सूक्ष्मवस्त्रं शनैर्ग्रसेंत्।

पुनः प्रत्याहरेदेतत्प्रोच्यते धौतिकर्मकम्।। घे. सं.1/40

गुल्म ज्वरप्लीह कुष्ठ कफ पित्तं विनश्यति।

आरोग्यं बलपुष्टिश्च भवेत्तस्य दिने दिने।।घे. सं.1/41

अर्थ–

महीन वस्त्र की चार अंगुल चौड़ी पट्टी लेकर धीरे–धीरे निकलना चाहिए। फिर उसे धीरे–धीरे बाहर निकाल लें। इस वस्त्र धौति के अभ्यास से गुल्म, ज्वर, प्लीहा, कुष्ठ एवं कफ–पित्त के विकारों का समन होता है। यह धौति आरोग्य, बल और पुष्टि की दिनो दिन वृद्धि करती है।

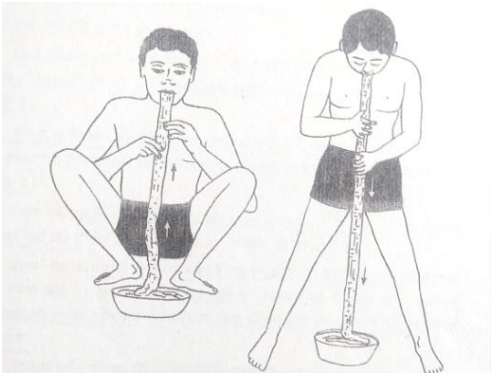

विधि

- कपड़े को जीवाणु रहित बनाने के लिए गर्म पानी से धोएं, खंगाले और उबालें।
- उसे गर्म पानी के पात्र में रखें जब तक आप प्रक्रिया प्रारंभ न करें।
- अपने कूल्हों पर या कम ऊंचाई की चौकी पर बैठे।
- कपड़े को अपने सामने फैला दें। ध्यान रहे कि उसमें कोई सलवट न हो।
- उसका एक सिरा जीभ पर फैलाए और कपड़े को निगलना चालू कर दें।
- यदि नीचे की ओर खिसकाने में कठिनाई हो तो गर्म पानी का केवल एक घूँट पी ले।

- कपड़े को निगलते रहें और उल्टी की इच्छा को रोककर रखें।
- जैसे ही एक बार कपड़ा अन्न प्रणाली ग्रास नली (इसोफेगस) घोड़ा नली पार होता है, समस्या समाप्त हो जाएगी।
- जब कपड़े का दो तिहाई भाग निगला जा चुका हो, लटके हुए भाग को अपनी अंगुलियों से बांध लें जिससे कि पूरा कपड़ा न निगल पाए।
- नौली (दक्षिण, मध्यम और वान नौली) के अभ्यास के लिए खड़े हो जाएं।
- कपड़े को पेट में लगभग 5 से 10 मिनट रखें, पर उससे अधिक नहीं।
- पेट को साफ करने के लिए 5 से 10 मिनट पर्याप्त समय है।
- पुनः उकड़ूँ बैठे और कपड़े को निकालें।

लाभ –

- वस्त्र धोती के अभ्यास से कफ, बलगम से निवृत्ति मिलती है।
- कफ के रोगियों के लिए वस्त्र धौति का अभ्यास रामबाण की तरह है।
- चर्मरोगों में भी लाभकारी है।
- पित्त दोष को संतुलित करने में सहायक है।
- यह गैस अम्लता और अपच को कम करने में सहायता करता है।
- यह क्रिया बढ़ी हुई तिल्ली को घटाने में सहायक है।
- वस्त्र धौति जठरांत्र पथ से गंदगी निकालता है, जिससे पेट और ग्रास नली के भागों का वितरण होता है।

सावधानियां –

- सिंथेटिक समाग्री से बने वस्त्र से बचे।
- सुनिश्चित करें कि कपड़े के किनारे सफाई से सिले हुए हो।

- कपड़े को पूरा न निगलें।
- कपड़े को निगलते समय मुड़ने से बचने के लिए सुनिश्चित करें कि कपड़ा जीभ से संकरा या उसी के नाप का हो।
- उपयोग के बाद कपड़े को धोएं और कीटाणु रहित करें।
- यदि आप प्रारंभिक अभ्यासी है तो सुनिश्चित करें कि आप किसी विशेषज्ञ की देख रेख में सीखें।

2.4.7 मूल शोधन– मूल क्षेत्र अर्थात शरीर का मूल भाग (गुदा) की इस अभ्यास से सफाई होती है।

अपानक्रूरता तावद्यावन्मूलं न शोधयेत्।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन मूलशोधनमाचरेत्।। घे. सं.1/42
पीतमूलस्य दण्डेन मध्यमाङ्गुलिनाऽपि वा
यत्नेन क्षालयेद्गुहां वारिणा च पुनः पुनः।। घे. सं.1/43
वारचेत्कोष्ठकाठिन्यमामाजीर्ण निवारयेत्।
कारणं कान्तिपुष्टयोश्चदीपनं वह्निमण्डलम्।। घे. सं1/44.

मूल शोधन न होने पर अपान वायु की क्रूरता नष्ट नहीं हो पाती। इसलिए प्रयत्न पूर्वक मूल शोधन कर्म करना चाहिये। हल्दी की जड़ अथवा मध्यमा अंगुली के द्वारा जल योग से पुनः पुनः प्रक्षालन आवश्यक है। इस कर्म से कोष्ठ–काठिन्य (मल की शुष्कता, मलावरोध) एवं अमाजीर्ण आदि का निवारण होकर जठराग्नि प्रदीप्त होती है।

विधि–

- हल्दी की जो नरम जड़ होती है, उसे पहले बहुत अच्छी तरह से साफ कर उसका छिलका निकाल लेते हैं।
- फिर उकडू बैठकर उसे गुदाद्वार में डालते हैं।
- डंठल की लंबाई लगभग चार इंच होती है और उसे अधिक से अधिक ढाई–तीन इंच अंदर ले जाते हैं और दो–तीन मिनट के लिए उसे अंदर ही छोड़ देते हैं, जिससे छिले हुए डंठल का रस गुदाद्वार में फैल जाए।
- उसके दो–तीन मिनट बाद डंठल को निकाल कर फेंक देना है।

- अगर हल्दी की जड़ उपलब्ध न हो तो मध्यमा अंगुली का प्रयोग भी किया जा सकता है।
- गाय का घी अंगुली में लगाकर उसे गुदाद्वार में लगभग डेढ़ इंच अंदर डालकर चारों ओर गोल–गोल घुमाया जाता है, जिससे घी चारों ओर लग जाए।
- इस प्रकार से तीन चार बार यह अभ्यास करें।

लाभ–

- उत्सर्जन तंत्र को बलिष्ठ करता है। इस क्रिया से नाड़ी और कोशिकाओं की ओर रक्त संचार तेज होता है।
- अंदर जमे कठोर मल का निष्कासन होता है।
- मलद्वार के मलाशय संबंधी रोग दूर होते हैं जैसे कब्ज, बवासीर।
- अपान वायु का संतुलन होता है।
- इस धौति से पाचन संस्थान के रोगी में लाभ मिलता है।

सावधानिया–

- बवासीर के रोगियों को अंगुली मूल प्रदेश में डालते समय बेहद सावधानी बरतनी चाहिए।
- अंगुली के नाखून अच्छी तरह काट लें।
- योग्य गुरु के सलाह में इस अभ्यास को करें।
- अभ्यास में ठंडे जल का प्रयोग करें।

2.5 वस्ति

संस्कृत शब्द वस्ति का एक सामान्य शब्द है जिसका संबंध पेट के निचले भाग उदर, श्रोणि एवं मूलाशय से है। अतः वस्ति कर्म पेट के निचले हिस्से विशेषकर आंतों की प्रक्रिया का अभ्यास है।

घेरण्ड संहिता में कहा गया है कि–

जल वस्तिः शुष्कवस्तिर्वस्ती च द्विविधौ स्मृतौ।

जल वस्तिं जले कुर्याच्छुकवस्तिं सदा क्षितौ।। घे. सं1/45

वस्ति कर्म दो प्रकार का होता है (1) जल वस्ति (2) शुष्क वस्ति। जल वस्ति का अभ्यास जल में किया जाता है।

2.5.1 जल वस्ति–

जल अर्थात पानी जल वस्ति की प्रक्रिया में शरीर के गुदा मार्ग से पानी बड़ी आँत के अन्दर खींचकर प्रक्रिया का अभ्यास किया जाता है इसे वाति वस्ति भी कहते हैं। वाति एवं वारि दोनों शब्द जल के पर्यायवाची हैं।

नाभिमग्नजले पायुन्यस्तालोत्कटासनः।

आकुञ्चनं प्रसारं च जलवस्तिं समाचरेत्।।घे. सं.1/46

प्रमेहं च उदावर्तं क्रूरवायुं निवारयेत्।

भवेत्स्वच्छनददेहश्च कामदेवसमो भवेत्।।घे. सं.1/47.

विधि–

- नाभि पर्यन्त जल में बैठकर उत्कट आसन लगाएं और गुदा प्रदेश को सिकोड़े और फैलाएं (आंकुचन और प्रसारण) इसी को जल वस्ति कहा गया है।
- इस अभ्यास के लिये किसी बड़े पात्र में या नदी, तालाब में नाभि तक जल में स्थित होना चाहिये और उत्कट आसन लगाएं एवं गुदा द्वार का आकुंचन और प्रसारण करें, जैसे अश्व आदि जानवर मल त्याग के समय करते है।
- अधिक से अधिक गुदा द्वार को सिकोड़े और फैलाएँ। ऐसा करने पर जल थोड़ी–थोड़ी मात्रा में अन्दर जाता है फिर अभ्यास हो जाने पर जल की मात्रा बढ़ जाती है और आंतो में चिपका मल जल को बाहर करते समय निकल जाता है। इससे आंतरिक अंगों की सफाई हो जाती है। चूँकि गन्दगी निकलती है अतः यह क्रिया बहते पानी में करें।

सावधानी–

- बवासीर के रोगी सावधानी के साथ इस अभ्यास को करें।
- उच्च रक्तचाप. हार्निया, पाचन सम्बन्धी कोई गंभीर दोष में वस्ति का अभ्यास वर्जित है।

लाभ–

- प्रमेह, आँतो के रोग, बवासीर और दूषित वायु से जिसे यहाँ क्रूर वायु कहा गया है। शरीर को मुक्ति मिलती है। और देह शुद्धि होती है।
- देह निर्मल होकर देवो के सदृश क्रांतिवान बनती है।
- इस क्रिया से फोड़े फुन्सी तथा चर्म रोग जैसे सूखा एग्जीमा आदि ठीक हो जाते है।
- जल वस्ति का अभ्यास हड्डियों. मांसपेशियों, वीर्य, कर्मेन्द्रियों, ज्ञानेन्द्रियों और अन्तःकरण को स्वस्थ बनाता है।

2.5.2 स्थल वस्ति–

पश्चिमोत्तानतो वस्तिं चालयित्वा शनैः शनैः।

अश्विनी मुद्रया पायुमाकुंचयेत्प्रसारयेत्।।घे. सं.1/48

एवमभ्यासयोगेन कोष्ठदोषो न विद्यते।

विवर्द्धयेज्जठराग्निमामवतं विनाशयेत्।।घे. सं.1/49

अश्विनी मुद्रा द्वारा आंकुचन एवं प्रसारण करना चाहिये। पश्चिमोत्तान में बैठकर नीचे के भाग में वस्ति का परिचलन करें। इसे स्थल वस्ति कहते है। इसके साधन से कोष्ठ के दोष एवं आमवात आदि रोगो का शमन और जठराग्नि का वर्धन होता है।

विधि–

वस्ति का अभ्यास करने के लिये जमीन पर पश्चिमोत्तान का अभ्यास करते है। सिर को घुटनों से छुआने का एवं अपने शरीर को जितना सम्भव हो आगे झुकाने का प्रयत्न करते है। इसमें हम पैरों को फैलाकर एक फुट की दूरी रखते हैं। अब इस स्थिति में अश्विनी मुद्रा का अभ्यास करना है। अश्विनी मुद्रा का अभ्यास गुदा का संकुचन और प्रसारण इसमें श्वास की क्रिया जोड़ दी जाती है। श्वास लेते समय गुदा द्वार की ऊपर की ओर खींचते है तो उसका आंकुचन होता है और श्वास छोड़ते समय उसका प्रसारण होता है।

लाभ–

- बवासीर, कांच, भगंदर और कब्ज इत्यादि रोगो में लाभदायक होता है। अपान वायु शुद्ध होती है।

- यह क्रिया योगियों के लिये एनीमा जैसी है, इससे बड़ी आँत की सफाई होकर पेट स्वच्छ एवं मुलायम हो जाता है। आमाशय एवं आँत से सम्बन्धित रोग उत्पन्न नही होते, यह पाचन शक्ति तीव्र करता है। तथा वायु विकार अपचन, कब्ज, पित्त, कफ, रोग आदि को दूर करता है। इस अभ्यास से स्नायु नियंत्रित होते है। पेट के अंगों की कार्य क्षमता में वृद्धि होती है। रक्त शुद्धिकरण हेतु यह अति उत्तम क्रिया है। आंतरिक अंगों की मालिश होती है।

सावधानियाँ–

यह क्रिया उचित एवं योग्य विशेषज्ञ के निर्देशन में ही की जानी चाहिये। यदि रक्त के पाइप द्वारा वस्ति का अभ्यास करे तो पाईप को अधिक भीतर न डाले।

निम्नलिखित दोषों में यह अभ्यास वर्जित है– उच्च रक्तचाप, हार्निया, पाचन सम्बन्धी गम्भीर दोष।

2.6 सारांश

षटकर्मों का मुख्य उद्देश्य शरीर का आन्तरिक शोधन। षटकर्मो का नियमित अभ्यास शरीर को आन्तरिक रूप से शुद्ध करके मलों का नाश करता है। जिससे शरीर रोग मुक्त स्वस्थ एवं दीर्धायु होता है। इस इकाई में हमने षटकर्म के बारे में जाना, साथ ही धौति क्रिया के विभिन्न प्रकारों की चर्चा की है। धौति अर्थात शरीर की आतरिक सफाई मुख्य रूप से आहार नाल की सफाई के बारे में बनाया गया है। जिससे आहार नाल की सफाई कर इसकी क्रियाशीलता एवं कार्यक्षमता को बढ़ाकर स्वस्थ जीवन का आनन्द ले सकते है एवं वस्ति क्रिया द्वारा बड़ी आँत की सफाई कर उसमें सुचारूकता लाते है।

2.7 अभ्यास प्रश्न

प्रश्न 1. षटकर्म को समझाते हुए किन्हीं दो क्रियाओं का वर्णन कीजिए।

प्रश्न 2. धौति क्रिया का अर्थ स्पष्ट कीजिए। धौति क्रिया का प्रभाव किस अंग पर पड़ता है?

प्रश्न 3. वमन धौति के प्रमुख लाभ क्या हैं?

प्रश्न 4. अग्निसार धौति की उपयोगिता बताइये।

प्रश्न 5. शंख प्रक्षालन की विधि, लाभ, सावधानियों के बारे में लिखिये।

प्रश्न 6. वस्ति क्रिया के विविध प्रकारों की व्याख्या कीजिये।

2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

पुस्तक

1. घेरण्ड संहिता – स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती , योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर बिहार, भारत
2. आसन , प्राणायाम, मुद्रा बंध – स्वामी सत्यानन्द सरस्वती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर बिहार, भारत
3. योगासन विज्ञान – धीरेन्द्र ब्रम्हचारी, धीरेन्द्र योग प्रकाशन, नई दिल्ली
4. हठयोग प्रदीपिका– स्वात्मारामकृत संस्करणकर्ता – स्वामी दिगम्बर जी , कैवल्य धाम लोनावाला
5. योग विज्ञान – स्वामी विज्ञानान्द सरस्वती, योग निकेतन ट्रस्ट मुनि की रेती, ऋषिकेश, उत्तराखण्ड

इकाई .03 – शोधन क्रिया– नेति, नौलि, त्राटक, कपालभाति

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 नौलि

3.2.1 मध्यम नौलि

3.2.2 वाम नौलि

3.2.3 दक्षिण नौलि

3.2.4 भ्रमर नौलि

3.3 त्राटक

3.3.1 बहिरंग त्राटक

3.3.2 अन्तरंग त्राटक

3.3.3 अधोत्राटक

3.4 कपालभाति

3.4.1 वातक्रम कपालभाति

3.4.2 व्युतक्रम कपालभाति

3.4.3 शीतक्रम कपालभाति

3.5 नेति

3.5.1 जल नेति

रबर एवं सूत्र नेति

3.6 सारांश

3.7 अभ्यास प्रश्न

3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

3.0 उद्देश्य

- षटकर्म के विभिन्न अंगों को विस्तारपूर्वक अभिव्यक्ति कर सकेंगे।
- शरीर पर उनका प्रभाव और इसके लाभों का वर्णन कर सकेंगे।
- नौलि की विधियों, लाभों व सावधानियों का अध्ययन कर सकेंगें।
- नेति के प्रकारों, लाभों व सावधानियों को अध्ययन कर सकेंगें।
- त्राटक के प्रकारों, लाभों व सावधानियों को अध्ययन कर सकेंगें।
- कपालभाति के प्रकारों, लाभों व सावधानियों को अध्ययन कर सकेंगें।

3.1 प्रस्तावना

हठयोग के ऋषियों ने साधकों की प्रकृति भेद के अनुसार वात–पित्त एवं कफ प्रधान शरीर की शुद्धि के लिए षट्कर्म के विधान निर्धारित किए हैं। षट्कर्म की क्रियाएं स्थूल शरीर को शुद्ध करती हुई सूक्ष्म शरीर के शुद्धिकरण में भी अत्यंत सहायक होती है। पिछली इकाई में षटकर्म के महत्वपूर्ण अभ्यास धौति, वस्ति का अध्ययन किया तथा इन अभ्यासों की क्रिया विधि, प्रकार, लाभ व सावधानियों को समझा। इस इकाई में नौलि, नेति, त्राटक, कपालभाँति क्रियाओं पर विस्तार से चर्चा करेंगें। जिससे साधक शरीर को शुद्ध, स्वस्थ्य और निर्मल बनाकर राजयोग का पात्र बनते हैं क्योंकि राजयोग में यम–नियमों के द्वारा अन्तःकरण को पवित्रकर ध्यान एवं समाधि में प्रवेश का क्रम है।

3.2 नौलि लौलिकी

अमन्दवेगेन तुन्दं भ्रामयेदुभपार्श्वयोः।
सर्व रोगात्रिहन्तीह देहानल विवर्द्धनम्।। घें. सं.1/52

अतिप्रबल वेग से उदर को दोनो तरफ घुमाएं। इसी का नाम लौलिकी है। इससे सभी प्रकार के रोग नष्ट हो जाते है। यह जठराग्नि तेज होती है और पाचन तंत्र को मजबूत करती है।

नौलि को लौलिकी भी कहते हैं। पेट को दायें से बायें घुमाने को नौलि कहते है। लौलिकी शब्द की व्युत्पत्ति 'लोल' शब्द से हुई है, जिसका अर्थ होता है–उत्तेजनापूर्ण इधर–उधर घूमना। नौलि उदर को आंतरिक अंगों को मजबूत करने की एक सशक्त प्रक्रिया है, जिससे पाचन संस्थान और उससे सम्बन्धित सभी अंगों, मांसपेषियों और स्नायुओं को उत्तेजना शक्ति मिल सके और वे ज्यादा सक्रिय हो।

चार प्रकार के नौलि की चर्चा की गयी है। 1. मध्यम नौलि 2. वाम नौलि 3. दक्षिण नौलि 4. भ्रमर या केवल नौलि।

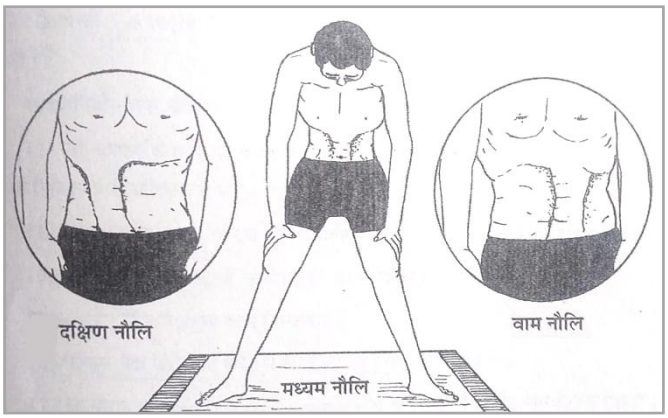

3.2.1 मध्यम नौलिः–

दोनो पैरों के बीच इतना फासला रखते हुये खड़े जो जिससे की शरीर का वजन दोनो पैरों पर बराबर रहें, घुटनों को मोड़ते हुये हाथ जंघा पर रखे। घुटनों पर दबाव देना है। श्वास को बाहर निकालकर रोकें एवं हथेलियों का बराबर दबाव दोनों घुटने में देने से उदर की मांसपेशियाँ सामने की ओर लाना चाहिये। पेट पीठ के अंदरुनी हिस्से से चिपक जाये। जब पेट को बाहर की तरफ करें। ऐसा बार–बार करे ताकि नौलि क्रिया में आसानी हो। अब घुटनों पर दबाव डालते हुये गुदा के पास उदर स्नायुओं को संकुचित करके उदर के मध्य भाग तक ले आएं और बाहर निकालने का प्रयत्न करे। यह मध्यम नौलि है।

3.2.2 वाम नौलिः–

मध्यम नौलि में दक्षता प्राप्त करने के बाद ही वाम नौलि का अभ्यास करना चाहिये। माध्यम नौलि करके दाहिनी ओर की मांसपेशियों को ढीला छोड़ दें। फिर बायी ओर की मांसपेशियों को संकुचित करे। इसके फलस्वरुप पेट की मांसपेशियों स्वाभाविक रुप से बाई तरफ खींच जायेगी। बायें तरफ की मांसपेशियों को यथासम्भव संकुचित कीजिये। इसके बाद पुनः मध्य की स्थिति में आ जाये।

3.2.3 दक्षिण नौलिः–

मध्यम नौलि करें। पेट के बायें भाग की मांसपेशियों को शिथिल करें। अब उदर के दाहिनी ओर की मांपेशियों को संकुचित करें। ये मांसपेशियाँ संकुचित होकर पेट के दाहिने भाग में लम्बवत् धनुष की भॉति खड़ी जो जायेंगी। यही दक्षिण नौलि की अन्तिम स्थिति है। जितनी देर तक आसानी से श्वास बाहर रोक सकें रोकिये, अधिक दबाव नहीं पड़ना चाहिये। पुनः मध्यम नौलि में वापस आ जाइए।

3.2.4 भ्रमर नौलिः–

इसमें तीनों क्रियाओं को एक साथ जोड़ा जाता है। इस क्रिया को 'केवल नौलि' भी कहते हैं। इसके दो भाग है, पेट की मांसपेशियों को सॉस से दस बार घड़ी की सुई की दिशा में अर्थात् बाएँ से दाँये घुमाना और फिर विपरीत दिशा (अर्थात दाएं से बाएं) गोल–गोल घुमाना।

नौलि का अभ्यास करने से पूर्व उड्डीयानबन्ध, तड़ागी मुद्रा का अच्छा अभ्यास करने से नौलि क्रिया के अभ्यास में आसानी रहती है।

सावधानियाँः–

- जिन व्यक्तियों को अल्सर हो, नाल कमजोर हो या उच्चरक्तचाप की शिकायत हो उन्हें नौलि क्रिया का अभ्यास नहीं करनी चाहिये।
- यदि अभ्यास में उदर पीड़ा का अनुभव हो तो तुरन्त इस अभ्यास को रोक देना चाहिये। अधिक दबाव न पड़े इसका ध्यान रखना चाहिये।
- उपर्युक्त क्रिया को खाली पेट कीजिएः
- इस प्रक्रिया को अत्यधिक करने से कब्ज या पेचिस हो सकता है। ऐसी स्थिति में कुछ दिनों के लिये ये प्रक्रिया बंद कर देना चाहिये।

लाभः–

- यह हमारे पेट के आंतरिक अंगों की मालिश और पोषण करती है।
- यह क्रिया कब्ज, अपच, अम्लता, उदर वायु, अवसाद, मधुमेय, शक्तिहीनता एवं भावात्मक असंतुलन को दूर करती है।
- शरीर में ऊर्जा प्रवाह में वृद्धि करती है, यौन के अंगों की क्षमता बढ़ाता है।
- मन्दाग्नि समाप्त होकर अग्नि प्रदीप्त होती है, जिससे पाचन क्रिया ठीक होती है।
- मणिपुर चक्र को जागृत करता है।
- अग्नाशय में सक्रियता लाता है जिससे इन्सुलिन का स्राव होता है, जिससे मधुमेह के रोगी को लाभ होता है।

- शरीर के सूक्ष्म अंगों जैसे– मांसपेशियों, रक्तवाहिकाओं, धमनयिों, शिराओं, तंत्रिकाओं, अंतःस्रावी ग्रंथियों, रक्त परिसंरण तंत्र आदि को भी शुद्ध करती है।

3.3 त्राटक

आत्मा के संयोग से मन काम करता है ओर मन के संयोग से इंद्रियां कर्म करती है। मन का चंचल और अधम है। आत्मा के बंधन का कारण है मन। मनुष्य के सुख और दुःख का कारण है मन, मनुष्य को उठाने वाला भी मन ही है। मन तक पहुँचने और उसकी अज्ञात शक्तियों को सक्रिय बनाने के लिये त्राटक साधना की जाती है।

त्राटक का अर्थ है दृष्टि स्थिर करना या एकटक निहारना है। दूसरे शब्दों में इसके अभ्यास में किसी विशिष्ट वस्तु या बिन्दु को अपलक निहारना पड़ता है अर्थात वह वस्तु जिस पर हम दृष्टि को बॉधे हुये हैं उसे तब तक देखेंगे जब तक ऑखों से ऑसू न गिर जाये।

मुख्यतः त्राटक तीन प्रकार के होते हैं। (1) बहिरंग त्राटक (2) अन्तरंग त्राटक (3) अधोत्राटक

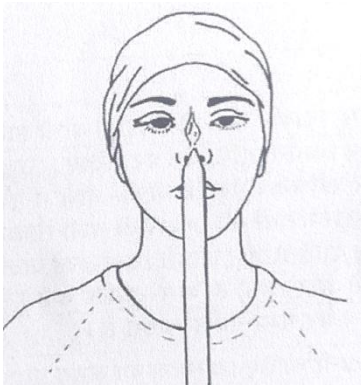

3.3.1 बहिरंग त्राटक–

बहिरंग त्राटक में किसी वस्तु या चिन्ह को लगातार देखा जाता है वह वस्तु मोमबत्ती की लौ भी जो सकती है। वह बिन्दु या वस्तु व्यक्ति से एक निश्चित दूरी पर होनी चाहिये।

विधि–

- एक कमरा चुनें जहां तेज रोशनी न हो, हवादार हो पर बहुत तेज हवा न हो, जिससे मोमबत्ती की लौ बुझे या अस्थिर हो जाये।

- एक छोटे से टेबल पर जलती हुई मोमबत्ती रखें। जिससे लौं का स्वर बिल्कुल ऑखों के समानन्तर हो। आराम से किसी भी ध्यान की मुद्रा में मोमबत्ती से एक हाथ दूरी पर बैठ जायें। सिर व रीढ़ की हड्डी सीधी हो। दोनों हाथ घुटनों पर 'ज्ञान' या 'चिन' मुद्रा में रखे हों

- ऑखे बन्द कर विश्राम करें। धीरे से ऑखें खोलें और स्थिर दृष्टि से बत्ती के सिरे को देखें। लौ के सिरे को नहीं।

- यदि लौ हिलता भी है तो एकाग्रता भंग नहीं हो सकती किन्तु बत्ती का सिर स्थिर रहेगा।

- पलकों को बिना झपकाएं और ऑखों की पुतली को बिना हिलाये देखते रहे, ध्यान रहे कि आंखों में तनाव न हो।

- सम्पूर्णता सजगता बत्ती पर केन्द्रित होना चाहिये।

- यदि मन भटकना शुरू होता है उसे धीरे से अभ्यास मे ले आए।

- 1–2 मिनट मे जब ऑखे थक जाए या उनसे पानी निकलना शुरू हो तो उन्हे धीरे से बंद कर ले।

- कुछ मिनट विश्राम के बाद ऑखे पुनः खोले और पुनः देखना शुरु करें।

3.3.2 अंतर्त्राटक

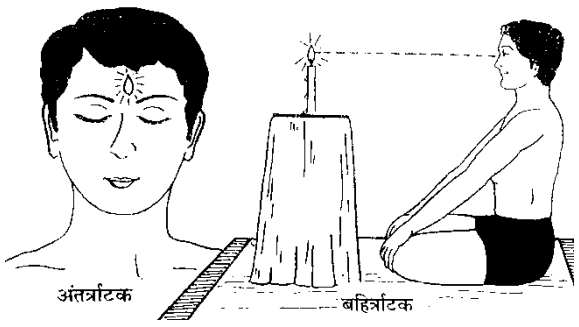

- जलती हुई मोमबत्ती टेबल पर रखे जिसका स्तर ऑखों के समानान्तर हो।

- मोमबत्ती हाथों की दूरी पर। किसी ध्यान के आसन में बैठ जायें। सिर और रीड़ की हड्डी सीधी हो तथा हाथ घुटनों पर ज्ञान या चिन मुद्रा में हो।

- ऑखें बंद करे पूरे शरीर को विश्राम दें।

- धीरे से ऑखें खोले और स्थिर दृष्टि से बत्ती के सिरे को देखे, लौ के सिरे को नही।
- अगर लौ हिलती भी है तो एकाग्रता भंग नहीं हो सकती है पर बत्ती का सिर स्थिर रहेगा।
- पलकों को बिना झपकाएं और ऑखों की पुतली को बिना हिलाये देखते रहे, ध्यान रहे कि आंखों में तनाव न हो।
- बाकी सब भूलकर सजगता पूरी तरह से बत्ती के सिरे पर केन्द्रित होनी चाहिये।
- अगर मन भटकने लगे तो उसे धीरे से अभ्यास में ले आए।
- 1–2 मिनट मे जब ऑखे थक जाए या उनसे पानी निकलना शुरू हो तो उन्हे धीरे से बंद कर ले।
- बंद ऑखों के सामने जगह पर लौ की आकृति उभरेगी अपनी पूरी एकाग्रता और मनोयोग से इस पर ध्यान रखे, यदि यह इधर–उधर लहर आती है तेा इसे स्थिर करें।
- यदि लौ की आकृति धुधलाएँ तो उसे पुनः लाने का प्रयास करें।
- जब आकृति अधिक देर तक ना रहे तो धीरे से ऑखे खोले और बत्ती के सिरे को पुनः देखना शुरु करें।
- इस प्रक्रिया को पुनः दोहराएं
- पुनः ऑखें बंद करे और भितरी आकृति को देखें।
- इसे दो तीन बार दोहरायें।
- अन्तिम चक्र पूरा करने के बाद ऑखों को खोलने से पहले हाथों की हथेली को ऑखों के ऊपर रखे।

3.3.3 अधोत्राटक

इसका अभ्यास ऑखों को आधा खुला और आधा बंद कर दिया जाता है। अधखुली ऑख को प्रतिपदा दृष्टि कहा जाता हे। नासिकाग्र मुद्रा के साथ शांभवी मुद्रा को भी अधोत्राटक के अंतर्गत माना जाता है

विधि–

किसी भी ध्यानात्मक आसन में बैठकर 1–1 फुट की दूरी पर ऑखों के सामने उसी तल में मोमबत्ती या दिया जला कर रखते है। जब ध्यानपूर्वक ज्योति के बीच जो काले रंग की लौ है उसे देखते हैं। केवल लौ ही देखते हैं। 30–30 सेकण्ड से 2–3 मिनट तक पलक को बिना झपकना नहीं है। जब ऑख से ऑसू निकलने लगे तब ऑख बंद कर लेना है जब तक चिदाकाश में ज्योति प्रतिछाया को देख सकते है। यदि मन में कोई विचार भाव उठता है तो उस विचार भाव से देखते है। जब छाया धुंधली हो जाती है तो पुनः इस क्रिया की पुनरावृत्ति करते है।

लाभ–

- त्राटक ऑखों के चारो ओर की मांसपेशियों को मजबूती प्रदान करता है।
- ऑखों की थकान और धुधलापन दूर करने में सहायक है।
- यह अभ्यास ऑखों को चमकदार और साफ करता है।
- यह तंत्रिका तंत्र को संतुलित कर तनाव व्यग्रता और अवसाद दूर करता है।
- यह मन को स्थिर और शांत करने में सहायक है, जिससे स्मरण शक्ति एकाग्रता और इच्छा शक्ति बढती है।
- सोने से पूर्व कुछ मिनट त्राटक अभ्यास से अनिद्रा दूर होती है और गहरी नींद आती है।
- यह आज्ञा चक्र को सक्रिय करता है जो कि ध्यान के लिये सर्वोत्तम तैयारी है इससे अतीन्द्रिय क्षमता विकसित होती है और चीजों से परे देखने समझने की क्षमता का विकास होता है।

त्राटक का अभ्यास आसन और प्राणायाम के बाद तथा जप और ध्यान से पहले करना चाहिये।

सावधानियाँ–

- ऑखें अत्यन्त तनावग्रस्त नहीं होनी चाहिये।
- त्राटक के बाद किसी भी प्रकार की ऑखों की दवाई का प्रयोग न करे।
- त्राटक के बाद तुरन्त ठंडे पानी के छींटे ऑखों में डाले जिससे खून का बहान बढ़ेगा।
- बिना पलक झपकाए ऑखों को खुला रखने की क्षमता धीरे–धीरे बढ़ाए।
- त्राटक का अभ्यास चश्मा लगाकर नहीं करना चाहिये।

- सूक्ष्म त्राटक में प्रतीक एक स्थान पर केन्द्रित रहना चाहिये।
- मिर्गी के रोगियों को त्राटक का अभ्यास लौ पर नहीं करना चाहिये। वे यह अभ्यास किसी स्थिति वस्तु पर कर सकते हैं।
- इस क्रिया को विशेशज्ञ के साथ ही करे या पूर्ण रुप से इस क्रिया में निपुण होने पर ही इसे स्वंय करे।

3.4 कपालभाति

कपाल या भाल का मतलब ''मस्तक' भांति का अर्थ चमक या प्रकाश है। यह क्रिया पूरे मस्तिष्क को स्वच्छ करती है, जिससे मस्तिष्क का तेज प्रकट होता है।

घेरण्ड संहिता के अनुसार–

''वातक्रमेण व्युत्क्रमेण शीत्क्रमेण विशेषतः।

भालभातिं त्रिधा कुर्यात्कफदोषं निवारयेत् ।।घे. सं.1/55

अर्थ– कपालभाति के तीन भेद हैं। वातक्रम कपाल–भाति, व्युतक्रम कपालभाति और शीतक्रम कपालभाति। इनके अभ्यास से कफ सम्बन्धी विकारों का नाश होता है।

3.4.1 वातक्रम कपालभाति

बॉए नासिका (इड़ा नाड़ी) का अभ्यास करते समय वायु को लें एवं दाएं नासिका (पिंगला नाड़ी) के द्वारा उसे निकाल दे। इसी प्रकार दाहिनें स्वर में वायु भरकर बाएं स्वर से निकासल दे, रेचक–पूरक करते समय तेज गति नहीं होनी चाहिये।

वातक्रम कपालभाति

लाभः–

- कपालभाति साइनस से मुक्ति देता है। कफ दोश का नाश करता है।
- कपालभाति चेहरे की मांसपेशियों को विश्राम देकर पुनः नया करता है। और वृद्ध अवस्था को रोकता है।
- यह इड़ा और पिगंला नाड़ी का शुद्धिकरण करता है। यह मन को ऊर्जा प्रदान करता है। आलस्य दूर करता है और ध्यान के लिये तैयार करता है।
- यह फेफड़ों को शुद्ध करता है जिसके कारण यह अस्थमा, क्षय मरीजों के लिये लाभदायक है। यह तंत्रिका तंत्र में संतुलन लाकर मजबूती प्रदान करता है और पाचन तंत्र को स्वस्थ रखता है।
- यह क्रिया चेहरे में ताजगी लाती है और शारीरिक थकान को दूर करती है।
- यह क्रिया पेट की चर्बी को कम करती है।

सावधानियाँ–

- शुरुआत में छोटे चक्र का अभ्यास करे, कपालभाति का अधिक अभ्यास अनुभवी प्रशिक्षक की देखरेख में करें।
- कपालभाति का अभ्यास हृदय बिमारी उच्च रक्तचाप, मिर्गी स्ट्रोक हार्निया और गैस्ट्रिक अल्सर में नहीं करना चाहिये।
- गर्भावस्था में कपालभाति वर्जित है।
- यह क्रिया जठराग्नि को उद्दीपन करती है। अतः रस क्रिया को ग्रीष्म ऋतु में ज्यादा ना करे।

3.4.2 व्युतक्रम कपालभाति–

इसमें नासिका के दोनों छिद्रों के द्वारा जल खींचकर मुख से निकालना होता है, तथा मुख से जल खींचकर नासिका से निकाला जाता है। यह व्युत्क्रम कपालभाति कफ दोषों का निवारण करती है।

विधि–

नाक से पानी पीकर उसे अपने गले में ही रोक लेना और फिर मुंह से बाहर निकाल देना यह है व्युत्क्रम कपालभाति। यह क्रिया में केवल नासिका छिद्रों का ही नहीं बल्कि गले और मुंह का भी शोधन होता है। नेति के अभ्यास के समान नासिका मार्ग को स्वच्छ बनाते हुये पानी मुंह से बाहर निकलता है।

लाभ–

जब पानी मुंह से आने के लिये भीतर प्रवेश करता है तब कुछ ऐसी नाड़ियों का स्पर्श करता है जिनका सम्पर्क कभी जल वायु और जीभ से नहीं होता। अतः जब जिह्वा इस क्षेत्र का स्पर्श करती है तब उसके स्पर्श से जो संवेदना उत्पन्न होती है। वह बिन्दु चक्र को जागृत करती है।

शीतक्रम कपालभाति– इस क्रिया में मुंह से पानी अंदर खींचकर नाक से बाहर निकाला जाता है।

विधि–

साधक मुख से सीत्कार करता हुआ जल खींचकर कुछ समय तक रोकते हुये नासिका से थोड़ा सा निकालते है फिर कुछ देर बाद थोड़ा सा निकालना अर्थात रुक–रुक कर नासिका से जल बाहर निकालता है।

लाभ–

- इस क्रिया के अभ्यास से साधक कामदेवा के समान हो जाता है और उसको बुढ़ापा एवं जीर्णता अथवा जराव्याधि नहीं होती।
- शरीर में कफादि दोषों का निवारण हो जाता है।
- पूरा शरीर सुदृढ़, बलवान, तेजमय, आभावान, आकर्षण और सुन्दर बनता है।

सावधानियाँ–हृदय की निर्बलता, वमनरोग, ऊर्ध्वरक्तपित्त, अम्लपित्त, स्वरभंग, निद्रानाश, तेजबुखार आदि रोगो के समक्ष न करें।

3.4.3 शीतक्रम कपालभाति–

शीत का अर्थ है ठण्डा व क्रम का अर्थ है क्रिया चूँकि इस क्रिया से शीतलता प्रदान होती है इसलिए इसे शीतक्रम कपालभाति कहते है। कपालभाति के इस तीसरे अभ्यास में मुँह से पानी अन्दर खींच कर नाक से बाहर निकाला जाता है।

विधिः–

मुख से जल खींचकर कुछ समय तक रोकते हुये नासिका से थोड़ा सा निकालते है फिर कुछ देर बाद थोड़ा सा निकालना अर्थात रुक–रुक कर नासिका से जल बाहर निकालना है। यहाँ शीतक्रम का अर्थ श्वास के साथ आवाज करते हुये पानी बाहर निकालना है। थोड़ी–थोड़ी मात्रा में धीरे–धीरे बाहर निकालना है।

लाभः– शीतक्रम कपालभाति से निम्न लाभ होते है–

- शरीर की अशुद्धि दूर होने से व्यक्ति स्वस्थ हो जाता है। उसके मुख पर चमक आ जाती है।
- इससे बिंदु चक्र जागृत होने की संभावना रहती है और उससे बिंदु चक्र से अमृत झरता है तब शरीर कांतिवान हो जाता है।
- मुख मंडल पर एक विशेष प्रकार की चमक आ जाती है।
- मन शान्त रहता है मानसिक रोगों से मुक्ति मिलती है।
- नासिका मार्ग तथा श्वसन संस्थान की गन्दगी बाहर निकल जाती है।

सावधानियाँः–

- यह एक गोपनीय क्रिया है गुरू के संरक्षण में ही इसका अभ्यास करें।
- प्रयोग किये जाने वाला जल स्वच्छ हो तथा उसमें नमक डला हुआ हो।

3.5 नेति

नेति नासिका मार्ग को साफ करने की क्रिया है। इस प्रक्रिया के परिणामस्वरुप आंतरिक शुद्धि प्रारम्भ होती है जो मानसिक स्पष्टता प्रदान करता है तथा जो 'अभ्यासी' को 'उच्चायोग अभ्यास' मे सहायता देता है।

यह सिर्फ एक ओर नासिका के पानी डालना दूसरी ओर से निकालने की प्रक्रिया भर नहीं है। बल्कि यह इडा और पिंगला नाडी में प्राणों के प्रवाह मार्ग मे अवरोध दूर कर प्राण का प्रवाह करता है। जब ये नाडिया सन्तुलन में आती है तब इनका प्रभाव का जोर सुषुप्त नाडी पर होता है इससे आन्तरिक उत्साह बढ़ता है।

प्राणों का मुख्य प्रभाव ना सिर्फ सुषुप्त ऊर्जा केन्द्र चक्र को जागृत करते है अपितु कुंडलिनी कों भी जागृत करते है।

'अभ्यासी' को इससे उच्च आध्यात्मिक शक्ति जैसे ज्ञान, अंतर्ज्ञान और दिव्य दृष्टि प्राप्त होती है।

नेति का अर्थ नाक और उसके आस–पास क्षेत्र की सफाई और उपचार है। नेति से कपाल–शुद्धि, दृष्टि शुद्धि और कंधो से ऊपर के हिस्सो का उपचार किया जाता है। वर्तमान में नेति क्रिया अनेक प्रकार में प्रयोग की जाती है जैसे जल नेति, दुग्ध नेति, घृत नेति, सूत्र नति , परन्तु इनमे से जल एवं सूत्र नेति सर्वाधिक प्रचलित है जिनका उल्लेख आगे किया जा रहा है।

3.5.1 जलनेति– जल द्वारा नाक की सफाई

तैयारीः–

- विशेष प्रकार का नेति पात्र का उपयोग करना चाहिये। नेति पात्र पीतल ,प्लास्टिक, मिट्टी या अन्य किसी प्रकार का बना हो सकता है। पात्र का टोटी नासिका छिद्र मे आसानी से आ पाये ताकि नाक से पानी ना गिरे।

- पानी उतना गर्म और नमकीन होना चाहिये जितना हमारा आँसू उचित मात्रा 1लीटर पानी मे एक चाय की चम्मच सेंधा नमक मिलाकर बनाते है।

- अगर नासिका मे दर्द या जलन हो तो पानी को ठंडा करना अथवा उसे पतला करना होता है।

- पहली बार अभ्यास प्रशिक्षित योग प्रशिक्षक के दिशा निर्देश में करना उचित होता हैं।

विधि–

- नेति पात्र को नमकीन पानी से भरे।

- शरीर का भार दोनो पैरो को आग पीछे कर के बीच मे 2 फीट का अन्तर रखते हुये समभार रखें।

- कमर से थोडा आगे झुके सिर को एक तरफ घुमाएँ।

- अगर संतुलन नही बन रहा है तो पैरों को आगे पीछे कर शरीर को संतुलित करें।

- जिस हाथ से नेति पात्र पकड़ा गया है उसे कंधों के समांतर रखे ताकि पानी का प्रवाह लगातार रहें।

- मुंह खुला रखें और मुंह से लगातार सांसे लेते रहे।

- नेति पात्र इस झुकाए ताकि पानी का प्रवाह अच्छे से हो।

- अगर जल दूसरी नासिका से निकल कर जमन में गिरने के बजाये चेहरे पर आ रहा है तो सिर की स्थिति ठीक नहीं है

- जब पानी खत्म हो जाये तो टोटी नाक से बाहर निकाल ले, सिर सीधा करें और पूरा पानी बाहर आने दें।

- सिर हल्के से दाऐ से बाएं हिलाये और बचे हुये पानी को नाक से बाहर आने दे।

- यह सभी क्रिया दूसरी नासिका से दोहराए।

- प्रक्रिया के बाद नासिका पूरी तरह सूखी होनी चाहिये।

नासारन्ध्रों को सूखाना–

- उपर्युक्त अभ्यास के बाद नासारन्ध्रों को सुखाना तथा उसमें पड़े सम्पूर्ण जल को निष्कासित कर देना अत्यावश्यक है।
- सीधे खड़े जो जाए और आगे की ओर झुंके जिससे धड़ सीधा पृथ्वी के समान्तर हो जाये। अंगूठे से एक नासिका को दबाकर बन्द करिये।
- अब जोर से जल्दी–जल्दी 10 बार लगातार श्वास लीजिये और छोडिये।
- श्वास छोड़ने की इस क्रिया में नाक से बचे हुए जल को बाहर निकालने पर ही अधिक ध्यान दे।
- अब इस क्रिया को दूसरे नासिका से भी दोहरायें
- यह क्रिया तब तक करना है जब तक नाक से सारा जल बाहर न निकल जाये।

लाभः–

- नेति क्रिया का साइनस ग्रंथि पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।
- श्वसन संस्थान के रोगो, साइनोसाइसिस, ब्रोकाइटिस, अस्थमा में लाभकारी है।
- दूर या निकट दृष्टि दोष में अत्यंत लाभकारी है।
- ऑख, कान, नाक के रोगों में लाभप्रद है।
- नासिका मार्ग में श्लेष्मा झिल्ली की मालिश होने से उसकी क्रियाशीलता बढ़ती है तथा रक्त का प्रवाह तेज होता है।
- नेति क्रिया से तनाव, चिन्ता, अवसाद के रोगियों को भी लाभ पहुॅचता है।
- मस्तिष्क की गर्मी, मिर्गी की बिमारी में भी इसका सार्थक प्रभाव पड़ता है।
- नासारन्ध्रों की शुद्धि होने से नेत्रज्योति का बढ़ना एवं कफ, सर्दी, जुकाम से मुक्ति मिलता है।

- श्वास रन्ध्रों के ऊपर स्थित गन्ध पिण्डों को उत्तेजित करते हुये आज्ञा चक्र जागरण में सहायक है।

- खर्राटों में कमी या पूर्ण बंद करने में लाभ।

- यदि नासिका छिद्रों में विकृत हड्डी या मांस के बढ़े होने के कारण निर्वाध प्रवाह न हो तो सूत्र नेति के घर्षण से यह बाधांएं कुछ महीनों में लुप्त हो जाती है।

सावधानियाँ–

- जिन्हें नाक से खून आने की पुरानी बिमारी हो, उन्हें किसी सुयोग्य और जानकार व्यक्ति के निर्देशन में यह क्रिया करनी चाहिये।

- जिन्हें उच्च रक्तचाप की बिमारी हो उन्हें जल में नमक देने के सम्बन्ध में योग विशेषज्ञ से ही परामर्श लेना चाहिये।

- नेति करते समय हाथ स्वच्छ रहे तथा नाखून कटे होने चाहिये।

- नेति के बाद नासिका सही तरह से सूखा होना चाहिये नही तो नासिका मार्ग में खुजली का अहसास होगा। सर्दी के लक्षण दिखने लगेंगे।

- सॉसे अत्यधिक तेजी से ना छोड़े नही ंतो बचा पानी कान में जा सकता है।

- रवर नली को कहीं भी दराय अथवा फटा नहीं होना चाहिये। धागा पूर्णतः स्वच्छ हो और खर नली कीटाणु रहित हो, नाक में डालने से पहले–

- पुराने नासिका रक्तस्रव में सूत्र नेति वर्जित है।

- जिन लोगों की नासिका में घाव, अल्सर, नासिका कोश में सूजन विकृत या सर्पित नासिका है, उन्हें पहले योग विशेषज्ञ या वैद्य से सलाह लेनी चाहिये।

- अभ्यास के बाद नासिका मार्ग में सूखापन, दर्द, रुखापन लगे तो इसे दूध या घी के कुछ बूंदों से चिकना करे।

3.5.2 रबर एवं सूत्र नेति–

इस क्रिया में नासिका छिद्र में सूत्र या रबर डालकर मुॅह से निकालते है। यदि नाक से भीतर हड्डी या कार्टिलेज बढ़ जाए तो यौगिक ग्रंथों में सूत्र नेति का अभ्यास बताया गया है। इससे दोनों नासा छिद्रों में उत्पन्न अवरोध दूर किये जाते है जिससे प्राण वायु के प्रवाह में आसानी होती है इस क्रिया में दो प्रकार की वस्तुओं का प्रयोग किया जाता है।

(1) लम्बी पतली रबर ट्यूब

(2) सुती धागों से तैयार सूत्र

विधि–

- उकडू बैठकर या खड़े होकर कैथेटर या सूत्र के पतले सिरे को नासिका छिद्र में घुमाते हुये धीरे–धीरे अन्दर डालते है।
- जब नाक में प्रवेश कर गले में प्रवेश करने लगे तब मुॅह पे उॅगली डाकर उसे बाहर निकाल लेते है और दोनों शिराओं को पकड़कर आगे पीछे खीचते है और फिर निकाल लेते है इन क्रियाओं को प्रायः सुबह करना सर्वोत्तम माना गया है।
- यह धागा कई सूत्रों को एक साथ मिलाकर (मधुमक्खी के मोम में डुबोकर) कसकर बांधकर तैयार किया जाता है।
- धागे की मोटाई 4मिमी0 और लम्बाई 35–45सेमी0 होती है।
- सूत्र नेति करने से पूर्व रात्रि सोने से पूर्व 2–3 बूंद शुद्ध घी या कुनकुना नारियल तेल डालना अच्छा होता है और सूत्र नेति के बाद भी इसे करना अच्छा होता है।
- घी या तेल को मत्स्यासन में डालना अच्छा रहता है फिर कुछ मिनट आराम करे ताकि यह अन्दर चला जाये।
- पहले पहल यह क्रिया असहज अथवा उबकाई आने वाला हो सकता है।

लाभः–

- हमारे श्वसन तंत्र को नियंत्रित करती है और सारनस या अस्थमा रोग में अत्यन्त प्रभावपूर्ण है ।
- तनाव व डिप्रेशन को दूर करती है ।
- सिर दर्द को कम करती है और चेहरे में ताजगी लाती है ।
- कफ दूर होता है; दृष्टिदोष दूर होता है तथा दिब्य दृष्टि प्राप्त होती है ।
- इससे रक्त प्रवाह बढता है । सायनस ग्रन्थि में सूजन कम होती है। बढी हुई हड्डी या मांसपेशी को इस अभ्यास से ठीक किया जा सकता है ।

सावधानियाँः–

- कान व गले के इंफैक्शन की स्थिति में इस क्रिया को ना करें ।
- इस क्रिया को विशेषज्ञ के साथ ही करें या पूर्ण रूप से इस क्रिया में निपुण होने पर ही इसे स्वयं करें ।
- नासिका को सुखाना अति आवश्यक है । अगर पानी की बूंदे रह जाती है तो उन्हे विभिन्न
- विधियों द्वारा सुखाया जाय ।
- सूत्र या कैधेटर को जबरदस्ती डालने का प्रयास नही करना चाहिये ।
- यह यिा बहुत बहुत ही सावधानी पूर्वक एवं धीमी गति से करनी चाहिए । नाक में डालने से पहले इसे अच्छी तरह साफ करना चाहिए ।
- नाक से खून आने की शिकायत हो तो इसे न करे या विशेषज्ञ से सलाह के पश्चात करें ।
- प्रारम्भ मे जल नेति के अभ्यास मे निपुण होने के पश्चात् सूत्र नेति का अभ्यास करना चाहिए।

3.6 सारांश

षटकर्म के अध्ययन से हमें इसके शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक लाभों का पता चलता है। इन अभ्यासों से न सिर्फ शरीर के अंग प्रत्यंग की सफाई या शुद्धिकरण होता है बल्कि ये क्रियायें

मन को भी सूक्ष्म रूप से प्रभावित करती है और अभ्यास को हठयोग के अगले चरण यानि आसन के अभ्यास के लिए तैयार करती है। अतः इन क्रियाओं का अभ्यास किसी योग केन्द्र या सुयोग्य योग प्रशिक्षक के निर्देशन में ही करना चाहिये क्योंकि कुछ खास रोगियों के लिये वर्जित या निषिद्ध है।

3.7 अभ्यास प्रश्न

प्रश्न 1. – नौलि के कितने भेद बताये गये है। वाम नौलि व दक्षिण नौलि की क्रिया विधि बताये।

प्रश्न 2. – नेति क्रिया क्या है? सूत्र नेति व जल नेति की क्रिया विधि बताए।

प्रश्न 3. – त्राटक क्रिया की विधि लाभ एवं सावधानियों का वर्णन कीजिये।

प्रश्न 4. – कपालभाति क्या है? इसके प्रकारों की लाभ सहित व्याख्या कीजिये।

3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- घेरण्ड संहिता – स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती , योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर बिहार, भारत
- आसन , प्राणायाम, मुद्रा बंध – स्वामी सत्यानन्द सरस्वती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर बिहार, भारत
- योगासन विज्ञान – धीरेन्द्र ब्रम्हचारी, धीरेन्द्र योग प्रकाशन, नई दिल्ली
- हठयोग प्रदीपिका– स्वात्मारामकृत संस्करणकर्ता – स्वामी दिगम्बर जी , कैवल्य धाम लोनावाला
- योग विज्ञान – स्वामी विज्ञानान्द सरस्वती, योग निकेतन ट्रस्ट मुनि की रेती, ऋषिकेश, उत्तराखण्ड

द्वितीय खण्ड परिचय

हठ ग्रन्थों में आसन

परास्नातक योग कार्यक्रम के अन्तर्गत हठयोग के सिद्धन्त के द्वितीय खण्ड हठ ग्रन्थों में आसन को तीन इकाईयों में विभाजित किया गया है।

इकाई .04

आसन की परिभाषा, (नियम एवं सावधानियाँ), सूर्य नमस्कार (मंत्र सहित), सूक्ष्म योग

ताड़ासन, तिर्यक ताड़ासन, कटिचक्रासन, वृक्षासन, गरुणासन

इकाई .05

सिद्धासन, पद्मासन, भद्रासन, वज्रासन, स्वास्तिकासन

गोमुखासन, वीरासन, गुप्तासन, मयूरासन, मत्स्येन्द्रासन, उष्ट्रासन

गोरक्षासन, पश्चिमोत्तानासन, उत्कट आसन, संकट आसन

इकाई .06

कुक्कुटासन, कुर्मासन, उत्तानकुर्मासन, मण्डुकासन, उत्तान मण्डुकासन

नौकासन, पवनमुक्तासन, सर्वांगासन, मत्स्यासन, शवासन, शीर्षासन

शलभासन, भुजंगासन, धनुरासन, मकरासन

अतः इन समस्त इकाईयों के माध्यम से आप आसन की विधि, लाभ, सावधानियाँ तथा अर्थ उद्देश्य, महत्व और शारीरिक और मानसिक रूप से स्वस्थ्य रहने की विद्या को समझ सकेंगे– जो जीवन के लक्ष्य की प्राप्ति में सहायक होंगे।

इकाई .04 – आसन की परिभाषा, (नियम एवं सावधानियाँ), सूर्य नमस्कार (मंत्र सहित), सूक्ष्म योग, ताड़ासन, तिर्यक ताड़ासन, कटिचक्रासन, वृक्षासन, गरुणासन

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 आसन का अर्थ, परिभाषा एवं उद्देश्य

4.2.1 आसन का अर्थ

4.2.2 आसन की परिभाषा

4.2.3 आसन का उद्देश्य

4.3 सूर्य नमस्कार

4.4 सूक्ष्म योग

4.4 तड़ासन

4.5 तिर्यक तड़ासन

4.6 कटिचक्रासन, विधि, लाभ, सावधानियाँ

4.7 वृक्षासन, विधि, लाभ, सावधानियाँ

4.8 गरूणासन, विधि, लाभ, सावधानियाँ

4.9 सारांश

4.10 अभ्यास प्रश्न

4.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

हठ ग्रन्थों में आसन

4.0 उद्देश्य

- हठयोग में वर्णित आसनों के बारे में चित्र सहित देख पायेंगे।
- उनकी विधि, लाभ के बारे में जान सकेंगे।
- उनकी सावधानियों को जान सकेंगे।
- अपने जीवन में आसन की महत्व को समझ सकेंगे।

4.1 प्रस्तावना

मानव अपने जीवन के उद्भव के प्रारम्भिक काल से ही अपने शरीर के प्रति जिज्ञासु रहा है। इसी जिज्ञासा के अन्तर्गत हमारे प्राचीन ऋषि, मुनि तथा मनीषियों ने इसी देह में स्थित आत्म तत्त्व से साक्षात्कार भी किया। उन्हें ध्यान आया कि इस परमानन्द रूपी अनुभूति का माध्यम हमारी ही शरीर की कुछ विशेष यौगिक स्थितियां थीं। अतः हमारे मनीषियों ने अपनी साधना के दौरान अपने शरीर को स्वस्थ तथा मन को स्थिर करने के लिए वृक्षों, पशु–पक्षियों की भाव–भगिमाओं के दर्शन तथा उनके सूक्ष्म निरीक्षण द्वारा यह जाना कि ये सभी अपने वातावरण शरीर और परिस्थितियों के साथ तालमेल बैठाकर सुखी तथा स्वस्थ जीवन व्यतीत करते हैं। अनुभव के द्वारा उनके समझ में आया कि किस आसन विशेष के अभ्यास से किस हार्मोन को स्रावित एवं नियंत्रित किया जा सकता है।

उदाहरणार्थ– खरगोश की भंगिमा का अनुकरण कर शशांकासन में एड्रीनलिन के प्रवाह को प्रभावित किया जा सकता है। इसी तरह जलचर, कीट पतंगों, नभचर, पशुओं आदि की विभिन्न भंगिमाओं का अनुकरण कर, ऋषियों–योगियों ने अपने स्वास्थ्य–रक्षण का उपाय खोज निकाला था, और इसके द्वारा वे प्रकृति की चुनौतियों का मुकाबला तथा उससे तालमेल बिठाने में सक्षम हुए, और कुछ विशेष स्थितियों का आविष्कार किया जिन्हें हम आसनों के रूप में जानते हैं।

हठयोग के प्राचीन ग्रन्थों में उल्लेखानुसार 84 लाख आसन जो जीव के 84 लाख योनियों के प्रतीक हैं। मुक्तावस्था के पूर्व हर जीव को इन सभी योनियो से गुजरना पड़ता है। ये आसन प्राणी की प्रारम्भिक अवस्था से चरमावस्था तक के प्रगतिशील विकास को प्रकट करते हैं। अनेक युगों तथा कालों के अनुरूप ऋषियों एवं योगियों ने क्रमशः आसनों को रूपान्तरित तथा संख्या को घटाते रहे। 84 लाख

से 84 फिर 32 फिर 15 तथा उसमें भी 2 अथवा 4 आसन विशेष महत्त्व के हैं। इन आसनों के अभ्यास द्वारा कर्म प्रक्रिया को तीव्र कर एक ही जीवन में कई जन्मों की प्रगति को प्राप्त किया जा सकता है।

4.2 आसन का अर्थ, परिभाषा एवं उद्देश्य

4.2.1 आसन का अर्थ–

आसन हमारे शरीर, मन और आत्मा के पूर्ण सन्तुलन की अवस्था है। परमात्म तत्त्व की ओर बढ़ने में मानव शरीर मुख्य साधन है। अतः शरीर को सुन्दर सुगठित, स्वच्छ एवं निर्मल रखने हेतु आसनों को अभ्यास आवश्यक है। इसीलिए हठयोग में आसनों को शरीर का संवर्धन करने तथा शक्तिशाली बनाने वाले अभ्यास के रूप मे जाना जाता है।

आसन शब्द संस्कृत भाषा के अस धातु से बना है। जिसके दो अर्थ हैं– पहला बैठने का स्थान (Seat), दूसरा – शारीरिक अवस्था

1. **बैठने के स्थान से तात्पर्य–** कुश, चटाई, दरी, मृगछाल आदि का आसन ।
2. **शारीरिक अवस्था का अर्थ–** शरीर, मन तथा आत्मा की सुखद संयुक्त अवस्था अतः जिस स्थिति में शरीर को स्थिरतापूर्वक निश्चित समय तक सुखपूर्वक रखा जा सके वह आसन कहलाता है।

योगिक ग्रन्थों में इन आसनों को कहीं प्रथम कही द्वितीय और कहीं तृतीय योग के रूप में स्वीकृत किया गया है। स्वात्माराम के हठयोग प्रदीपिका मे आसनों का स्थान प्रथम है। घेरण्ड संहिता में शोधनकर्म के उपरान्त आसन को द्वितीय क्रम में तथा महर्षि पतंजलि कृत योगसूत्र में अष्टांग योग के अन्तर्गत आसन को तृतीय क्रम में रखे हैं।

आदियोगी भगवान शिव ने 84 लाख आसनों किया है। 84 लाख आसन साधारण मानव के लिए सम्भव नहीं, अतरू मानव के कल्याणार्थ अभ्यास हेतु 84 आसनों का वर्णन है

चतुरशीति लक्षणा में कैकम् समुदाहृतम् ।

ततः शिवेन पीठानाम् षोडषोन शतम् कृतम्।।

84 आसनों में से महर्षि घेरण्ड ने स्थिर अभ्यास के रूप में इसका वार्णन किया है। 32 आसन मृत्युलोक के लिए आवश्यक माने गये हैं।

हठयोग प्रदीपिका में स्वात्माराम ने 15 आसनों का वर्णन किया है। जिनमें 4 श्रेष्ठ कहे गये हैं। इन 4 में भी सिद्धासन पर अधिक बल दिया गया है।

हठयोग में आसन शरीर की वे विशिष्ट अवस्थाएं हैं जो नाड़ियों और चक्रों को खोलती हैं तथा उच्च जागरुकता प्राप्त करने के साधन है। हठयोगियों का अनुभव है कि आसनों के द्वारा शरीर पर नियंत्रण विकसित कर लेने के पश्चात मन पर भी नियंत्रण सम्भव है। हठयोग में आसन का स्थान सर्वोपरि है।

4.2.1 आसन की परिभाषा–

योग में शरीर, ज्ञान प्राप्ति का एक उपकरण है। वह ऐसा शरीर चाहता है, जो बज्र की तरह कठोर हो, स्वस्थ हो। जिसेस परमात्मा से प्राप्त उस शरीर को वह, उसे (भगवान) उसी रूप में समर्पित कर सके।

योगासन हमारे प्राचीन विज्ञान है। जिसमें अपने जीवन की प्रत्तेक अवस्था को जानने के लिए, शरीर मन और बुद्धि को जानने के लिए अलग–अलग अभ्यास तथा विधियां थी। हमारा आसन भी उन्हीं में से एक है। विभिन्न ग्रन्थों तथा मनीषियों ने आसन की निम्मलिखित परिभाषाएं दी है–

महर्षि पतंजलि ने बहुत ही सरल शब्दों में आसन को परिभाषित किया है–

'स्थिर सुखमासनम् ।' (योगदर्शन 2/46)

(स्थिर एवं सुखपूर्वक बैठने का नाम आसन है।)

योग सूत्र– के व्यास भाष्यकार टीकाकार वाचस्पति मिश्र ने कहा है–

'येन संस्थानेनावस्थितस्य स्थैर्य सुखम सिद्धयति तदासनम्।'

श्री मद् भागवत गीता में श्रीकृष्ण ने आसनों के विषय में कहा है कि–

समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः ।

संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशाश्चनवलोकयन् ॥ 6/13

अतः (कमर से गले तक का भाग, सिर और गले को सीधे अचल करके तथा अपनी नासिका के अग्र भाग को देखते हुए स्थिर होकर बैठना आसन है।

तेजोबिन्दु उपनिषद् में – **सुख नैव भवेत यस्मिन् जस्त्रं ब्रह्मचिन्तनम् ।**

(जिस स्थिति में बैठकर सुखपूर्वक निरन्तर परब्रह्म का चिन्तन किया जा सके, उसे ही आसन समझना चाहिए।)

अष्टांग योग में चरणदास जी ने कहा है–

'चौ चौरासी लाख आसन जानो योनिन की बैठक पहचानो।'

अतः विभिन्न योनियों के जीव जन्तु जिस अवस्था में बैठते हैं, उसी स्वरूप को आसन कहते है।

प्रयत्न– प्रयत्न शैथिल्यानन्त समापत्तिभ्याम् ।

(प्रयत्न की शिथिलता से और अनन्त (परमात्मा) में मन लगाने से आसन सिद्ध होता है।)

योगदर्शन 2/48 में– **ततो द्वन्दानभिघातः ।**

आसन सिद्ध होने पर योगी को, गर्मी–सर्दी, भूख–प्यास आदि द्वन्द नहीं सताते।

आसनों के निरन्तर अभ्यास से शारीरिक असमर्थता और मानसिक बाधाओं से व्यक्ति स्वयं को मुक्त कर हल्का महसूस करता है।

अतः शरीर जितना दृढ़ एवं स्वस्थ होगा, आसन में उतनी ही स्थिरता अधिक होंगी। योगमय स्थिति में आसन योगासन कहलाता है।

इस प्रकार उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि जिस स्थिति में बैठने से सुख का अनुभव होता है, वह आसन कहलाता है।

4.2.3 आसनों का उद्देश्य–

आसनों का अभ्यास जीवन के हर पक्ष को प्रभावित करता है। मुण्डकोपनिषद में बताया गया है कि बिना शक्ति और बिना उद्देश्य के पूर्णत्त्व को प्राप्त नहीं हो सकते। घटस्थ योग में शरीर को घट की संज्ञा दी गयी– जिस प्रकार कच्चा घड़ा पानी में गल जाता है, वही पक जाने पर किसी आघात से क्षीण नहीं होता। इसीलिए शरीर को शक्ति सम्पन्न बनाने उसमें दृढ़ता लाने के लिए योगासन की अनिवार्यता स्वीकार की गया ।

आसन शारीरिक स्थिति मात्र नहीं है, आसन में मन को भी केन्द्रित करना होता है। शरीर में अनेक बिन्दु हैं, जो उर्जा के केन्द्र हैं। आसन करते समय जब इन पर मन को एकाग्र किया जाता है तो चेतना के स्तर पर एक नया प्रवेश द्वार खुलता है। बन्द नाड़ियां जो शरीर में प्राण–प्रवाह के मार्ग हैं, क्रियाशील होने लगती हैं। परिणामस्वरूप सुप्त उर्जा मुक्त होती है, शरीर की प्राण शक्ति जागृत होती है, शरीर संस्थान सुदृढ़ होता है। मन हल्का, रचनात्मक, उल्लासपूर्ण और पूरे व्यक्तित्त्व में गुणात्मक परिवर्तन के कारण पूरा व्यक्तित्त्व सन्तुलित हो जाता है।

अतः हम आसनों के उद्देश्य स्वरूप शारीरिक एवं मानसिक कष्टों से मुक्ति पाते हैं। आसन शरीर के जोड़ों को लचीला बनाते हैं। शरीर की मांसपेशियों में खिंचाव उत्पन्न कर उन्हें स्वस्थ बनाते हैं तथा शरीर से विषाक्त तत्त्वों को निकाल बाहर फेंकते हैं।

इस यूनिट का अध्ययन करने के बाद आप–

- यौगिक सूक्ष्म क्रियाओं की आवश्यकता और उनके महत्व का वर्णन कर सकेंगें।
- सूक्ष्म क्रियाएं करने की विधि और उनके प्रभावों का उल्लेख कर सकेंगे।
- कुछ विशेष आरामदायक व ध्यानात्मक आसन तथा विभिन्न रोगों में उनके लाभ स्पष्ट कर सकेगें।
- यौगिक सूक्ष्म क्रियाओं से पूर्व की जाने वाली तैयारियों और सावधानियों की व्याख्या कर सकेंगे।

यौगिक सूक्ष्म क्रियाएं (व्यायाम) और योग का महत्व

यहां पर हम यौगिक सूक्ष्म क्रियाओं, उन्हें करने का सही तरीका और उनके लाभों के विषय में विस्तार से चर्चा करेंगे। योग की सरल व सूक्ष्म क्रियाओं से आप क्या समझते हैं?

योगासन– तंत्रिका–तन्त्र के कार्य कलापों में सामजस्य उत्पन्न करते हुए, हल्की मालिश द्वारा शरीर के आन्तरिक अंगों की कार्य क्षमता को बढ़ाते हैं।

हठयोग ग्रन्थों में– **आसनेन रुजो हन्तिः । आसनेन भवेत दृढ़म।।**

(आसन करने से शरीर में स्थित विशैले द्रव्य पदार्थ जल्दी ही बाहर निकल जाते हैं।) आसनों के नियमित अभ्यास से शरीर पूर्ण स्वस्थ बना रहता है।

अतः हठयोग में आसनों के उद्देश्य स्वरूप आसनों के अभ्यास से हमारी प्रसुप्त शक्ति जागृत हो जीवन के प्रत्तेक क्षेत्र में अधिकाधिक आत्मविश्वास की अनुभूति प्रदान कर हमें मानसिक एवं भावनात्मक सन्तुलन प्रदान करती है।

स्वामी कुवलयानन्द जी के अनुसार योगिक क्रियाओं का उद्देश्य मात्र शारीरिक लाभ प्राप्त करना नहीं, बल्कि आध्यात्मिक शक्तियों को जागृत करना है। शारीरिक लाभ इसका छोटा उद्देश्य है। आध्यात्मिक लाभ का भी होना आवश्यक है, क्योंकि आसन एक सूक्ष्म विज्ञान है।

अतः हम कह सकते हैं कि योगासनों के अभ्यास द्वारा जीवन के हर क्षेत्र में परिपूर्णता आती है। जन्मजन्मांतरों के संस्कार क्षीण हो जाते हैं। इस संसार बन्धन से मुक्ति मिल जाती है।

4.2.4 हठयोग में आसन का महत्त्व–

योगासन वर्तमान समय की सर्वाधिक मूल्यवान विरासत है । यह वर्तमान युग की अनिवार्य आवश्यकता और आने वाले युग की संस्कृति है ।

शारीरिक एवं मानसिक चिकित्सा योगासनों की सबसे महत्त्वपूर्ण उपलब्धियों में से एक है । आसन का अभ्यास, विधिपूर्वक करने से शरीर में स्थिरता, निरोगता तथा दृढ़ता आती है। इससे शरीर में रजोगुण की समाप्ति होती है। "आसनेन रजोहन्ति का सिद्धान्त" अत्यन्त प्रचलित है। आसन एक शसक्त विद्या के रूप में प्रभावकारी है । दमा, मधुमेह, रक्तचाप, गठिया या जोड़ों के दर्द, पाचनतंत्र की गड़बड़ी तथा अन्य कुछ रोगों की चिकित्सा के लिए योगासनों का एक वैकल्पिक प्रणाली के रूप में महत्त्वपूर्ण स्थान है।

योगासनों के अभ्यास द्वारा हम कर्मो में कुशल हो जाते हैं। यह हमें सामाजिक कुरीतियों से भी जूझने में सहायक बनाता है। योगासनों द्वारा हम अपने वास्तविक स्वरूप से जुड़कर अपने वर्तमान युग में सामंजस्य के लिए सक्षम बन सके हैं।

इस परिप्रेक्ष्य में योगासन साधारण शारीरिक व्यायाम नहीं, बल्कि एक नवीन जीवन पद्धति को स्थापित करने का प्रभावकारी साधन हैं। आसन का अभ्यास कर लेने के पश्चात् प्राणमयाम की क्रिया सहज साध्य हो जाती है।

महर्षि पतंजलि के अष्टांग योग में आसन तीसरी सीढ़ी है, जो आगे की सीढ़ियों के लिए आवश्यक ही नहीं अपरिहार्य है। यह हठयोग का पहला और महत्त्वपूर्ण अंग है।

आसन वे अभ्यास हैं, जो शरीर रूपी साधन से सीधा सीधा सम्बन्धित है। अन्य सात अंग शरीर नहीं, मन के स्तर पर प्रभाव डालते हैं। इसीलिए जनसाधारण में योग का यह अंग अधिक लोकप्रिय है।

वर्तमान युग की अपेक्षाओं एवं आवश्यकताओं की दृष्टि से देखें तो शारीरिक स्वास्थ्य एवं सौन्दर्य को बनाए रखने के लिए आसन एक महत्त्वपूर्ण साधन है। आसनों के अभ्यास से रोग–प्रतिरोधक क्षमता अत्यन्त उच्च स्तर तक बढ़कर हमें व्याधियों से सुरक्षित करती है।

जिन असाध्य रोगों का निवारण चिकित्सा शास्त्र में सम्भव नहीं होता आसनों का प्रयोग कर उसे भी ठीक किया जा सकता है।

उम्र के साथ होने वाले शारीरिक परिवर्तनों को योगासनों के अभ्यास द्वारा उसकी गति को धीमी कर सकते हैं। श्वेताश्वतर उपनिषद में कहा भी गया है–

नतस्य रोगों न जरा न मृत्युः।

प्राप्तस्य योगाग्निमय शरीरम् ।। – 2/12

घेरण्ड संहिता में भी बताया गया है कि–

अभ्यासात्का दिवर्णानां यथाशास्त्राणि बोधयत ।

तथा योगासन समासाद्य तत्त्वज्ञान च लभ्यते ॥

जैसे कखगघ से अक्षरांभ का अभ्यास करते हुए शास्त्र का विद्वान बन जाते हैं। वैसे ही योगासनों का अभ्यास करते–करते तत्त्वज्ञान प्राप्त हो जाता है ।

4.2.5 आसनों के सामान्य लाभ–

आसनों से शरीर का हर अंग कोशिका के स्तर तक प्रभावित होता है। योगासनों के निरन्तर अभ्यास के फलस्वरूप शरीर, मन और चेतना में परिवर्तन से व्यक्तित्व में गुणात्मक परिवर्तन तथा पूरे व्यक्तित्त्व में सन्तुलन आता है।

1. आसनों से अंगों में संकुचन और प्रसार से नलिकाओं में रक्त का प्रवाह बढ़ने से हर अंग को पूरा पोषण मिलता है और वह कार्यशील बना रहता है।
2. आसनों के अभ्यास से मांसपेशियों तथा जोड़ों में लचीलापन, व्यक्ति लम्बी उम्र तक कार्यशील तथा बुढ़ापे के लक्षण धीमी गति से आते हैं।
3. हमारी अन्तःस्त्रावी ग्रन्थियों का बहुत ही तालमेल के साथ कार्य करना । चिकित्सा विज्ञान भी इसे गहराई से समझने में असक्षम है। हम आसनों के अभ्यास द्वारा इस तंत्र के सन्तुलन को बनाए रखने और इसकी गड़बड़ियों को दूर करने में सहायक हो रहे हैं।
4. आसनों के अभ्यास द्वारा नाड़ियां शिथिल होने से बचती हैं। नाड़ियों के बन्द प्रवाह को खोलता है।
5. हम आसनों के अभ्यास द्वारा मन पर नियंत्रण करना सीख जाते हैं। फलस्वरूप हमारा पूरा व्यक्तित्त्व बदल जाता है।
6. आसन अवरोधों को हटाकर प्राण के प्रवाह का मार्ग प्रशस्त करके पूरे उर्जा क्षेत्र से प्राण का प्रवाह अबाध और समान होकर बहने से हमारे रोग को दूर कर उत्तम स्वास्थ्य की प्राप्ति कराती है।
7. शरीर रुगमता और पीड़ा से बिलकुल मुक्त तथा मन निर्विकार होता है। शरीर और मन का बोध समाप्त होने पर ही परम चेतना की प्राप्ति सम्भव है । वह सर्वव्यापक चेतना का साक्षात्कार करने में सक्षम होती है। जो हमारा परम लक्ष्य भी है।

8. आसन करते समय जिस अंग पर मन को केन्द्रित करते हैं। वहां प्राण (आक्सीजन) का प्रवाह बढ़ जाता है। प्राण के प्रवाह मार्ग को हम नाड़ियों कहते हैं, अतरू नाड़ियों के व्यवस्थित होने से हमारा प्राण भी व्यवस्थित हो जाता है।

9. हम शारीरिक तथा मानसिक कष्टों से मुक्त होते हैं

10. विषाक्त तत्त्व हमारे शरीर से बाहर निकल जाते है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इन योगासनों से हमारे समस्त प्रकार की व्याधियों का समापन सम्भव है।

4.2.6 हठग्रन्थों में आसन के : मूलभूत नियम एवं सावधानियां–

योगासनों का प्रभाव व्यक्तित्त्व के सबसे बाह्यपक्ष शरीर से प्रारम्भ होता है। शारीरिक स्तर पर असन्तुलन का अनुभव होने से अंगों पेशियों और तंत्रिकाओं के कार्यकलापों में आपसी तालमेल अथवा सामंजस्य नहीं रह जाता, वे एक दूसरे के प्रतिकूल कार्य करने लगते हैं। योगासनों का लक्ष्य शरीर के विविध कार्य कलापों के बीच पूर्ण सामंजस्य स्थापित करना है, ताकि वे सम्पूर्ण शरीर के हित में कार्य करें। इसी को ध्यान मे रखते हुए कुछ मूलभूत नियम बनाए गये और सावधानियां रखी गयीं। –

1. शान्त, स्वच्छ, हवादार, स्थान पर आसन अथवा कम्बल बिछाकर ही उसके उपर योगासनों का अभ्यास करें।

2. आसनों से पूर्व दैनिक क्रिया – मल–मूत्र से निवृत्त हो लें।

3. आसनों का पूर्ण अभ्यास क्रम 45 मिनट का है। मध्य अभ्यास क्रम में 30 मिनट और संक्षिप्त में 15 मिनट का है। किसी आसन का विशेष लाभ लेने के लिए उसे अभ्यास क्रम का पूर्ण समय देना चाहिए ।

4. सभी शुद्धि क्रियाएं प्रातःकाल सूर्योदय से पूर्व ही करनी अधिक लाभप्रद हैं, क्योंकि दिन चढ़ने के साथ–साथ आमाशय में अम्लता बढ़ जाती है।

5. आसन करते समय शरीर पर कम से कम वस्त्र रहने चाहिए।

6. आसन्नाभ्यास का स्थान समतल सर्व दृढ़ होना चाहिए।

7. भोजन आसन के 3 से 4 घंटे पूर्व एवं आधा–पौन घंटे के पश्चात् करना उचित है। एक कप पेय लेने के बाद भी आधा घंटा के पश्चात् ही आसन प्रारम्भ करना चाहिए।

8. सामान्यतः सभी ऋतुओं में स्नान के पश्चात आसन करना उत्तम होगा। स्नान से रक्त संचार आभ्यान्तर होकर मांसपेशियों सक्रिय एवं मन शान्त हो जाता है।

9. पहले आसन, मुद्रा, बन्ध आदि के पश्चात् शुद्धि क्रियाएं तत्पश्चात् प्राणायाम का अभ्यास करना उचित है।

10. आसनों का अभ्यास सदैव किसी दक्ष व्यक्ति के निर्देशन में ही करना चाहिए।

अन्त में शवासन करके ही अभ्यास क्रम समाप्त करना उचित है। सामूहिक अभ्यास में प्रार्थना से प्रारम्भ करना उचित रहता है।

उपर्युक्त प्रस्तुत की गयी आसन के नियम एवं उससे सम्बन्धित सावधानियों के पश्चात हम यह कह सकते हैं कि यह अभ्यास क्रम और आसनों का समय अन्तिम नहीं है। इसमें व्यक्ति समय और स्थानानुसार अपनी सुविधानुसार परिवर्तन भी किया जा सकता है।

4.2.7 आसन तथा व्यायाम में अन्तर–

सामान्यतः हम आसन और व्यायाम को एक ही मान लेते हैं, क्योंकि कुछ गत्यात्मक समूह के विशेष आसनों का बाह्य स्वरूप व्यायाम के समान प्रतीत होता है, परन्तु ऐसा नहीं है। दोनों का अपना अलग–अलग स्थान सर्व महत्त्व है । आसन, व्यायाम के सभी लाभ देते हैं लेकिन आसन में व्यायाम के हानिकारक प्रभाव नही होते ।

1. व्यायाम हर उम्र का इन्सान नही कर सकता, लेकिन आसन हर उम्र और बीमार और वृद्ध इंसान भी कर सकता है।

2. व्यायाम में मन की एकाग्रता की कोई अवधारणा नही, जबकि योगासनों का मुख्य आधार मन की जागरूकता एवं एकाग्रता है। मन की जागरूकता योग का पहला आधार है।

3. व्यायाम केवल शारीरिक अभ्यास है। आसनों से शारीरिक स्वास्थ्य की प्राप्ति, मन पर नियंत्रण तथा व्यक्ति का सर्वांगीण विकास होता है।

4. व्यायाम में अपनी श्वासों पर कोई ध्यान नहीं, जबकि योग में श्वासों (हमारी जीवनी शक्ति) पर सन्तुलन सिखाया जाता है। हमें सन्तुलित श्वांस लेनी होती है।

5. व्यायाम मांसमोशियों में दृढ़ता एवं कड़ापन लाता है, तत्काल शारीरिक शैष्ठव एवं शक्ति में वृद्धि होती है, लेकिन आगे चलकर, तनाव– गठिया आदि रोगों की सम्भावना में वृद्धि होती है।

6. आसन में मांसपेशियां लचीली बनती हैं। जिससे हम अधिक लम्बे समय तक स्वस्थ तथा आर्थराइटिस आदि रोगों से बचते हैं। आसनों के अभ्यास से व्यायाम द्वारा उत्पन्न तनाव एवं जकड़न दूर होती है।

7. आसनों का अभ्यास शरीर के स्नायू संस्थान तथा अन्तः स्रावी संस्थान को प्रभावित करता है, तथा इसमें सन्तुलन लाकर शरीर की नियंत्रण प्रणाली को शसक्त तथा बौद्धिक विकास पर सकारात्मक प्रभाव डालता है।

8. योगासन से वीर्य की रक्षा एवं उसका उर्ध्वगमन संभव है। व्यायाम में इस तरह का कोई नियंत्रण नहीं हो पाता।

9. योगासन से सम्पूर्ण शरीर में रक्त–संचार समान रूप से होने के कारण पाचन–तन्त्र सुचारू रूप से कार्य करते हैं, व्यायाम के कारण, शरीर के भागों में रक्त की गति तेज होने से पाचन तन्त्र को आवश्यकतानुसार रक्त की पूर्ति नहीं हो पाती।

10. आसन से सहनशीलता, दृढ़ता, आत्म संयम, आत्मविश्वास, संकल्पशक्ति जैसे अमूल्य गुणों का विकास होता है। यही व्यायाम से मानव जीवन को श्रेष्ठ बनाने वाला बौद्धिक विकास नहीं हो पाता ।

11. व्यायाम मे हमारी उर्जा तेजी से खर्च होती है जिससे हम थक जाते हैं । योगासनों में हमें उर्जा की प्राप्ति होने से हम तरोताजा हो जाते हैं।

12. व्यायाम के लिए पर्याप्त जगह और साधन की आवश्यकता होती है, जबकि योग में हमें एक मैट और थोड़ी सी जगह चाहिए होती है।

13. व्यायाम में कोई सिद्धान्त नहीं होता, जबकि योग पांच सिद्धान्तों पर आधारित है– सही भोजन, सही सोच, सन्तुलित श्वास, नियमित योगाभ्यास और आराम (विश्राम) ।

14. योगासनों का प्रभाव हमारे जीवन पर अत्यन्त गहरा पड़ता है। यह स्थायी शान्ति एवं आनन्द का स्रोत है।

    व्यायाम जीवन पर अत्यन्त सीमित एवं अन्य प्रभाव डालता है।

इस तुलनात्मक अध्ययन का यह अर्थ नही है कि व्यायाम का कोई महत्त्व ही नहीं है। आसनों के अभ्यास से व्यक्ति का समान्य स्वास्थ्य ठीक रह सकता है, परन्तु जीवन में साहासिक कार्य, स्पर्धा में सबसे आगे रहने की भावना, युवावस्था में मांसपेशियों को अतिरिक्त बलयुक्त और सुडोल बनाने के लिए व्यायाम तथा खेलकूद अनिवार्य है। परन्तु इसकी अपनी सीमा है। सीमा से अधिक व्यायाम का अभ्यास

लाभ के स्थान पर हानि ही पहुँचाएगा। उचित हो कि हम व्यायामों के साथ ही आसन, प्राणायाम और योगाभ्यास भी करें जिससे शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा का सन्तुलन बना रहे। आसनों का अभ्यास पूर्ण वैज्ञानिक विधि का व्यायाम कहा जा सकता है।

4.2.8 आसनों के प्रकार–

आदियोगी भगवान शिव ने 84 लाख आसनों का वर्णन किया है। 84 लाख आसनों का ज्ञान साधारण मानव के लिए सम्भव नहीं हो सकता। इसलिए मानव के कल्याणार्थ अभ्यास हेतु 84 विशिष्ट आसन है। और इनमें से 32 आसन मृत्युलोक के लिए आवश्यक माने गये हैं। इसका वर्णन महर्षि घेरण्ड ने किया है। "हठयोग प्रदीपिका में " स्वात्माराम योगीन्द्र ने मात्र 15 आसनों का वर्णन किए हैं। जिनमें 4 आसन श्रेष्ट कहे गये हैं। इन 4 में भी सिद्धासन पर अधिक बल है।

घेरण्ड ऋषि ने हठप्रदीपिका के 15 आसनों के साथ–साथ 17 आसन और जोड़ दिए हैं। जो इन 15 आसनों में कठिनाई का अनुभव करे वे इन 17 आसनों में से सरल का अभ्यास कर तब इन 15 को कर सकते हैं।

हमारे इन आसनों के नाम हर दृष्टि से अर्थ पूर्ण हैं। हम कहते हैं– "आत्मवत सर्व भूतेषु अथवा सर्वे भद्राणि पश्यन्तु" (हम सभी प्राणियों को एक समान मानते हैं, तथा प्रेमभाव रखते हैं।)

4.3 सूर्य नमस्कार

प्राचीन काल अथवा वैदिक युग के प्रबुद्ध ऋषि–महर्षि पूर्णतः प्रकृतिवादी थे, उनका जीवन सरल था, लेकिन प्रकृति के बारे में उनका ज्ञान आश्चर्यजनक रूप से गहरा था। प्राचीन काल में दैनिक सूर्योपासना का विधान नित्य–कर्म के रूप में था। उन्हें ज्ञात था कि पंच महाभूतों में से केवल अग्नि तत्त्व को दूषित नहीं किया जा सकता। अन्य महाभूतों को शुद्ध करने को आन्तरिक शक्ति उनमें थी, जिसे उन्होंने छुआ था।

सूर्य हमें प्राचीन काल से ही आकर्षित करता आया है। यह हमारे जीवन को ही नहीं, हमारे सूक्ष्म शरीर को भी अपनी चौतन्य शक्ति से जीवन्तता प्रदान करता है। वैज्ञानिक इसे आग का गोला अथवा कोई ग्रह कहें, लेकिन हमारे मनीषियों ने इसके अनेक रहस्यों को समझकर एक स्वस्थ ओजस्वी और सक्रिय जीवन तथा आध्यात्मिक जागरण और चेतना के विकास के लिए एक अत्यन्त उपयोगी पद्धति के रूप में इसे स्थापित किया है। हमारे मनीषी साधक इसके सम्मान में झुके और इसकी पूजा भी की। इन्हीं ऋषियों द्वारा सूर्य नमस्कार की परम्परा हमें प्राप्त हुई है।

सूर्य हमारी आध्यात्मिक चेतना का एक शक्तिशाली प्रतीक है। सूर्य नमस्कार का शाब्दिक अर्थ है– सूर्य को नमन । यह 12 शारीरिक स्थितियों से मिलकर बना है। सूर्य नमस्कार स्वयं में एक पूर्ण साधना है । गतिशील आसनों का यह समूह प्रारम्भ मे हठयोग का पारम्परिक अंग नहीं माना जाता था, कालान्तर में इसे मौलिक आसनों की श्रृंखला में सम्मिलित किया गया। इसमें आसन, प्राणायाम, मन्त्र, और ध्यान की विधियों का समावेश है। प्रातः कालीन अभ्यास प्रारम्भ करने के लिए यह सर्वोत्तम आसन समूह है। योग में सूर्य का प्रतिनिधित्व पिंगला अथवा सूर्य नाड़ी द्वारा होता हैं। सूर्य नाड़ी प्राण वहिका है, जो जीवनी शक्ति का वहन करके हमारे अतीन्द्रिय शरीर को सक्रिय करती हैं। स्थिरता पूर्वक लयबद्ध क्रम में इनका अभ्यास करने से ब्रह्माण्ड की लय बद्धता, दिन के चौबीस घंटे, वर्ष के 12 राशि चक्र और शरीर की जैविक लय प्रतिबिम्बित होती है। आकृति और लय का यह संयोजन शरीर और मन में एक परिवर्तनकारी शक्ति उत्पन्न करता है। जिससे एक पूर्ण और अधिक गतिशील जीवन का निर्माण होता है।

सूर्य के कारण यह सृष्टि है। देखने में सूर्य का प्रकाश श्वेत है, लेकिन इसमें सप्त वर्णों की प्रकाश रश्मियों का सम्मिश्रण है। इसमें सात रंग संयुक्त हैं– बैंगनी, गहरा नीला, नीला, हरा, पीला, नारंगी और लाल । जिसमें मूल रंग तीन ही हैं।

सूर्य नमस्कार सूर्योदय के समय पूर्वाभिमुख होकर, जब किया जाता है, तो यही प्रकाश के मूल रंगों की तीन किरणें ही हमें सशक्त कर निरोग रखती हैं।

सूर्य नमस्कार मन्त्रों की प्रयोग विधि–

सूर्य नमस्कार प्रारम्भ करने से पूर्व निम्मलिखित मन्त्र पढ़कर सूर्य को प्रणाम करें–

आदिदेव नमस्तुभ्यं प्रसीद मम भास्कर।

दिवाकर नमस्तुभ्यं प्रभाकर नमोऽस्तुते।।

सूर्य नमस्कार के सभी मंत्र तथा सूर्य नमस्कार के पूर्व (आह्वान मंत्र) एवं पश्चात् (विसर्जन मंत्र) कहे जाने वाले श्लोक सूर्य नमस्कार स्थिति में कहना चाहिए। सूर्य नमस्कार प्रारम्भ करने से पूर्व निम्नलिखित मंत्र को पढ़ना चाहिए –

ॐ ध्येय सदा सवितृ मंडल मध्यवर्ती,

नारायणः सरसिजासन सन्निविष्टः

केयूर वान मकर कुण्डलगान किरीट,

हारी हिराग्यमय वपुर्धृत शंखचक्रः।।

सूर्य नमस्कार आसन के पूर्ण (सम्पूर्ण) होने पर निम्नलिखित मन्त्रों के साथ विसर्जन (समापन) करना चाहिए–

आदित्याय नमस्कारान ये कुर्वन्ति दिने दिने,

दीर्घमार्गुबत्नम् वीर्य तेजस्तै षां ष्जायते,

जन्मान्तर सहस्त्रेणु दारिद्रयं नोपजायते ।

नमो धर्म विधानाय नमस्ते कृत साक्षिने,

नमः प्रत्यक्ष देवाय, भास्कराय नमो नमः ।

अकाल मृत्यु हरणम् सर्व व्याधि विनाशनम्

सूर्य पापोदकम् नीर्थम् जठरे धारयाभ्यम्।।

सूर्य नमस्कार आसनों की प्रयोगात्मक तैयारी –

सूर्य नमस्कार अभ्यास के लिए सबसे उपयुक्त समय सूर्योदय का समय है। स्वच्छ मन से प्रसन्न होकर, स्वच्छ एवं ढीले वस्त्र पहनकर शान्त वातावरण में अभ्यास करना चाहिए। क्योंकि प्रातःकाल जलवायु शुद्ध और सूर्य की अल्ट्रावायलेट किरणें भी हमें हानि नहीं पहुंचातीं। किसी कारणवश प्राप्तः न कर पाये तो सूर्यास्त का समय भी अभ्यास के लिए ठीक है। क्योंकि उस समय अभ्यास करने से जठराग्नि उद्दीप्त होती है। सूर्य नमस्कार किसी भी समय किया जा सकता है। बशर्ते कि आपका पेट खाली रहे।

प्रारम्भ के दिनों में साधक को अपने शरीर का ध्यान रखते हुए 2 या 3 आवृत्ति करनी चाहिए। सूर्य नमस्कार (प्रायोगिक) प्रारम्भ करने से पहले सम्पूर्ण शरीर के प्रति सजग हो जाएं, और उसके साथ सामंजस्य का अनुभव करें । अपनी सजगता को पैर के तलुओं पर ले जाएं, जो जमीन के सम्पर्क में हैं। यदि शरीर में कोई तनाव है तो तलवों, के माध्यम से गुरुत्त्वाकर्षण द्वारा पृथ्वी में समाहित हो रहा है। साथ ही यह अनुभव करें कि पृथ्वी से जीवनी शक्ति आपमें प्रवाहित हो रही है, जो सम्पूर्ण व्यक्तित्त्व को उर्जान्वित कर रही है।

अन्त में सजगता को भू–मध्य में ले जाएं, और वहां एक उदीयमान सूर्य का दर्शन करें । कल्पना करें कि आप उगते हुए सूर्य के सामने हैं, नृत्य की मुद्राओं की तरह एक से दूसरे आसन में सहजता से गति करते नमस्कार करने जा रहे हैं।

मंत्रों के साथ सूर्य नमस्कार अधिक प्रभावी होता है। इन मंत्रों के उच्चारण क्रम में ऐसी विशेषता है जो हमारे हृदय के अन्तराल में प्रसुप्त विभिन्न चक्रों को जागृत कर अदृश्य जगत की हलचलों पर भी प्रभावी होता है। सूर्य नमस्कार की एक–एक आवृत्ति में अलग–अलग स्थितियां हैं, प्रत्येक आसन का अपना एक मन्त्र है।

(1) प्रणामासन –

प्रार्थना की मुद्रा में पंजों को मिलाकर पूर्व दिशा की तरफ सीधे खड़े हो जाएं। नमस्कार मुद्रा में दोनो अगूठों के पर्व अनाहत चक्र पर तथा दोनों प्रकोष्ठ जमीन के समान्तर, कन्धे पीछे की ओर सिर सन्तुलित, गर्दन सीधी, व दृष्टि सामने रखें।

सजगता – वक्ष प्रवेश पर तथा ध्यान अनाहत चक्र पर रखें।

मंत्र – ॐ मित्राय नमः । बीज मंत्र ॐ ह्रां ।

लाभ – रक्त संचार सामान्य करता है। एकाग्रता एवं शान्ति देता है।

(2) हस्तउत्तानासन–

दोनों भुजाओं को सिर के उपर उठाएं। भुजाओं के बीच कन्धों की चौड़ाई के बराबर दूरी रखें। सिर भुजाओं और धड़ के उपरी भाग को थोड़ा सा. पीछे झुकाएं। भुजाओं को ऊपर उठते समय श्वास लें ।

ध्यान – विशुद्धि चक्र पर । दृष्टि हाथ की उगलियों के पोरों पर।

मंत्र – ॐ रवये नमः बीज मंत्र–ऊँ ह्रीं।

लाभ – भुजाओं और कन्धों की मांस पेशियों का व्यायाम उदर की अतिरिक्त चर्बी को हटाता है। पाचन तंत्र बेहतर तथा फुफ्फुस पुष्ट होते हैं।

(3) पादहस्तासन–

सामने की तरफ झुकते हुए दोनों हाथों के पंजों को पैरों के बगल में स्पर्श करते हुए रखें। ललाट को घुटने से स्पर्श कराएं। पैरों को सीधा रखे ।

श्वास – सामने की तरफ झुकते हुए श्वास छोड़े । अधिक से अधिक श्वास बाहर निकालने के लिए आमाशय को संकुचित करें।

ध्यान– स्वाधिष्ठान चक्र और श्रोणी प्रदेश पर हों।

मंत्र – ॐ सूर्याय नमः । बीज मंत्र– ॐ ह्रं ।

लाभ –

आमाशय के रोगों का उन्मूलन, कब्ज नाशक तथा उदर की चर्बी को कम करता है। रक्त संचार में सुधार मेरुदण्ड लचीला तथा उसकी तंत्रिकाओं को शक्ति मिलती है। सावधानी जिनको पीठ की समस्या हो, वे पूरी तरह आगे की ओर नहीं झुकें। आराम से जितना हो सके, उतना ही झुकें।

(4) अश्व संचालन –

बाएं पैरं को जितना सम्भव हो पीछे ले जाएं। बायां घुटना एवं पाद पृष्ठ भाग को जमीन से स्पर्श करायें।..दाएं पंजे को अपनी जगह पर दृढ़ रखते हुए घुटने को मोड़े। भुजाओं को सीधा रखें। दोनों हाथ के पंजे एवं दाएं पैर का पंजा एक सीधी रेखा में ही रखें।

अन्तिम स्थिति में शरीर का भार दोनों हाथों, बाएं पैर का पाद पृष्ठ, घुटना एवं दाएं पैर के उपर शरीर का भार स्थित रहेगा। सिर को पीछे झुकाएं, पीठ को धनुषाकार, दृष्टि उपर की ओर भूमध्य पर केन्द्रित रखें। श्वास – पैर को पीछे ले जाते समय सांस ले।

ध्यान – आज्ञाचक्र पर।

मन्त्र – ऊँ भानवे नमः। बीज मंत्र– – ॐ ह्रैं ।

लाभ – यह आसन आमाशय के अंगों की मालिश करता है। पाचन तंत्र में रक्त संचार बढ़ाता है तथा पाचन तंत्र की कार्यक्षमता को बढ़ाता है। पैरों की पेशियों को सुदृढ़ बनाता है।

(5) पर्वत आसन –

(पर्वतासन के स्थान पर – कहीं– कहीं दण्डासन) शरीर का वजन दोनों हाथ पर स्थिर करते हुरा, दाएं पैर को सीधा करके बासे पंजे के पास रखें। अब नितम्बों को अधिकतम् उपर की तरफ उठाएं एवं सिर को दोनों भुजाओं के बीच जाएं। नाड़ियां जमीन से उपर न उठें और घुटनों की तरफ देखते हुए पैर और भुजाएं एक सीध मे रखे। श्वास दाएं पैर को पीछे ले जाते समय तथा नितम्बों को उठाते समय श्वास छोड़ें।

ध्यान – ध्यान विशुद्धि चक्र पर और सजगता नितम्बों को शिथिल करने पर और गले के आसपास ।

लाभ – सिर सामने की ओर झुका होने के कारण रक्त संचार बढ़कर चेहरे पर ताजगी होने के साथ ही आखों की रोशनी व बालों का झड़ना रूकता है। भुजाओं व पैरों का व्यायाम होता है। मेरुदण्ड के स्नायुओं को पुष्ट करता है। मेरुदण्ड के ऊपरी भाग में रक्त संचार बढ़ाता है। मेरुदण्ड को लचीला बनाता है।

मंत्र – ॐ [खगाय नमः । बीज मंत्र– ॐ ह्रौं]

(6) अष्टांग नमस्कारासन –

घुटने मोड़ते हुए शरीर को तरफ इस प्रकार से झुकाएं कि दोनों पाद पृष्ठ दोनों घुटने, छाती, दोनों हाथों के पंजे एवं ठुड्डी जमीन का की स्पर्श करें । नितम्ब एवं उदर प्रदेश जमीन से थोड़े उपर उठे रहें।

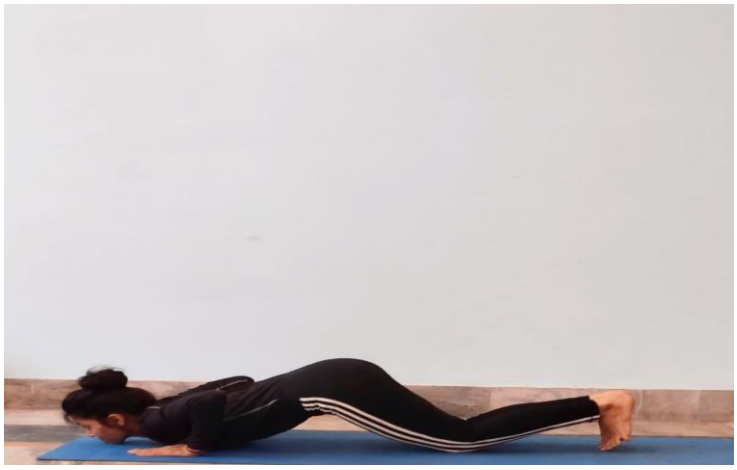

श्वास– श्वास को रोककर रखें। श्वसन न करें।

ध्यान – मणिपुर चक्र पर तथा सजगता उदर प्रदेश पर रखें।

मंत्र – ॐ पूष्णे नमः । बीज मंत्र – ॐ ह्रः

लाभ – छाती व फेफड़ों को शक्ति देता है। पैरों व हाथों की मांसपेशियों को मजबूती देता है । वक्ष को विकसित करता है। स्कन्ध अस्थियों के मध्य स्थित मेरुदण्ड प्रदेश का व्यायाम होता है।

(7) भुजंगासन –

नितम्ब और श्रोणी प्रदेश को नीचे लाकर जमीन का स्पर्श कराएं। कोहनियों को सीधा करते हुए पीठ को धनुषाकार और वक्ष को सर्प की भंगिमा में आगे की ओर ले आएं। सिर को पीछे की ओर झुकाएं।

श्वास – उदर एवं छाती को उपर उठाते समय श्वास ले।

ध्यान – स्वाधिष्ठान चक्र पर तथा सजगता मेरुदण्ड के शिथिलीकरण पर ।

मंत्र –हिरण्यगर्भाय नमः । बीज मंत्र–ॐ ह्रीं ।

लाभ –

पीठ के रक्त संचार में सुधार लाकर मेरुदण्ड की तंत्रिकाओं का शक्ति प्रदान कर उसे लचीला बनाएं रखता है। पाचन तंत्र में तनाव उत्पन्न कर रक्त संचार बढ़ाता है। पाचन क्रिया को क्रियाशील करता है। कब्ज हटाता है। फेफड़ों को सुचारु करता है। दमा, ब्रोकाइटिस, सरवाइकल रोगियों के लिए लाभकारी आसन है।

(8) पर्वतासन (अधोमुख स्वानासन) –

यह पांचवी स्थिति की पुनरावृत्ति है। भुजंगासन से पर्वत आसन मे आ जाए। हाथ और पंजे स्थिति न के ही स्थान पर रहें। नितम्बों को उपर उठाएं और एड़ियों को जमीन पर ले आयें ।

श्वसन – नितम्बों को ऊपर उठाते समय श्वांस छोड़े।

ध्यान – विशुद्धि चक्र पर। सजगता कटि के शिथिलीकरण अथवा कंठ क्षेत्र पर रखें।

मंत्र – ॐ मरीचये नमः । बीज मंत्र ॐ ह्रीं ।

लाभ – स्थिति 5 के सभी लाभ प्राप्त होते हैं।

(9) अश्व संचालनासन – यह आसन क्रमांक 4 की आंशिक पुनरावृत्ति है। स्थिति 4 में बायां पैर पीछे जाता है, जबकि इस स्थिति में दाया मेरे पीछे रहता है।

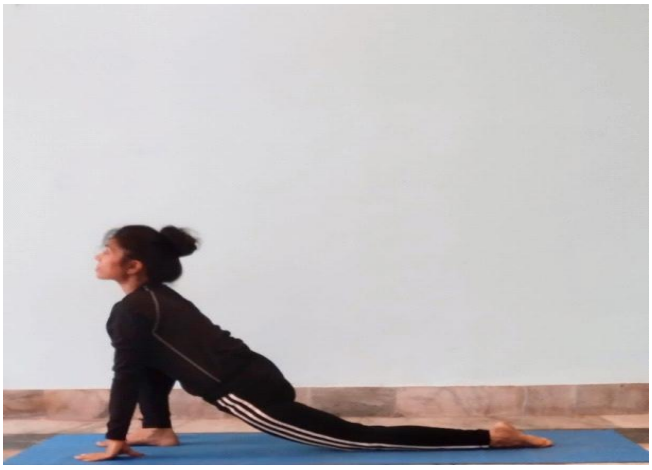

श्वास – इस आसन में पैर को लाते समय श्वास ले।

ध्यान – आज्ञाचक्र पर ।

सजगता – जांघ से पक्ष तक के खिंचाव अथवा भू मध्य पर।

मंत्र – ॐ आदित्याय नमः । बीज मंत्र– उ हूं ।

लाभ – क्रमांक 4 के सभी लाभ मिलते हैं ।

(10) पाद हस्तासन –

यह आसन स्थिति 3 की पुनरावृत्ति है। दाहिने पंजे को आगे बाए पंजे के बंगल में ले आयें । दोनो घुटनों को सीधा करे । बिना जोर लगाये ललाट को जितना सम्भव हो घुटनों के पास ले आये ।

श्वसन – इस आसन में आने के लिए शारीरिक गति करते समय श्वास लें।

ध्यान – स्वाधिष्ठान चक्रपर। सजगता– श्रोणी प्रदेश पर।

मंत्र – ॐ सवित्रे नमः । बीज मंत्र ॐ ह्रैम् ।

लाभ – क्रमांक 3 के सभी लाभ प्राप्त

अश्व संचालन में विशेष बिन्दु–

अन्तिम स्थिति में हथोलियां प्रारम्भ में जमीन पर सपाट रहनी चाहिए। बाद में उच्च अभ्यासी केवल उंगलियों के पौरों को जमीन पर रखकर अभ्यास कर सकते हैं।

(11) हस्त उत्तानासन – यह आसन न स्थिति 2 की पुनरावृत्ति है झुके हुए शरीर को उपर उठाए एवं दोनों हाथों को सिर के उपर ले जाएं। कन्धों की चौड़ाई के बराबर दोनों भुजाओं के बीच दूरी रखें। सिर, भुजाओं और धड़ के उपरी भाग को थोड़ा पीछे की ओर झुकाव। दृष्टि हाथों की अगुलियों के पोरों पर रखें। हाथो को उपर उठाते समय श्वास ले।

ध्यान – ध्यान विशुद्धि चक्र पर तथा सजगता उदर के खिंचाव और फेफड़ों के विस्तार पर रखें।

मंत्र – ॐ अर्काय नमः । बीज मंत्र – ॐ ह्रौं ।

लाभ – सभी लाभ स्थिति क्रमांक 2 की तरह ही होते हैं।

(12) प्रणामासन –

यह स्थिति क्रमांक 1 की पुनरावृत्ति है। ऊपर उठे हुए हाथों को प्रार्थना की मुद्रा में पंजों को मिलाकर सीधे खड़े हो जाएं। पूरे शरीर को शिथिल कर दें। सिर सन्तुलित, गर्दन सीधी व दृष्टि सामने रखें। श्वास छोड़कर सामान्य श्वास–प्रश्वास करें

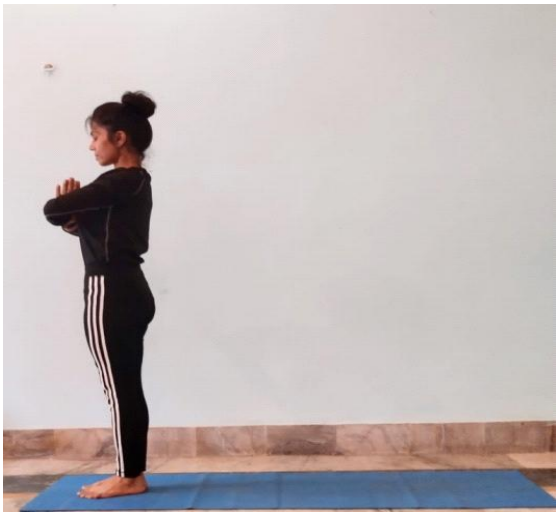

ध्यान – अनाहत चक्र पर।

मंत्र – ॐ भाष्कराय नमः बीज मंत्र ॐ ह्रुः ।

यह सूर्य नमस्कार की आधी आवृत्ति है। पूरी आवृत्ति के लिए हमने आसन क्रमांक 4 और 9 में जिस पैर को पीछे किया था, अब दूसरी आवृत्ति के लिए दूसरे पैर से करेंगे। पहले हम बाए पैर को पीछे किये थे, अब हम दायां पैर पीछे करेंगे। इस प्रकार कुल 24 आसनों के समूह को 1 आवृत्ति कहते हैं।

विशेष ध्यान रखने योग बिन्दु

स्थिति 4 के सम्बन्ध में –

जब सूर्य नमस्कार सामान्य रूप से या उपचार के उददेश्य से कर रहे हो, तो दायां पैर पीछे रखकर अभ्यास प्रारम्भ करें, जिससे कि पिंगला नाड़ी सक्रिय हो जाए। यदि मानसिक एकाग्रता अथवा ध्यान जनित प्रभाव के लिए कर रहे हो तो बाएं पैर से प्रारम्भ करें। ताकि इड़ा नाड़ी सक्रिय हो जाए ।

सूर्य नमस्कार पूरा करने के बाद कुछ मिनटों तक श्वसन करें। इससे हृदय की धड़कन और श्वास–प्रश्वास, सामान्य हो जाऐंगी तथा सभी मांस पेशियों विभ्रांत हो जायेंगी।

सावधानियां–

सूर्य नमस्कार अभ्यास के समय निम्नलिखित, बातों का ध्यान रखना उपयुक्त है और आवश्यक भी। सूर्य नमस्कार का अभ्यास अन्य आसनों से पूर्व करना चाहिए। वैसे तो यह आसन सभी के लिए उपयुक्त है, परन्तु अधिक उम्र के लोगों तथा 8 वर्ष से कम आयु के बच्चों के लिए यह आवश्यक नहीं है ।

मेरुदण्ड की समस्या, उच्च रक्त चाप, हृदय–दोष व हार्निया, रोगग्रस्त किसी गुरु के निर्देशन में यह आसन करें। मासिक धर्म आरम्भ होते समय इस अभ्यास को नहीं करना चाहिए। गर्भाधान के पश्चात बारह वें सप्ताह के प्रारम्भ तक थोड़ी सावधानी के साथ यह अभ्यास किया जा सकता है। प्रसव के 40 दिनों के बाद यह अभ्यास पुनः प्रारम्भ कर सकते हैं। क्षमतानुसार धीरे–धीरे अभ्यास को बढ़ाना चाहिए।

उच्च रक्त चाप, हृदय, धमनी, आंतों में टी० बी० अथवा हार्निया रोगी के लिए यह अभ्यास वर्जित है। एक दम झटके के साथ अभ्यास न करके धीरे–धीरे करना चाहिए।

महत्त्व एवं सामान्य लाभ–

सूर्य आध्यात्मिक चेतना का प्रतीक है। इनका महत्त्व हमारे धर्म ग्रन्थों में अनादिकाल से था । आज भी सूर्य एक रहस्य हैं, और क्रमशः खोज जारी हैं। योग के क्षेत्र में सूर्य नमस्कार एक जीवन शक्ति, प्राणदायक अभ्यास के रूप में विख्यात है। सूर्य नमस्कार हमारी आध्यात्मिक चेतना का एक शक्तिशाली प्रतीक है। सूर्योपासना प्रकृति की उन शक्तियों को अनुकूल बनाने हेतु की गयी, जो मनुष्य की नियंत्रण की सीमा से बाहर हैं। शारीरिक विकास तथा उसकी गति में वृद्धि लाने के लिए सूर्य नमस्कार का अभ्यास एक प्रभावी अभ्यास है। यह प्राण शक्ति प्रदाता है। इसमें शारीरिक और मानसिक दोनों स्तरों पर ऊर्जा सन्तुलित होती है। इसके अभ्यास से सारे शरीर का व्यायाम हो जाता है।

मेरुदण्ड के बारी–बारी से आगे पीछे मुड़ने के कारण, चूंकि सुषुम्ना का मार्ग मेरुदण्ड ही है, अतः ऊर्जा उर्ध्वमुखी होती है। इससे स्मरण शक्ति, बल, वीर्य व तेज की वृद्धि होती है। कब्ज तथा बुढ़ापा जल्दी प्रभावित नहीं करता। यह समस्त बीमारियों का नाश करता है। सूर्य के समान तेजवान बनाता है। विद्यार्थी इस अभ्यास का प्रयोग कर इससे होने वाले लाभों को अवश्य प्राप्त करें।

अतः हम कह सकते हैं कि सूर्य नमस्कार से सजकता में वृद्धि तथा अच्छे स्वास्थ्य के लिए सूर्य नमस्कार एक आदर्श अभ्यास हैं, लेकिन ये सारे लाभ हमें तभी मिलेंगे जब सूर्य नमस्कार की कई आवृत्तियां नित्य अभ्यास की जाएं।

सूर्य नमस्कार अभ्यास मात्र 05 से 15 मिनट का नियमित समय देकर इससे प्राप्त होने वाले लाभों को अनुभव कर सकते हैं।

सूर्य नमस्कार नियमित करने से मनुष्य को उसके सबसे बड़े शत्रु आलस्य से मुक्ति मिल जाती है।

संपूर्ण लाभ–

- यह प्राणशक्ति प्रदाता है।
- इसमें शारीरिक और मानसिक दोनों स्तरों पर ऊर्जा संतुलित होती है।
- सूर्य नमस्कार के अभ्यास से सारे शरीर का व्यायाम हो जाता है।
- सूर्य नमस्कार मानसिक शांति देता है। स्मरण शक्ति बढ़ाता है, बल, वीर्य व तेज की वृद्धि करता है।
- कब्ज का दुश्मन है, बुढ़ापे को पास नहीं आने देता।
- स्त्रियां अपने शरीर को आकर्षक, सुंदर व सुडौल बना सकती हैं।
- सूर्य नमस्कार समस्त बीमारियों का नाश करता है।
- सूर्य के समान तेजवान बनाता है।
- आदित्यस्य नमस्कारान्, ये कुर्वन्ति दिने दिने।

  आयुः प्रज्ञा बल वीर्य तेजस् तेषाञ् च जायते।।
  जो प्रतिदिन सूर्य नमस्कार करते हैं वह आयु प्रज्ञा अच्छी बुद्धि बल और तेज प्राप्त करते है।

- यह अन्तस्त्रावी, रक्त परिसंचरण, श्वसन और पाचन, प्रणाली सहित समस्त शारीरिक संस्थानों को उद्दीप्त और संतुलित करता है।

4.4 सूक्ष्म योग

यौगिक सूक्ष्म क्रियाएं क्या हैं?

यौगिक सूक्ष्म क्रियाएं वे सभी क्रियाएं हैं जो शरीर के विभिन्न अंगों और उनके संचालन के लिए, योगासान, प्राणायाम, ध्यान आदि से पूर्व की जाती है और योगासनों के लिए शरीर को तैयार करती हैं।

यौगिक सूक्ष्म क्रियाएं, शरीर के प्रत्येक अंग–प्रत्यंग पर सकारात्मक प्रभाव डालती हैं। सिर से लेकर पाँव तक शरीर का प्रत्येक भाग इनसे प्रभावित होता है। यौगिक सूक्ष्म क्रियाओं (व्यायाम) के अंतर्गत बहुत सी

क्रियाएं की जाती हैं, जिन्हें योगासनों को करने से पूर्व करना आवश्यक माना जाता हैं और शरीर भी योगासन करने के लिए अपने आपको तैयार कर लेता है।

प्रार्थना एवं यौगिक क्रियाओं के अभ्यास

किसी भी तरह का योगाभ्यास प्रारंभ करने से पहले प्रार्थना करना आवश्यक समझा जाता है।

स्थिति–

- दोनों पैर मिलाकर, शरीर को पांव से लेकर सिर तक बिल्कुल सीधा रखें,
- आखें बंद कर लें,
- दोनों हाथ मिलाकर वक्षस्थल पर, हृदय क्षेत्र से थोड़ा ऊपर रखें,
- हाथ के अंगूठे, कंठ की हड्डी के समकक्ष होने चाहिए।

विधि– ईश्वर का ध्यान करते हुए, उदाहरणार्थ प्रार्थना निम्न प्रकार से करनी चाहिए–

प्रार्थना–

योग का अभ्यास मनोभाव से प्रार्थना के साथ शुरू करना चाहिये। ऐसा करने से योग अभ्यासियों को अधिकाधिक लाभ होगा–

ऊँ संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।

देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते।।

हम सभी प्रेम से मिलकर चले, मिलकर बोलें और ज्ञानी बने। अपने पूर्वजों की भांति हम सभी कर्तव्यों का पालन करें।

नोट– इसके स्थान पर आप अपनी इच्छानुसार अपने ईष्ट देव की अन्य प्रार्थना भी कर सकते हैं।

लाभ–

- प्रार्थना करने से आस–पास का वायुमंडल शुद्ध और स्पन्दित होता हैः
- प्रार्थना से ध्यान लगने में मदद मिलती हैः
- मानसिक त्रुटियां दूर होती है,
- मन को शान्ति मिलती है,
- आत्म शुद्धि की प्राप्ति होती है।

यौगिक सूक्ष्म क्रियाएं हैं।

पवनामुक्तासन श्रेणी–1 (संधि संचालन के अभ्यास)

अ. पैरों के लिए संधि संचालन के अभ्यास

(1) पादांगुली नमन–

विधि–

- दोनों पैरों को सामने की ओर फैलाकर बैठें, हाथ को पीछे सहारा देने के लिए रखें।
- पैर की अंगुलियों को मोड़ना और खोलना शुरू करें। केवल अंगुलियां मोड़ें।
- श्वास–प्रश्वास के ताल–मेल के साथ, श्वास छोड़ते हुए सामने की तरफ, श्वास लेते हुए अपनी तरफ, पांच बार करेंगे।
- पंजा व टखना स्थिर रखें, केवल अंगुलियों में गति रखें, पांच बार अभ्यास करें फिर थोड़ी देर का विश्राम करें। अभ्यास के प्रभाव को जानने का प्रयास करें। हल्का खिचांव एवं प्रभाव का अनुभव करें।

(2) गुल्फ नमन

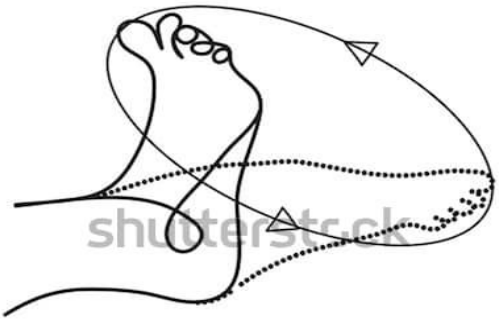

विधि–

- दोनों पंजों को आगे पीछे करें।
- अंगुलियां स्थिर रखें, केवल टखनों में गति बनाएं।
- श्वास लेते हुए पंजा आगे और श्वास छोड़ते हुए पीछे ले जाएं
- पूरी चेतना और सजगता टखने के आस–पास रखें। पांच बार इस अभ्यास को करें। फिर थोड़ी देर का विश्राम करें।

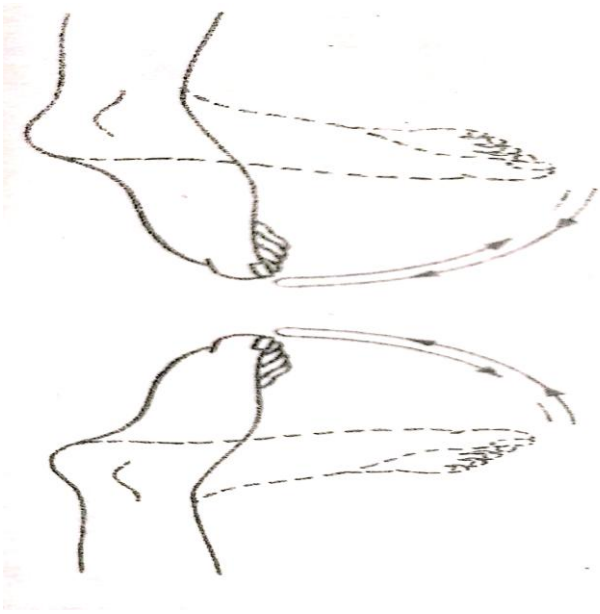

(3) गुल्फ घूर्णन

विधि–

- एक पैर को मोड़ कर जांघ के पास रखिए।

- एक हाथ पैर के ऊपर और एक हाथ टखने पर रखिए।
- हाथ की सहायता से टखने को गोल–गोल घुमाइयें।
- एक श्वास में एक बार घुमायें। पांच बार क्लॉक वाइज एवं पांच बार एन्टी क्लॉक वाइज कीजिए।
- दर्द(पेन) वाले स्थान पर हल्की मसाज कीजिए।
- बेहतर रक्त का प्रवाह, बेहतर प्राण का संचार अनुभव कीजिए। अब दूसरे पैर से इसी तरह इस अभ्यास को कीजिए।

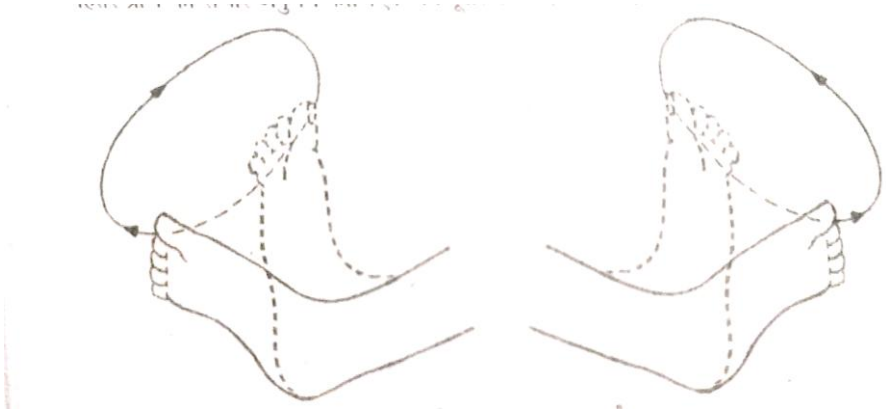

(4) जानुनमन

विधि–

- जांघ के नीचे अपनी हथेलियों को फंसाइए।
- घुटने को मोड़ना और खोलना शुरू कीजिए।
- श्वास लेते हुए खोलिए, श्वास छोड़ते हुए मोड़िए।
- एड़ी जमीन को छुएगी नहीं, ऊपर ही ऊपर लाना और ले जाना है।
- खोलते वक्त घुटना सीधा रखने का प्रयास करेंगे। पूरी सजगता, पूरी चेतना घुटने के आस–पास रहे। श्वास–प्रश्वास के तालमेल के साथ पांच बार बायें से और फिर पांच बार दायें से श्वास लेते हुए खोलिए और श्वास छोड़ते हुए मोड़िए।
- फिर थोड़ी देर विश्राम प्रारंभिक स्थिति में कीजिए।
- अभ्यास के प्रभाव को जानने का प्रयास कीजिए।

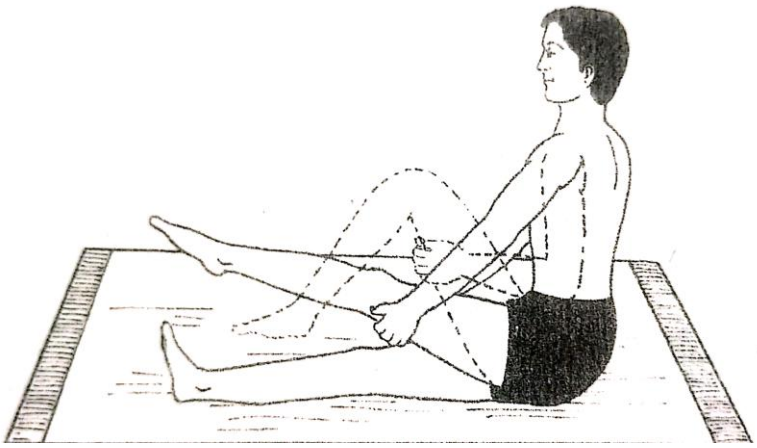

(5) जानु चक्र

विधि–

- जांघ के नीचे हाथों को कुहनियों तक फंसाइये,
- अब घुटने को गोल–गोल घुमाना है(जितना बड़ा चक्र बना सकते हैं, बनाने का प्रयास कीजिए, श्वास लेते हुए ऊपर और श्वास छोड़ते हुए नीचे)
- एक श्वास में एक बार 3 बार क्लॉक वाइज और 3 बार एन्टी क्लॉक वाइज कीजिए
- अभ्यास के प्रभाव को महसूस कीजिए
- जांघ की मांसपेशियों, पिंडली की मांसपेशियों में खिचाव अनुभव कीजिए, जोड़ों और टखने में हल्का दर्द अनुभव कीजिए, उदर क्षेत्र पर हल्का दबाव अनुभव सहित दिया जा सकता है। इस क्रिया को 5–5 बार दोनों दिशाओं में करें, फिर दूसरे पैर से दोहराएं।

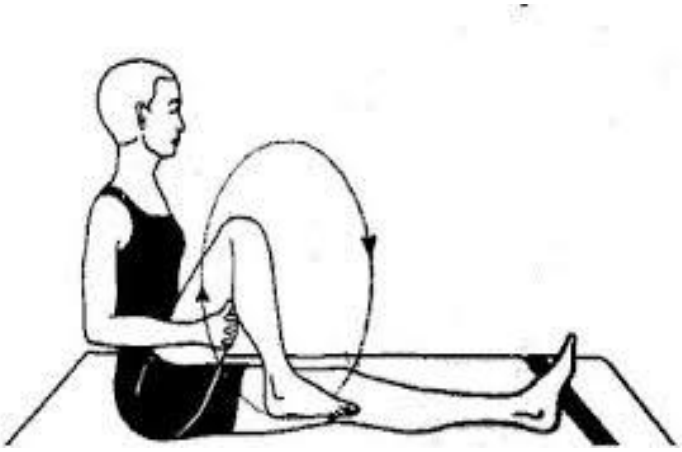

(6) जानुफलकाकर्षण–

विधि–

- घुटने की मांसपेशियों को सिकोड़िये और छोड़िए।
- श्वास लेते हुए मांसपेशियों को अपनी तरफ खींचिये, थोड़ी देर रोकिए, श्वास छोड़ते हुए मांसपेशियों को ढीला कीजिए।
- इस क्रिया को 5–5 बार अपनी श्वास व समय के अनुसार कीजिए, फिर थोड़ी देर का विश्राम कीजिए, जानुफलक आकर्षण विशेष रूप से घुटने के दर्द के लिए असरकारक है।
- गठिया रोग, घुटनों में अत्यधिक दर्दकारक है जिसके जानुफलकाकर्षण रामबाण है।

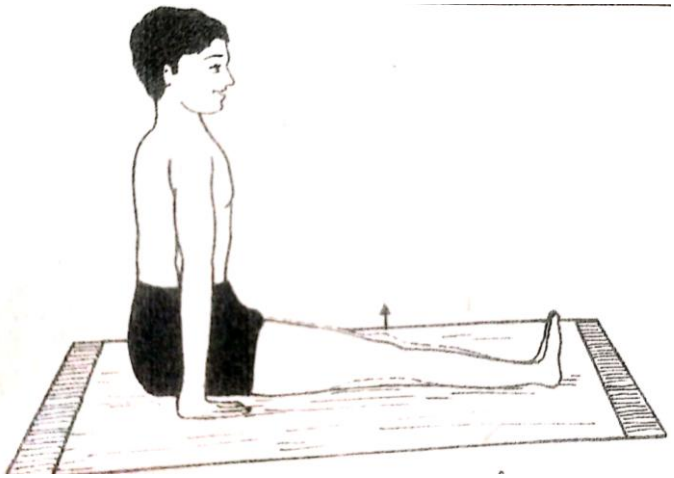

(7) अर्द्धतितली आसन–

विधि–

- एक पैर को मोड़कर दूसरे पैर की जांघ के ऊपर रखिए।
- एक हाथ टखने के ऊपर एक हाथ जांघ के ऊपर रखिए।
- हाथ की सहायता से घुटने को ऊपर और नीचे लाइए, श्वास लेते हुए जमीन की तरफ और श्वास छोड़ते हुए अपनी तरफ घुटने को लाइये और ले जाइए।
- इस क्रिया को बहुत ही धीरे–धीरे 5–5 बार दोनों पैरों से कीजिए।

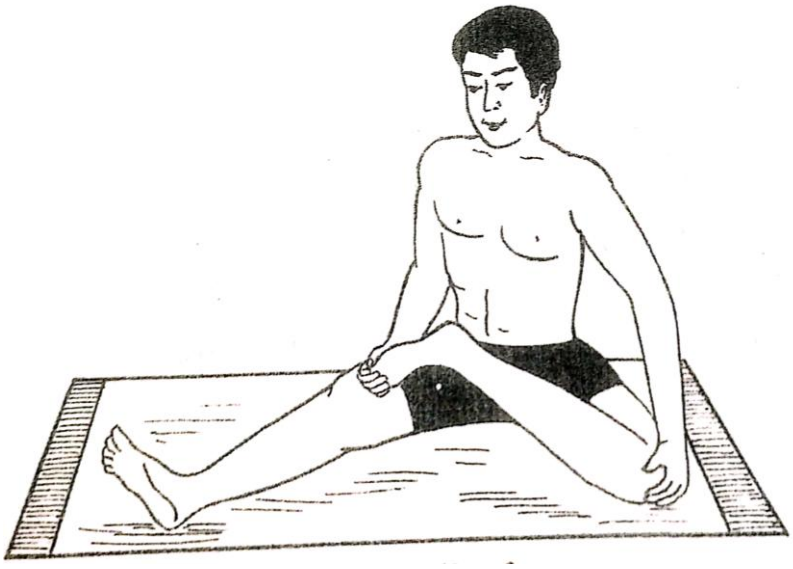

(8) पूर्ण तितली आसन

विधि–

- दोनों पैर के पंजों को आपस में मिलाइए, दोनों हाथों को पैर के पंजों में लॉक कीजिए।
- घुटने को ऊपर नीचे करें।
- सामान्य श्वास–प्रश्वास के साथ, रीढ़ की हड्डी को सीधी रखें, वक्ष स्थल खुला हुआ होना चाहिए।
- तत्पश्चात् घुटनों को यथाशक्ति जल्दी–जल्दी पृथ्वी से अलग व पृथ्वी पर, तितली के पंखों की भांति गति दें।

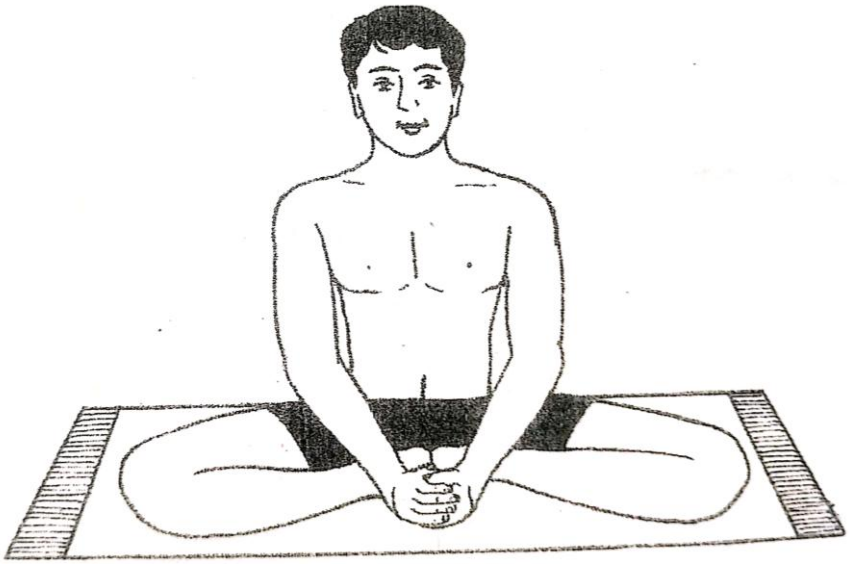

(9) श्रोणीचक्र

विधि–

- अर्द्धतितली की अवस्था में बैठिये
- एक हाथ घुटने के ऊपर रखकर, घुटने को गोल–गोल घुमाइयें
- श्वास लेते हुए घुटने जमीन की तरफ, श्वास छोड़ते हुए अपनी तरफ क्लॉक वाइज और एन्टी क्लॉक वाइज
- फिर दूसरे पैर से इसी तरह कीजिए।

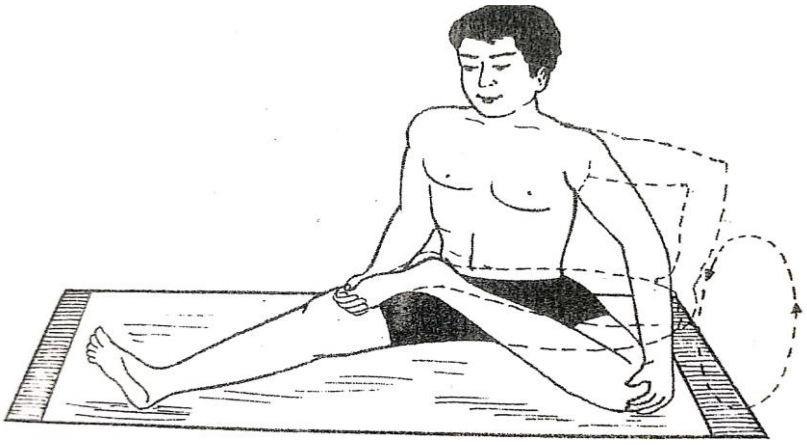

ग्रीवा संचालन–

विधि–

- श्वास लेते हुए गर्दन पीछे, श्वास छोड़ते हुए गर्दन सामने की तरफ धीरे–धीरे घुमाइयें।
- गर्दन में मूवमेंट दीजिए, ध्यान रहे गर्दन की नसें नाजुक होती हैं, कहीं पर ज्यादा दबाव न पड़े कही कोई ज्यादा न खिंच जाएं।
- सामान्य गति में गर्दन आगे–पीछे लायें, फिर साइडवेज जैसे बगल झांकने जैसा, श्वास लेते हुए पीछे और श्वास छोड़ते हुए आगे, 5–5 बार फिर थोड़ी देर विश्राम करें।

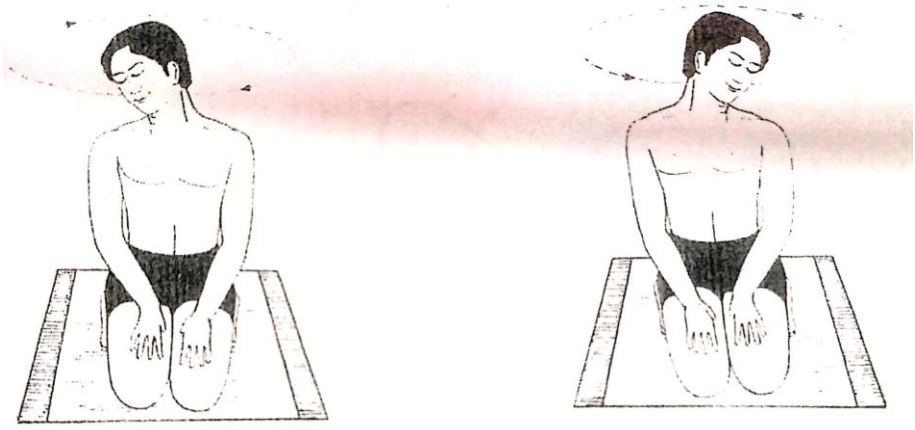

अब तक के अभ्यास को अनुभव कीजिए। पूरी शरीर ऊर्जान्वित, पूरा सक्रिय, बेहतर प्राण का संचार अनुभव कीजिए, सक्रियता, चैतन्यता अनुभव कीजिए। (संधि संचालन का अभ्यास समाप्त होता है।)

पवनमुक्तासन श्रेणी–2

(उदर संचालन के अभ्यास)

1. उत्तानपादासन–

विधि–

- इस अभ्यास के लिए पीठ के बल पेट जाइए, दोनों पैर एक साथ मिलाइयें
- हथेलियां कमर के बगल में रखिए(यह प्रारंभिक स्थिति हुई)
- श्वास लेते हुए बाएं पैर को धीरे–धीरे उठाइयें।
- जहां तक पैर उठा सकते हैं क्षमतानुसार उठाते जाइए।

- अब श्वास छोड़ते हुए धीरे–धीरे पैर को वापस नीचे लाइए।
- इसी प्रकार दायें पैर को श्वास भरते हुए उठाइये।
- श्वास छोड़ते हुए पैर को धीरे–धीरे नीचे लाइए।
- तीन–तीन बार कीजिए।
- दोनों पैरों को एक साथ धीरे–धीरे इसी प्रकार उठाइए, फिर नीचे ले आइये
- दोनों तरफ से, पूरी सक्रियता, पूरी सजगता के साथ, घुटने के आसपास, जांघ, पिंडली की मांसपेशियों में खिंचवा का अनुभव कीजिए, फिर थोड़ी देर विश्राम के लिए शवासन में लेटिये और दोनों हाथ बगल में हथेलियाँ आसमान की ओर खुली हुई, रीढ़ की हड्डी, सिर और गर्दन एक सीध में रखिए तथा अभ्यास के प्रभाव को महसूस कीजिए और जांघ, घुटना, कमर, टखना आदि सभी अंगों में बेहतर प्राण का संचार अनुभव कीजिए।

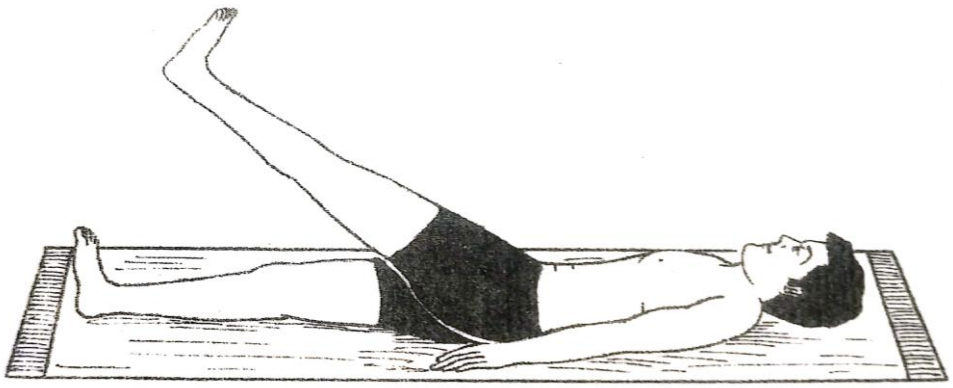

2. पादचक्रासन

विधि–

- शवासन से चेतनावस्था में आइये।
- पहले की तरह घुटने को सीधा रखते हुए दायें पैर को जमीन से ऊपर उठाकर गोल–गोल घुमाइये।
- श्वास लेते हुए ऊपर की तरफ और श्वास छोड़ते हुए नीचे की तरफ।
- लंबा बड़ा सा घेरा बनाइये।
- धीरे–धीरे 3–3 बार क्लॉक वाइज और एन्टीक्लॉक वाइज कीजिए।

- अब दूसरे पैर से भी इसी प्रकार अभ्यास कीजिए।
- जांघ और पिंडली की मांसपेशियों में बेहतर रक्त का प्रवाह और टखने व कमर में हल्की पीड़ा महसूस कीजिए।
- पूरी चेतना, पूरी सजगता घुटने के आसपास रखिए।
- फिर थोड़ी देर शवासन में विश्राम कीजिए।

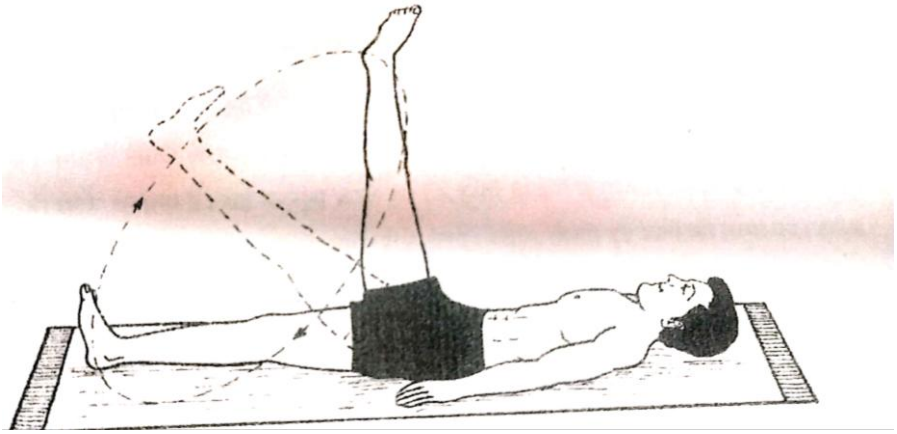

नोट–: दोनों पैर एक साथ उठाकर भी यह अभ्यास किया जाता है, जो कठिन अभ्यास है, हृदय व कमर के रोगियों को यह अभ्यास वर्जित है।

3. पादसंचालन (साइकिलिंग)

विधि–

- पहले की तरह दोनों पैरों को मिला लीजिए
- हाथ सीधे, हथेलियां जमीन की तरफ रखिए
- पादसंचालन जैसे साइकिल चलाते हैं
- पहले एक पैर के घुटने को मोड़िये, इन्हें छाती के करीब लाइए, फिर श्वास लेते हुए साइकिल चलाने की तरह पंजे को आगे–पीछे लाइए और ले जाइए।
- दूसरे पैर से भी इसी तरह कीजिए।

- फिर दोनों पैर से एक साथ साइकिल चलाइए।
- इस क्रिया को 5–5 बार लयबद्ध तरीके से कीजिए।
- बहुत धीरे–धीरे, कोई जल्दीबाजी नहीं, फिर थोड़ी देर शवासन की स्थिति में विश्राम कीजिए।
- उदर क्षेत्र, छाती के क्षेत्र में जो दबाव दिया गया है, जो दर्द पैदा किया गया है, सारी सजगता, सारी चेतना अभ्यास के प्रभाव पर ले जाइए। ये अभ्यास उदर विकारों को दूर करने में लाभदायक है।

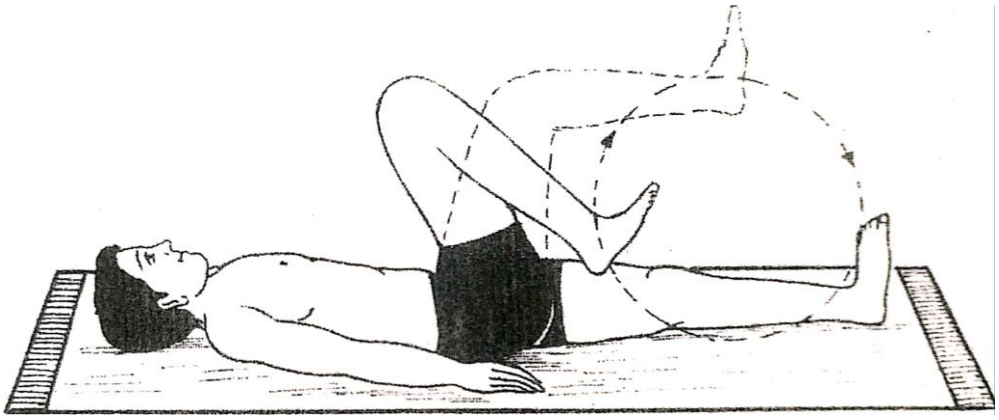

4. पवन मुक्तासन

विधि–

- दोनों घुटनों को मोड़िये।
- दोनों घुटनों के बाहर हथेलियों को फंसाकर श्वास भरिये और श्वास छोड़ते हुए नाक को घुटने से लगाने का प्रयास कीजिए।
- इस क्रिया को 3 से 4 बार, अपनी श्वास और समय के अनुसार कीजिए।
- फिर थोड़ी देर शवासन में विश्राम कीजिए।

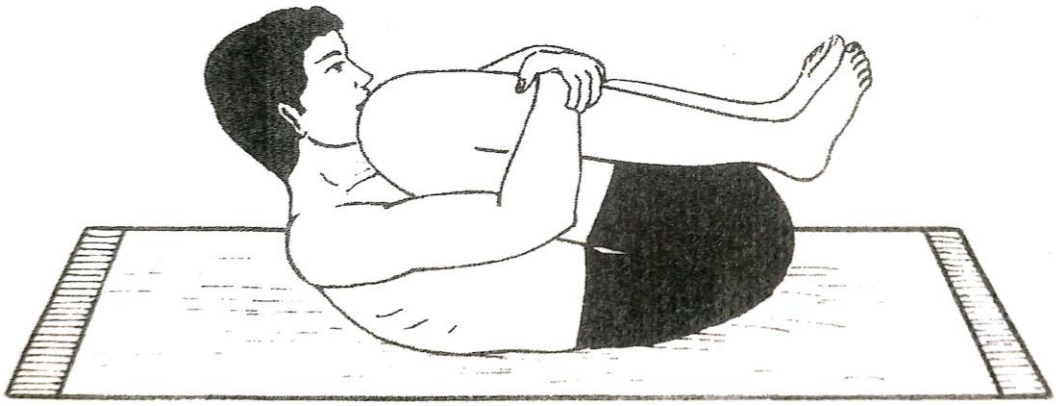

5. उदराकर्षण

विधि–

- दोनों हथेलियों की अंगुलियों को आपस में फंसाइये।
- इन्हें सिर के नीचे रखिए।
- दोनों घुटनों को मोड़कर सीने के पास रखिये।
- अब सिर को बांई ओर व घुटने दांई ओर मोड़िये।
- रीढ़ की हड्डियों में ऐंठन (मसाज) दीजिए।
- फिर विपरीत दिशा में सिर दांई ओर व घुटने बांई ओर मोड़िए।
- रीढ़ की हड्डी में मसाज दीजिए।

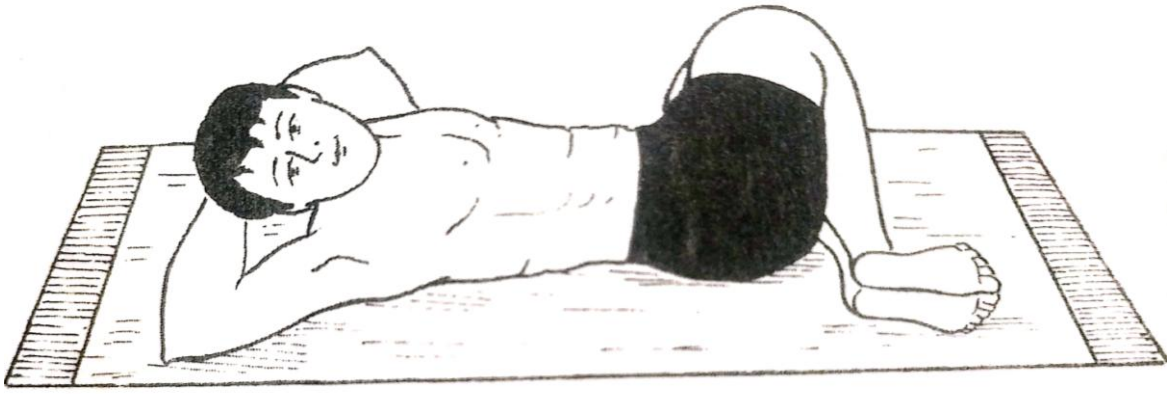

इससे पेंक्रियाज आदि ग्रंथियां सक्रिय होती है। इंसुलिन का सिक्रेशन बेहतर होता है। कब्ज और गैंस दूर होती है।

पवन मुक्तासन श्रेणी–2 शक्ति बंध के अभ्यास

क. चक्की चलासन

दोनों पैरों को फैलाकर बैठिए।

हथेलियों को आपस में गूंथकर आगे की तरफ रखिए।

हाथ सीधे रखिए।

- अब चक्की की तरह हाथों को चलाइए। यह महसूस करते हुए कि हमारे हाथ में बहुत भारी वजन है और उसे हम धकेल रहे हैं। इसी भावना के साथ कमर से आगे पीछे होइये, श्वास छोड़ते हुए आगे की तरफ और श्वास लेते हुए अपनी (पीछे की) तरफ, गोल–गोल घुमाइये। जांघ और पिंडली की मांसपेशियों में खिचांव महसूस कीजिए।

- हल्की पीड़ा बाहों में उत्पन्न हो रही है, उनके प्रति सजग होइये और अभ्यास के प्रभाव को महसूस कीजिए।

(2) नौका चलासन

विधि–

- दोनों पैरों को मिला लीजिए।

- हाथों को कमर की बगल में रखिये और अभ्यास कुछ ऐसे कीजिए जैसे नौका चलाते हैं।

- कमर से ऊपर का भाग श्वास छोड़ते हुए आगे की तरफ भुजाओं सहित ले जाइए और श्वास लेते हुए अपनी तरफ वापस आइए।

- श्वास छोड़ते हुए आगे और श्वास लेते हुए पीछे की तरफ वापस आइए, जैसे नाव का चप्पू आपके हाथ में है, और आप स्वयं नाव चला रहे हैं। थोड़ी देर का विश्राम करें।

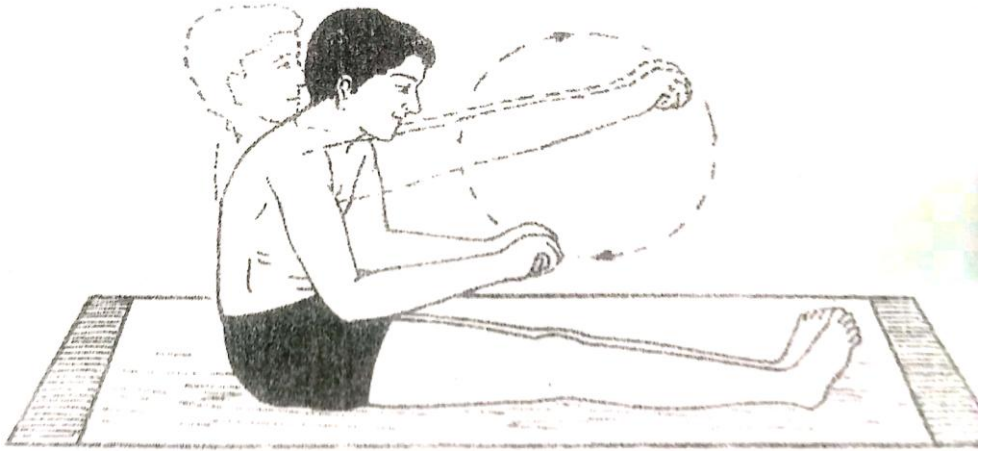

(3) रज्जुकर्षण आसन(कुएं से पानी खींचने वाली स्थिति में आसन)

रज्जुकर्षण अर्थात् (रस्सी से पानी खींचना) जैसे–

- कुएं से पानी निकालते समय जैसे रस्सी को खींचते हैं, उसी प्रकार से ध्यान रखते हुए श्वास लेते हुए एक हाथ, ऊपर ले जाइए और श्वास छोड़ते समय बलपूर्वक मुट्ठी बांधकर नीचे की तरफ खींचिए
- दोनों हाथों से बारी–बारी से कीजिए।
- भुजाओं कंधों तथा रीढ़ की हड्डी में संतुलित प्राण का संचार व रक्त के प्रवाह का अनुभव कीजिए।

(4) काष्ठतक्षण आसन (कुल्हाड़ी चलाने की स्थिति वाला आसन)

- पैर के पंजों के बल उकडू बैठिए
- दोनों पंजों के बीच थोड़ी दूरी रखते हुए, दोनों हाथ की अंगुलियों को आपस में फंसाकर हथेलियों को ऊपर ले जाइये, यह अनुभव करते हुए हम कुल्हाड़ी चला रहे हैं।
- हाथ ऊपर ले जाकर 'हा' ध्वनि के साथ नीचे लाइए
- श्वास छोड़ते हुए, अंदर के सारे आक्रोश बाहर निकल रहे हैं

- ऐसी भावना के साथ 5 से 10 बार इस अभ्यास को कीजिए, फिर थोड़ी देर के लिए विश्राम कीजिए।

यह अभ्यास तनाव और तनाव जनित रोगों के लिए प्रभावकारक है। साथ ही, अवसाद के रोगियों के लिए प्रभावकारक है। जो घबराते हैं या दबाव में रहते हैं, उन्हें यह अभ्यास सक्रियता के साथ करना चाहिए।

4.5 ताड़ासन

यह आसन परंपरा से आया हुआ है। इस आसन की अंतिम स्थिति में ताल वृक्ष की आकृति बनती है। ताड़ का पेड़ सीधा होता है। अतः इसमें एकदम सीधे खड़े होते हैं ।

विधि–

- दोनों पैर मिलाकर खड़े हो जाइये, हाथ बगल में जांघों से सटे रहेंगे, दृष्टि सामने की ओर ।
- धीरे से दोनों हाथ ऊपर उठाते हुए कंधों तक सामने ले आये, हाथ सीधे रहे हथेलियां एक दूसरे के सामने।
- अब हाथ ऊपर सीधे आसमान की ओर ले जाइये, अंगुलिया आसमान की ओर रहेगी।
- अब धीरे से एडियाँ उठाइये व पैरों के पंजों पर खड़े हो जाइये, जहां तक एड़ियाँ उठा सकते हैं उठाइये, शरीर जितना ऊपर तन सकता हो तानिये।
- वापस आते समय पहले एड़ियाँ नीचे लाइए व पूरे पैरों पर खड़े हो जाइए।
- धीरे से हाथ सामने से वापस लाइये व पूर्व स्थिति में आ जाइये।
- उठते समय श्वास ले और वापस आते समय स्वास छोड़ें।

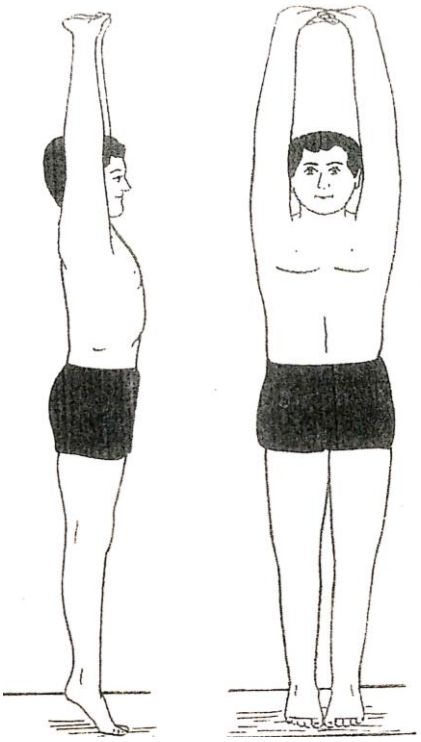

लाभ–

- एक निश्चित उम्र तक लाभ लंबाई बढ़ाने का सबसे अच्छा अभ्यास है।
- शरीर को स्थिरता देता है, मांसपेशियां मजबूत करता है।
- स्लिप डिस्क वाले यह आसन अवश्य करें।
- स्त्रियों के लिए लाभदायक हैं। खासतौर से गर्भावस्था के शुरुआती महीनों से स्त्रियों के लिए विशेष लाभकारी ।
- शंख प्रचालन की क्रिया के लिए आवश्यक।
- यह आसन मानसिक संतुलन विकसित करता हैं।
- संपूर्ण मेरुदंड में खिचांव वा ढीलापन आता है।
- ताड़ासन मलाशय एवं अमाशय की पेशियों और आंतों में खिंचाव उत्पन्न करता है।

सावधानियां–

दोनों पैरों के पंजों पर एक साथ वजन देते हुए क्रिया करें यह एवं संतुलन पर ध्यान दें। इसके पश्चात शीर्षासन से संबंधित कोई आसन करें।

- उन व्यक्तियों को या आसन नहीं करना चाहिए, जिन्हें वैरिकोज बेन्स (vlins) को जीवन संबंधी समस्याएं हैं। चक्कर आने की स्थिति में अंगुलियों पर ऊपर उठाने का प्रयास नहीं करना चाहिये।

4.6 तिर्यक ताड़ासन

तिर्यक का मतलब ढालुआ तिरछापन या आड़ासन। ताड़ा एक वृक्ष है, जो काफी लंबाई लिए हुए होता है ।

विधि–

ताड़ासन में खड़े हो जाएं अब आपको एड़ी को उठाते हुए पंजे के बल खड़े होना है एवं कमर से ऊपर के भाग को दाएं बाएं क्रमश 10:12 बार झुकाना है यदि यदि पंजों के बल खड़े होने में परेशानी का अनुभव हो तो बगैर एड़ी उठाए अभ्यास करें।

उठते समय श्वास लें। दाएँ मुड़ते समय श्वास छोड़े। मूल स्थिति में आते समय श्वास लें। बाएँ मुड़ते समय श्वास छोड़े। मूल स्थिति में आते समय श्वास लें।

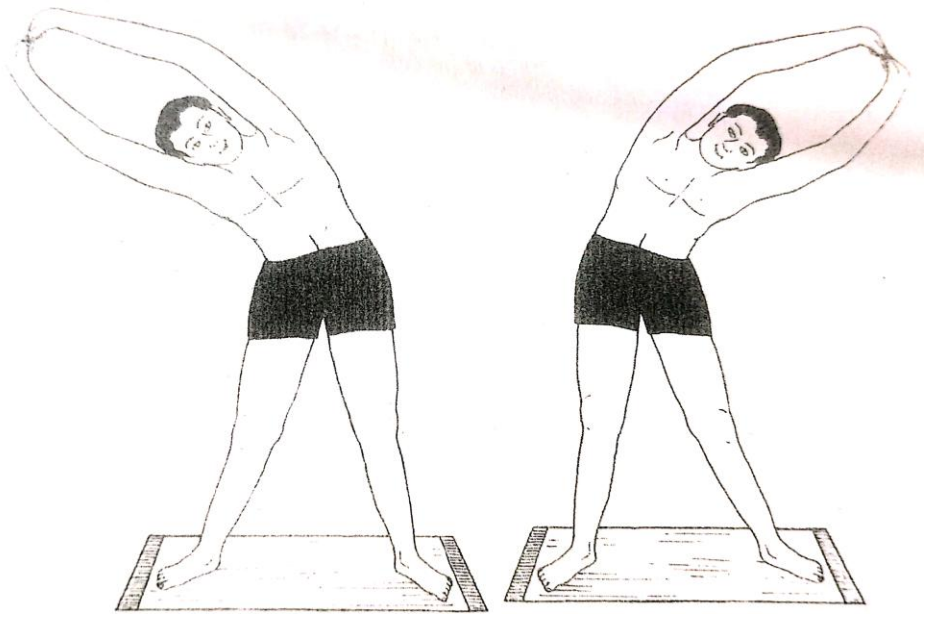

लाभ–

- पेट की स्थूलता कम होती हैं। कमर पतली व लचीली बनती है।
- उदर विकार नाश होता है। शौच की कठिनता समाप्त होती है।
- शंख प्रक्षालन क्रिया के लिए या अभ्यास अति उत्तम है।
- इस आसन के अभ्यास से शरीर सुदृढ़ होता है। यह मेरुदंड से संबंधित नारियों के रक्त संचार को ठीक करने में भी सहायक है।
- ताड़ासन की स्थिति में श्वास छोड़ते हुए बाई तरफ झुकिये।
- खिंचाव अनुभव कीजिए
- अब श्वास छोड़ते हुये दाहिनी तरफ झुकिये, ध्यान रहे हाथ भुजाएँ तने हुये सीधे रहने चाहिये।
- कटि प्रदेश में, कंधास्थि में, हल्दी पीड़ा महसूस कीजिये, दोनों ओर समान रूप से झुकिये।
- बांहों, जांघों, उदर और छाती की मांसपेशियों में सक्रियता अनुभव कीजिये।

4.7 कटिचक्रासन

कटि माने कमर को घुमाते हैं इसलिए इसका नाम कटिचक्रासन है।

विधि–

- सावधान की स्थिति में खड़े हो जाइये और दोनों पैरों को इतना फैला ले कि उनके बीच एक से डेढ़ फुट का अंतर हो जाये।
- अब दायाँ हाथ दाहिने कंधे पर और दाहिना हाथ पीठ पर रखकर दाहिनी ओर घूमकर जितना पीछे की तरफ देख सकते हैं देखने का प्रयास करें वापस मूल अवस्था में आ जाएगी जाएं और दाहिने हाथ को बाएं कंधे में रखकर और बाएं हाथ को पीठ के पीछे लग कर जितना देख सकते हैं देखें इस प्रकार 4 से 8 बार यह क्रिया दोहराएं।

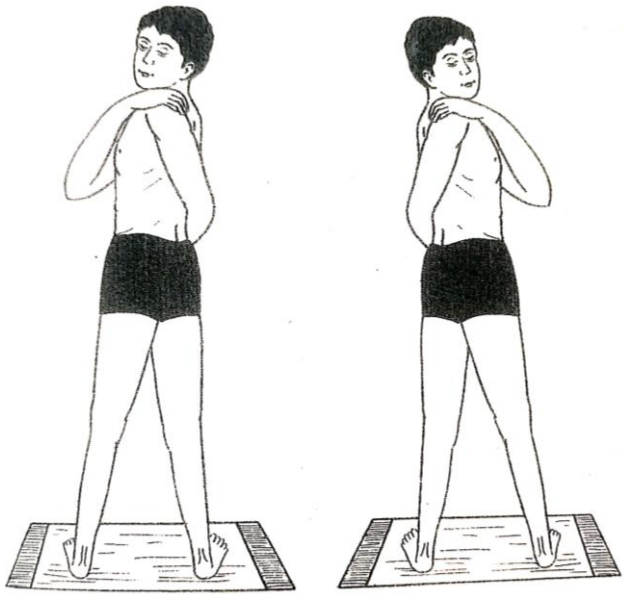

लाभ–

- कमर, मेरुदंड, पीठ, फुफ्फुस, गर्दन आदि के विकारों को दूर कर उन्हें स्वस्थता प्रदान करता है।
- पाचन शक्ति तीव्र करता है कब्ज ठीक होता है।
- मोटी कमर को घर हरी एवं पतली करता है।
- गैस बन रही हो या डकार नहीं निकल रही हो तो या कहिया पानी पीकर भी कर सकते हैं।
- मेरुदंड में लचीलापन लाता है।
- शारीरिक मानसिक तनाव दूर करता हैं।

4.8 वृक्षासन

वामोरुमूलदेशे च याम्यं पादं निधाय वै।

तिष्ठेत्तु वृक्षवद्भूमौ वृक्षासनमिदं विदुः।। घे. सं.2/36

अर्थ – दाहिने पैर को बाईं जंघा के मूल में स्थापित कर पृथ्वी पर पेड़ के समान खड़े होने को वृक्षासन कहा आ जाता है।

- दोनों पैर मिलाकर सीधे खड़े हो जाइए हाथ जांघों से सटे रहेंगे। दृष्टि सामने की ओर।
- अपना एक पैर (दाहिना) घुटने से मोड़िये तथा तलवे को जंघामूल से लगायें।
- दोनों हाथों को नमस्कार मुद्रा में ले आइये।
- थोड़ी देर रुकने के पश्चात हाथ सीधा कीजिए वह दोनों पैरों पर खड़े हो जाइये।
- अब इसी प्रकार दूसरे पाठ के अभ्यास कीजिए। यह वृक्षासन का एक क्रम हुआ।

लाभ– यह शारीरिक एवं मानसिक सहकर्म को बढ़ाता है।

- जंघा एवं पिण्डली की मांसपेशियों मजबूत होती है।
- हाथ–पैरों का कॉपना बंद होता है। शरीर को संतुलन प्रदान करता है।

- ब्रह्मचर्य पालन के लिये वीर्य रक्षा की क्षमता विकसित करता है।

सावधानियाँ–

यह एक संतुलानात्मक आसन है। यदि सन्तुलन खोने की सम्भावना लगे तो वापस आ जाये और पुनः अभ्यास कीजिये।

4.9 गरुड़ासन

गरुड़ासन का नाम 'गरुण' शब्द पर रखा गया है हिन्द गरुण एक पक्षी है और उन्हें पक्षियों का राजा कहा जाता है।

जङ्घोरूभ्यां धरां पीड्य स्थिरकायो द्विजानुना।

जानूपरि करद्वन्द्वं गरूड़ासनमुच्यते।। घे. सं.2/37

अर्थ–दोनों जांघों और घुटने से धरती को दबाएं और देह को स्थिर रखें तथा दोनों घुटनों पर दोनों हाथ रखकर बैठ जायें। यह गरूड़ासन कहलाता है।

विधि–

- सीधे खड़े होकर बाएं पैर की जंघा को दाएं पैर की जंघा में रखते हुये घुटनों और पिड़लियों से एक पैर को दूसरे पैर पर लपेट लें।
- तत्पश्चात सीने के सामने दोनों बाजुओं को लाते हुए बायीं भुजाओं को दाई भुजा पर रखते हुए आपस में लपेट लें।
- इस अवस्था में दोनों हाथ गरुड़ की चौथ के समान बन जाएंगे।
- फिर धीरे–धीरे नीचे झुकते हुए पैर के पंजों को जमीन पर रखने का प्रयास करें।

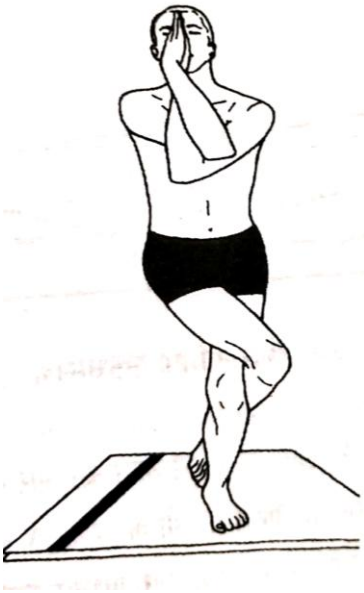

लाभ–

- इस आसन के अभ्यास से जोड़ों का दर्द ठीक हो जाता है।
- गठिया के रोगियों को इसका अभ्यास नियमित करना चाहिये।
- जिनके शरीर में कंपन होती है, उन्हें और पतले व्यक्तियों को इसके अभ्यास से लाभ मिलता है।
- इसके अभ्यास से बड़ा हुआ अंडकोष ठीक हो जाता है।
- हाथों में पैरों की मांसपेशियों को शक्ति प्रदान करता है।
- यह अभ्यास कुंडलिनी शक्ति को जागृत करने में सहायक होता है।
- एकाग्रता बढ़ाती है। शरीर के सन्तुलन अभ्यास बढ़ता है ।

सावधानियां–गठिया जैसी बीमारियों वाले सावधानी पूर्वक अभ्यास करें।

4.10 सारांश

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि ध्यान करते हुए विधिपूर्वक सूर्य नमस्कार श्वास–प्रश्वास के साथ किया जाए तो आन्तरिक शक्तियों का विकास होता है । जिन मुख्य अवयवों पर मनुष्य का

आरोग्य अवलम्बित हैं, वे तीन है । जो सुदृढ़ रहें तो किसी प्रकार का रोग उत्पन्न न हो । पद्धति युक्त प्राणायाम सहित, मंत्रों के साथ सूर्य नमस्कार करना इसे व्यवस्थित रखने हेतु सर्वोत्कृष्ट है।

अतः हम कह सकते हैं कि सूर्य नमस्कार तीन तत्वों से गठित है– आकृति, ऊर्जा और लय । बारह आसनों की आधारशिला के चतुर्दिक इस अभ्यास का रचना की गयी है । आसनों की यह श्रृंखला सूक्ष्म शक्ति प्राण का उत्पादन करती है जिससे अतीन्द्रिय शरीर सक्रिय होता है।

योग का अभ्यास पूरे मन और शरीर को विकसित करने में मदद करता है। हालांकि यह किसी भी दवा का विकल्प नहीं है। योगासन मजबूती और खिंचाव में सन्तुलन बनाये रखने में मदद करता है। सूक्ष्म व्यायाम श्वास लेने के व्यायाम से संबद्ध है, जो शरीर के सभी जोड़ों को क्रमिक रूप से सक्रिय बनाने और उन्हें ऊष्मा देने में मदद करता है।

इस इकाई में आसन के सम्पूर्ण अध्ययन के पश्चात हमें ज्ञात हुआ है कि योगासन विद्या हमारे प्राचीन काल के ऋषि–मुनियों, क्रान्तिदर्शियों द्वारा अन्वेषित एक अमूल्य सम्पत्ति, तथा एक महान् वरदान और सुखी जीवन जीने की श्रेष्ठ कला है।

हमारे मनीषी योगियों के द्वारा विकास के तत्त्व को स्पष्ट करते हुए– वृक्ष, पद्म (कमल) जैसे वनस्पति । शलभ, बिच्छू जैसे कीड़ों, मत्स्य कुर्म, नक (मगर) जैसे जलचर तथा उभयचर । कुछ नाम कुक्कुट (मुर्गी) बक, मयूर जैसे पक्षियों के नाम पर तथा कुछ के नाम – श्वान (कुत्ता), उष्ट्र, सिंह जैसे चौपायों पर भी हैं। भुजंग जैसे रेंगने वाले प्राणी भी नहीं भुलाये गये और न मानव के गर्भपिण्ड जैसी स्थिति छूटी है। वीरभद्र और हनुमान जैसे पौराणिक महापुरुषों के नाम पर भी आसन सम्बोधित हैं। भारद्वाज, कपिल, वशिष्ट और विश्वामित्र के नाम पर आसन होने से इनका भी स्मरण हो जाता है।

कुछ आसनों के नाम हिन्दू देवी–देवताओं, अवतारों तथा दिव्य शक्ति के शरीर धारण के नाम पर भी आधारित हैं। आसन करते समय योगी का शरीर भिन्न–भिन्न प्राणियों के समान अनेक आकृति ग्रहण करता है। उनका मन किसी प्राणी से घृणा करने में प्रशिक्षित नहीं है। उन्हें ज्ञान है कि– सृष्टि के सम्पूर्ण विस्तार में छोटे से छोटे कृमि से लेकर बड़े से बड़े पूर्ण साधु (महर्षि) तक वही विश्वात्मा है, जो असंख्य रूपों को ग्रहण करता है, श्वास लेता है। वह विश्व व्यापकता में एकता पाता है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि योगासन हमारे ऋषि–मुनियों द्वारा अन्वेशित सुखी जीवन जीने की एक श्रेष्ठ कला है, जिसके द्वारा मनुष्य शरीर में अखण्ड स्वास्थ्य, इन्द्रियों पर अखण्ड नियंत्रण, अन्तःकरण में अखण्ड शक्तियां, हृदय में अखण्ड प्रेम और मन में अखण्ड शान्ति प्राप्त कर आनन्द पूर्वक जीवन व्यतीत कर अन्तोगत्वा परमात्मा में लीन हो सकता है। निष्कर्षतः आसन उसे कहेंगे जिसमें साधक के मन में ब्रह्म का विचार सहज एवं निरन्तर प्रवाहित होता रहता है।

4.11 अभ्यास प्रश्न

1. प्रश्न – आसन का अर्थ बताते हुए इसके महत्व को स्पष्ट कीजिए।
2. प्रश्न – आसन को परिभाषित कीजिए।
3. प्रश्न – सूर्य नमस्कार के बारह आसनों का मंत्र सहित वर्णन कीजिये।
4. प्रश्न – ताड़ासन, तिर्यक ताड़ासन, कटि चक्रासन का विधि, लाभ सावधानियों सहित वर्णन कीजिए।
5. प्रश्न – किसी भी पाँच योग आसन के बारे में और उनके महत्वपूर्ण लाभों के बारे में लिखें।
6. प्रश्न – आधुनिक जीवन शैली की समस्याओं के समाधान में आसन के महत्व पर चर्चा करें।
7. प्रश्न – गर्दन एवं कंधों के जोड़ के लिये सूक्ष्म व्यायाम बताएँ।
8. प्रश्न – सूक्ष्म व्यायाम के महत्व और लाभों पर चर्चा करें।

4.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. घेरण्ड संहिता – स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती , योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर बिहार, भारत
2. आसन , प्राणायाम, मुद्रा बंध – स्वामी सत्यानन्द सरस्वती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर बिहार, भारत
3. योगासन विज्ञान – धीरेन्द्र ब्रम्हचारी, धीरेन्द्र योग प्रकाशन, नई दिल्ली
4. हठयोग प्रदीपिका– स्वात्मारामकृत संस्करणकर्ता – स्वामी दिगम्बर जी , कैवल्य धाम लोनावाला
5. योग विज्ञान – स्वामी विज्ञानान्द सरस्वती, योग निकेतन ट्रस्ट मुनि की रेती, ऋषिकेश, उत्तराखण्ड

इकाई 05 – सिद्धासन, पद्मासन, भद्रासन, वज्रासन, स्वास्तिकासन गोमुखासन, वीरासन, गुप्तासन, मयूरासन, मत्स्येन्द्रासन, उष्ट्रासन गोरक्षासन, पश्चिमोत्तानासन, उत्कट आसन, संकट आसन

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 सिद्धासन

5.3 पद्मासन

5.4 भद्रासन

5.5 वज्रासन

5.6 स्वास्तिकासन

5.7 गोमुखासन

5.8 वीरासन

5.9 गुप्तासन

5.10 मयूरासन

5.11 मत्स्येन्द्रासन

5.12 उष्ट्रासन

5.13 गोरक्षासन

5.14 पश्चिमोत्तानासन

5.15 उत्कट आसन

5.16 संकट आसन

5.17 सिंहासन

5.18 सारांश

5.19 अभ्यास प्रश्न

5.20 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

5.0 उद्देश्य

- आसन रोग विकारों को नष्ट करते हैं, रोगों से रक्षा करते है, शरीर को निरोगी, स्वस्थ्य एवं बलिष्ठ बनाएं रखते है।
- आसन का अभ्यास मानसिक, भावनात्मक, शारीरिक संतुलन बनाता है
- इस इकाई में हम आसनों की विधि, लाभ व सावधानियों के बारे में जान सकेगें।
- वर्णित आसनों को चित्र सहित देख पायेगें।
- समग्र स्वास्थ्य के लिये आसन के विभिन्न आयामों को समझ सकेंगे।
- आसनों का अभ्यास जीवन के हर पक्ष को प्रभावित करता है आसनो का प्रभाव शारीरिक, मानसिक तथा उससे भी सूक्ष्य चेतना के स्तर पर भी पड़ता है।

5.1 प्रस्तावना

- आसन प्राचीन ऋषियों द्वारा मानव जाति को दिए गए वरदान है। जिनकी उत्पत्ति उनके द्वारा शरीर और मन को नियंत्रित करते हुये शारीरिक और आध्यात्मिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये व्यावहारिक उपायों के रूप में की गई है। ऋषियों के अनुसार मन और शरीर परस्पर संबद्ध है। एक अस्वस्थ शरीर, अनियंत्रित मन का घर होता है। इसलिए जीवन के सभी अच्छे उद्देश्यों में सफल होने के लिए मन को स्वस्थ रखना बहुत आवश्यक है। आसन मूलतः ऋषि मुनियों के ध्यान को आकृष्ट करने का प्रमुख कारण इसलिए बने क्योंकि उन्होंने अपनी साधना के दौरान यह महसूस किया कि कोई भी पशु–पक्षी या वृक्ष किसी भी प्रकार से अस्वस्थ होने पर किसी भी प्रकार के अप्राकृतिक साधनों का प्रयोग नहीं करते और ना ही स्वस्थ रहने के लिये किसी भी प्रकार की औषधि का उपयोग करते है। इसलिए आसनों का सीखना बहुत ही आवश्यक है लेकिन साथ ही आसनों के अभ्यास की सही विधि और इसकी सावधानियों को जानना भी आवश्यक है इस इकाई में आसनों के लाभों का वर्णन किया गया है।

5.2 सिद्धासन

योनिस्थानकमङ्घ्रिमूलघटितं संपीड्य गुल्फेतरम्।

मेढ्रोपर्यथ सन्निधाय चिबुकं कृत्वा हृदि स्थापितम्।। घेरण्ड संहिता 2/7।।

स्थाणुः संयमितेन्द्रियोऽचलददृशा पश्यन्भ्रुवोरन्तरम्।

ह्येतन्मोक्षकवाटभेदनकरमं सिद्धासनं प्रोच्यते।। घेरण्ड संहिता 2/8।।

अर्थ–

जितेंन्द्रिय योगी एक पांव की एड़ी को अंडकोष और गुदा मध्य लगाकर दूसरे पांव की एड़ी को मेढ़ू में लगा लें। चिबुक को हृदय में लगाकर स्थिर रूप से सीधा रहें। दृष्टि को निश्चय रखकर भौहों के मध्य में देखें। इसका अभ्यास सिद्ध होने से मोक्ष की प्राप्ति होती है। ऐसी सिद्धासन कहते हैं।

संस्कृत शब्द सिद्धि का शाब्दिक अर्थ शक्ति है सिद्धि शब्द सिद्ध से बना है और इसका अभिप्राय योगाभ्यासों से प्राप्त अतिंद्रीय शक्तियां क्षमता है। सिद्धि के अंतर्गत अतीन्द्रिय दृष्टि और दूर संवेदन के साथ–साथ करें अन्य कम ज्ञात शक्तियां, जैसे इच्छानुसार सूक्ष्म शरीर धारण कर लेने की योग्यता भी आती है।

विधि–

सिद्धासन करने के लिए सबसे पहले अपने पैरों को सामने फैला लेते है सुखासन में बैठ जाए बाएं पैर के तलवे को दाहिने जांघ से सटाकर ऐसे लगाएं ताकि एड़ी अपने गुदा और अंडकोष के भाग को छूने लगे।

अब दाहिने पैर की एड़ी को जननेंद्रिय और वस्ति की हड्डी के बीच दबाव डालते हुए रखें। दाहिने पैर की अंगुलियों को बाई पिण्डली जांध के बीच फसाएं। ध्यान रखें घुटने जमीन को छूते रहे। शरीर एकदम सीधे रखें। हाथों को घुटनों पर ज्ञान मुद्रा में रखे । ठोड़ी को हृदय प्रदेश के ऊपर कंठकूप में स्थिर करें। दृष्टि भौहों के मध्य रखें एवं तनाव रहित होकर बैठें। पैरों की स्थिति बदलकर यही अभ्यास करें।

लाभ इस आसन से दृढ इच्छा शक्ति का विकास होता है मेरुदंड स्थिर होता है, गुर्दा संबंधी रोग तथा काम विकार का नाश होता हैं, इस आसन को 48 मिनट तक प्रतिदिन करने से सिद्धियां प्राप्त

होती हैं। बुढ़ापे में भी कमर नहीं झुकती है इस आसन में बैठकर त्राटक करने से सम्मोहन शक्ति बढ़ती है, उदर प्रदेश को भरपूर लाभ मिलता है।

सिद्धासन मेरुदंड के अतिंद्रीय ऊर्जा को निम्न चक्रों से ऊपर की ओर प्रभावित होता है जिससे मस्तिक उद्दीपन होता है और संपूर्ण तंत्रिका तंत्र शांत होता है।

सावधानियां–

ऐसे व्यक्ति को नहीं करना चाहिए, जिन्हें साइटिका हो या रीढ़ की हड्डी के निचले हिस्से भाग में गड़बड़ी हो यह अंडकोष बड़ा हुआ हो क्योंकि बहुत बार जब बिना अभ्यास के इस आसन को लोग करते हैं तब यदि अंडकोष बड़ा हुआ वह तो फट जाता है जिसके कारण पानी थैली में आ जाता है और दर्द होने लगता है घुटनों की तीव्र वेदना में क्रमशः धैर्यपूर्वक अभ्यास करें।

5.3 पद्मासन

वामोरूपरि दक्षिणं हि चरणं संस्थाप्य वामं तथा,

दक्षोरूपरि, पश्चिमेन विधिना धृत्वा कराभ्यां दृढम्।

अङ्.गुष्ठौ हृदये निधायं चिबुकं नासाग्रमालोकयेत्,

एतद्व्याधिविकारनाशनकरं पद्मासनं प्रोज्यते।। घे0सं0 2/9

अर्थ–

बायाँ पाँव दाई जाँघ पर और दायां पांव बायीं जांघ पर रखकर व्युत्क्रम विधि से हाथों को पृष्ठ भाग पर ले जायें और दायें हाथ से बायें पांव के अंगूठे एवं बाये हाथ से दायें पांव बाई जांघ पर रखकर हाथों को पृष्ठ भाग पर ले जाएं और दाएं हाथ से बाएं पांव के अंगूठे एवं बाएं हाथ से दाएं पांव के अंगूठे को दृढ़ता पूर्वक पकड़कर चिबुक को हृदय से लगाकर नासिका के अग्रभाग की ओर देखें। इससे सभी रोगों का शमन होता है पद्मासन कहलाता है।

इस आसन में बैठने पर शरीर कमल के समान दिखता है इसलिए इस आसन को पद्मासन कहा जाता है साधना के लिए यह एक उत्कृष्ट आसन है।

विधि–

दोनों पर मिली हुई अवस्था में सामने फैला कर बैठ जाइए बगल में हथेलियां जमीन पर अंगुलियां हाथ की सामने मिली हुई अवस्था में रहेंगी धीरे से एक पैर दाहिना बाए हाथ से पैर का पंजा तथा दाहिने हाथ से एड़ी के ऊपर रखना के ऊपर ले इसी प्रकार दूसरा पैर बाएं पैर का पंजा तथा बाएं हाथ से एड़ी के ऊपर का पकना के ऊपर रख लीजिए ज्ञान मुद्रा में आंखें बंद रखें सामने की ओर वापस आते समय उतार कर सीधा रख लीजिए अभी सीधा करके बैठ जाइए पाचन में सहायता करता है मांस पेशियों के तनाव को दूर करता है। मन को शांति प्रदान करता है मानसिक संतुलन के लिए अच्छा है प्राण शक्ति को मूलाधार चक्र उचित रूप से प्रभावित करता है इसे ध्यान की अनुभूति एक पैर रखने के बाद दूसरी जगह हो तो जबरदस्ती का प्रयास ना करें ।

लाभ–

- पाचन क्रिया में सहायता करता है।
- मांसपेशियों के तनाव को कम कतरा है व रक्तचाप को नियंन्त्रित करता है।
- मन को शांति प्रदान करता है।
- गर्भवती महिलाओं के प्रसव में सहायता करता है।
- मासिक चक्र की परेशानी को कम करता है।
- मानसिक व शारीरिक सन्तुलन के लिये अच्छा है।
- पद्मासन प्राण शक्ति को मूलाधार चक्र से सहस्त्रार चक्र उचित रूप से प्रवाहित कराता है। इससे ध्यान की अनुभूति में तीव्रता आती है।
- जबर्दस्ती न करें। यदि एक पैर विपरीत जंघा पर रखने के बाद दूसरा पैर दूसरी जंघा पर पूर्णतया न आता हो तो पांव जबर्दस्ती का प्रयास न करें।

सावधानियाँ–

1. घुटनों की समस्याओं वाले और स्लिप डिस्क वाले अभ्यासी इन आसनों को न करें।

जबर्दस्ती न करें।

5.4 भद्रासन

गुल्फौ च वृषणस्याधोव्युत्क्रमेण समाहितः।

पादाङ्गुष्ठौ कराभ्यां च धृत्वा वै पृष्ठदेशतः।। घे0सं0 2/10

जालन्धरं समासाद्य नासाग्रमवलोकयेत।

भद्रासनं भवेदेतत्सर्वब्याधि विनाशकम्।। घे0सं0 2/11

अर्थ–

दोनों एड़ियों को उलट कर अण्डकोशों के नीचे रखें। पीठ की ओर पद्मासन के समान दोनों अंगूठों को पकड़ लें। जालन्धर बन्ध की स्थिति करके नासिका के अग्रभाग को देखें। यह भद्रासन सभी रोगों को दूर करता है।

भद्र का अर्थ शिष्ट अर्थात कल्याणकारी है इसलिये इसे भद्रासन कहते है।

विधि–

सर्वप्रथम वज्रासन में बैठकर दोनों पैरों के अंगूठों को साथ–साथ रखते हैं। घुटनों को जितना हो सके दूर–दूर फैलाते है। पैरों की अंगुलियों का सम्पर्क जमीन से बना रहे। एड़ियों को इतना फैलाते है कि नितम्ब फर्श पर जम जाये। फिर दोनों हाथों से टखनों को पकड़ने है।

श्वासक्रम/समय– स्वाभाविक श्वास चलने दे। अनुकूलानुसार समय लगाएँ। आध्यात्मिक लाभ के लिये सजगता को मूलाधार पर रखते है।

लाभ– जांधे, घुटने, पैर व एड़ियाँ मजबूत और सशक्त होते हैं।

काम विकार नष्ट होते है, अतः आध्यात्मिक उन्नति ने यह आसन सहायक है।

अर्श, प्रमेह, अंडकोश वृद्धि भगंदर आदि रोगों का शमन होता है।

वज्रासन के सभी लाभ स्वतः मिल जाते हैं।

मूलाधार चक्र के उत्थान में सहायक है।

यह आसन मुख्य रूप से आध्यात्मिक साधकों के लिये है, क्योंकि इस स्थिति में आने मात्र से मूलाधार चक्र उत्तेजित होने लगता है।

वज्र नाड़ी पर जोर पड़ने के कारण पाचन शक्ति तीव्र होती है। साथ ही साथ बिना प्रायास किये स्वाभाविक रूप से अश्विनी और वज्रोली मुद्रा का अभ्यास भी इसमें से जाता है।

सावधानी– तीव्र कमर दर्द वाले इस आसन को शनैः शनैः करें।

यदि अभ्यास में तनाव का अनुदान हो तो आसन को तुरन्त समाप्त कर दे।

5.5 वज्रासन

जङ्घाभ्यां वज्रवत्कृत्वा गुदापार्श्वे पदावुभौ।
वज्रासनं भवेदेतद्योगिनां सिद्धिदायकम्।। घेरण्ड संहिता 2/13।।

अर्थ–

दोनों जंघाओं को वज्र के समान दृढ़ करके दोनों पाँवों को नितम्ब के दोनों ओर लगायें। तो वज्रासन होता है। यह आसन योगियों के लिये सिद्धि देने वाला है। वज्र का अर्थ है 'कठोर' इस आसन में दृढ़ता आती है।

इसकी गणना ध्यानात्मक आसनों में की जा सकती है। ध्यानात्मक दृष्टिकोण से करते समय आँखें बन्द कर लेनी चाहियें, यह आसन सरल होते हुये भी कल्पवृक्ष के समान है।

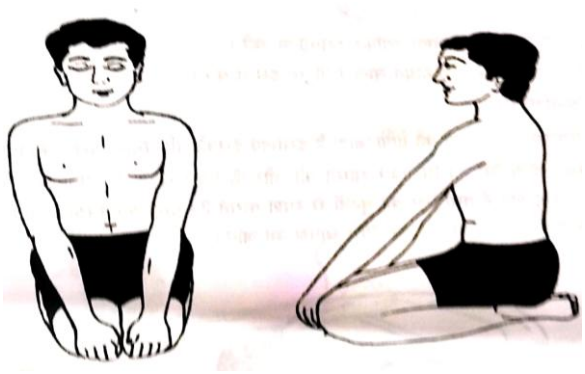

विधि–

दोनों पैर मिली हुई अवस्था में सामने फैलाकर बैठ जाइये, हाथ बगल में हथेलियां जमीन पर, अंगुलियां हाथ के सामने मिली हुई अवस्था में रहेगी। दाहिना पैर घुटने से मोड़कर दाहिने नितम्ब के नीचे ले आइये, पैर के पंजे अन्दर की ओर रहेंगे। अब बायां मोड़कर उसी प्रकार बायीं ओर बायां नितम्ब के नीचे ले आइये। हाथ जंघाओं पर (दाहिना हाथ दाहिनी जंघा पर तथा बायां बायीं जंघा पर) रहेगा। सीधे बैठ जाइयें दृष्टि सामने अथवा अन्दर रहेगी। वापस आते समय पहले बायां पांव दाहिनी ओर थोड़ा झुकते हुये बाएं नितम्ब के नीचे से निकालकर सीधा रख लीजिये।

लाभ–

- पाचन में सुधार के लिये पेट के निचले भाग में रक्त परिसंचरण को बढ़ाता है।
- पाचन पचाने में मदद करता है।
- पेट फूलना (उदयवाय) तथा उदरवायु से होने वाले दर्द को दूर करता है।
- पैरों और जांघों की नसों को मजबूत करता है।
- घुटने तथा टखनों के जोड़ों को लचीला बनाता है। तथा वातग्रस्त रोगों को रोकता है।
- बिना प्रयास के ही रीढ़ की हड्डी को सीधा करता है।
- प्राणायाम के अभ्यास और ध्यान की तैयारी के लिये लाभकारी।
- आत्मोत्थान हेतु लाभकारी है, सुषुम्ना का द्वार खोलता है।
- हार्निया और बवासीर में लाभदायक है।

- भोजन के तुरन्त बाद इस आसन को 10–15 मिनट अवश्य करें।

सावधानियाँ–

इस आसन को, पैर में अंकडन, या टखनों तथा घुटनों में चोट और स्लिप डिस्क से ग्रासित लोंगों को नहीं करना चाहियें।

5.6 स्वस्तिकासन

जानूर्वोरन्तरे कृत्वा योगी पादतले उभे।

ऋजुकायसमासीनः स्वस्तिकं तत्प्रचक्षते।।

घेरण्ड संहिता 2/14।।

अर्थ–

दोनों जांधों और घुटनों के मध्य दोनों तलवों को रख कर त्रिकोणाकार आसन लगायें और समभाव से बैठै, इस स्वस्तिकासन कहते है।

भारतीय संस्कृति में स्वस्तिक चिन्ह मंगलसूचक प्रतीक के रूप में विख्यात है। जब हम यह आसन करते है तो हमारे पैरों की स्थिति का निकटतम आकार स्वस्तिक जैसा होता है, इसी कारण नाम स्वस्तिकासन पड़ा है।

विधि–

दोनों पैर मिली हुई अवस्था में सामने फैला कर बैठ जाइयें, हाथ बगल में हथेलियों जमीन पर, अंगुलियां सामने मिली हुई अवस्था में रहेगी।

2. अब अपना एक पैर घुटने से मोड़कर दूसरे पैर की जंघा के मूल में सटा लें।

3. दूसरे पैर को मोड़कर दूसरी सीवनी से लगा लें।

4. अपने दोनों हाथों को दोनों घुटनों पर ज्ञानमुद्रा की स्थिति में रख लें।

5. वापस आते समय पहले दाहिने पैर तलवें को जांघ व पिंडली की मांसपेशी के मध्य से निकालकर सीधा रख ले।

6. अब बायां पांव भी जंघामूल से हटाकर सीधा कर लें। और सीधे बैठ जाइयें।

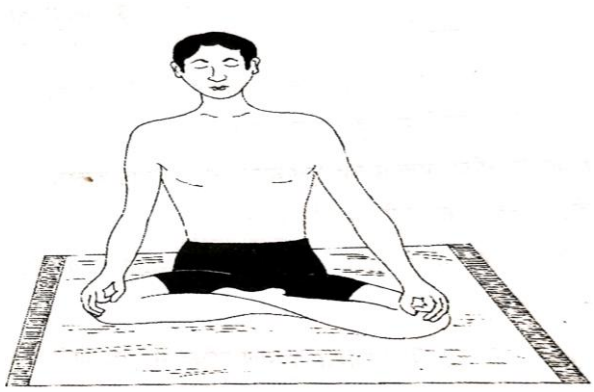

लाभ–

- स्वास्तिकासन बैठने का एक अलग आसन है विशेषकर उन लोगों के लिये जो स्फीत शिरा, पेशीय पीड़ा अथवा पैरों में द्रव अवरोधन से परेशान हो।
- बिना किसी कष्ट के बहुत समय तक ध्यानावस्था में स्थिरतापूर्वक बैठा जा सकता है।
- सकारात्मक ध्यान करने से सम्पूर्ण शरीर के विकार क्रमशः नष्ट होते है।
- बल, वीर्य, ओज तेज उर्ध्वमुखी होकर तेजस्वी बनता है।
- नाड़ियों के मल साफ होते है। जिससे मानसिक तनाव दूर होते है।

सावधानियाँ–

साइटिका एवं रीढ़ के निचले भाग के विकारों से पीड़ित लोगों को यह आसन नहीं करना चाहियें।

5.7 गोमुखासन

पादौ च भूमौं संस्थाप्य पृष्ठपार्श्वे निवेशयेत्।

स्थिरं कायं समासाद्य गोमुखं गोमुखाकृतिः।। घेरण्ड संहिता 2/17।।

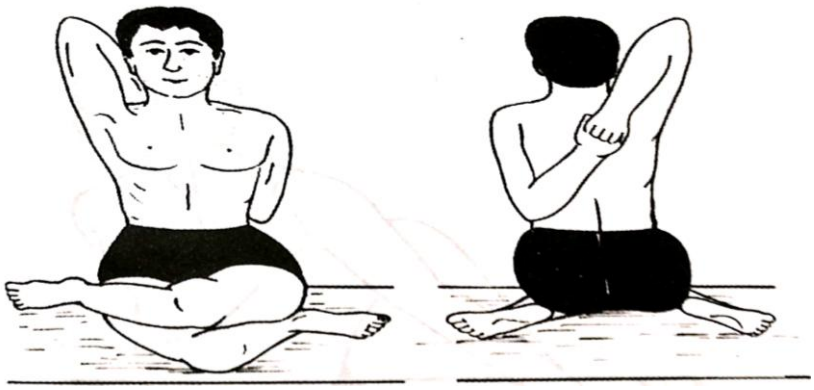

अर्थ–

पृथ्वी पर दोनों पांवों को रखकर और पीठ के दोनों पंजों में लगाकर देह को सीधा कर गौ के मुख समान ऊँचा करके बैठने को गोमुखासन कहते है।।17।।

एक के ऊपर एक घूटने रखने से इसकी आकृति गाय के मुख के समान और पैंरों के पंजे अगल–बगल से बाहर की तरफ निकले होने के कारण गाय के कान के समान दिखाई पड़ते है अतः गौमुख आसन कहलाता है।

विधि–

1. सबसे पहले पैरों को फैला लेना है
2. इस आसन में इस प्रकार बैठना है कि एक पैर दूसरे पैर के ऊपर रहे और दोनों एड़िया शरीर के बगल में
3. दाहिने पैर को मोड़कर एड़ी को बायें नितम्ब के समीप रखते हैं और बायें पैर को मोड़कर एड़ी को दायें नितम्ब के समीप तथा दोनों घुटनों को एक दूसरे पर रखते है।
4. पैरों की इस अवस्था में गोमुखासन की स्थिति को प्राप्त करने के लिये अपने दाहिने हाथ को पीठ के पीछे ले जाना है। और बायें हाथ को बायें, कन्धे पर से पीछे ले जाकर दोनों हाथों की अंगुलियां को परस्पर बांध लेना है। बायी कोहनी बगल की सीध में रहेगी। कुछ लोग कहते है कि केहुनी सिर के ठीक पीछे रहनी चाहिये। दोनों प्रकारान्तर मान्य हैं। रीढ़ सीधी रहे और सिर पीछे की ओर। आंखों को बन्द रखें।
5. इसमें इतना ही ध्यान रखना है कि जो पैर ऊपर ही हाथ ऊपर जायेगा और पैर नीचे हो, तो दांया हाथ पीछे से ऊपर जायेगा। जैसे, दाहिना पैर नीचे है। दो दायाँ हाथ पीछे से ऊपर जायेगा।

इस अवस्था में नासिकाग्र दृष्टि पर अपने आप को केन्द्रित करके सामान्य श्वास लेते हुये कुछ समय तक बैठे रहे। जितनी देर तक आप इस आसन में आराम से रह सकते।

लाभ–

1. छाती मजबूत और चौड़ी होती है।
2. इस आसन को करने से मूलबन्ध अपने आप लग जाता है।
3. यह आसन मधुमेह गठियाबात, कब्ज, पीठ दर्द व शीघ्रपतन जैसी कई बीमारियों को दूर करता है।
4. पैरों की ऐठन दूर करता है। कंधों को मजबूत करता है।
5. स्त्रियों के वक्षः स्थल सुंगठित होते है।
6. यह शिथिलीकरण का उत्तम अभ्यास है।
7. स्पोंण्डिलाइटिस के लिये बहुत लाभकारी है।
8. तनाव, चिन्ता एवं थकान को दूर करके शरीर को विश्राम प्रदान करता है।

सावधानियां–

1. जिन्हें रक्त की बवासीर हो वे इसे न करें।
2. जिनके कन्धें लचीले ना हो वे ये आसन कपड़े की पट्टी पकड़ कर करें।
3. यदि आपके घुटने लचीले ना हो तो आप नितम्ब का लचीला बनाने का आसन करें, जमीन पर कम्बल बिछाकर।

5.8 वीरासन

एकं पाद्मथैकस्मिन्विन्यसेदूरुसंस्थितम्।

इतरस्मिंस्तथा पश्चाद्वीरासनमितीरितम्।। घेरण्ड संहिता 2/18।।

अर्थ–

एक पैर को दूसरे पैर की जांघ के समीप रखकर दूसरे पैर को पीछे की ओर निकालने से वीरासन हो जाता है।

व्याख्या–

वज्रासन की स्थिति में बैठते है। दाहिने घुटने को उठाकर दायें पैर को बायें घुटने के भीतरी भाग के पास जमीन पर रखते है। दांयी केहुनी को दायें घुटने पर रखते है तथा ठुड्डी को दायीं हथेली के ऊपर रखते है। आंखें बन्द कर विश्राम करते है। शरीर पूरी तरह गतिहीन रहे। रीढ़ एवं सिर सीधे रहते हैं। फिर बायें पैर को दाहिने घुटने के पास रखकर इस अभ्यास को दोहराते हैं।

लाभ–

1. जिन लोगों को ध्यान के आसन में बैठने में कठिनाई होती है, वे इस अवस्था में ध्यान का अभ्यास कर सकते है।
2. एकाग्रता का अभ्यास करने, पढ़ाई करने एवं मन को केन्द्रित करने के लिये उपयोगी आसन है।
3. स्नायविक विकार के लिये बहुत उपयोगी आसन है।
4. यह आसन उन लोगों के लिये उपयोगी है जो बहुत अधिक सोचते है या जिनकी विचार–प्रक्रिया अनियन्त्रित या विक्षिप्त रहती है।
5. यह वृक्क, यकृत, प्रजनक अंगों एवं आमाशय के अंगों के लिये बहुत अच्छा आसन है।

5.9 गुप्तासन

जानूर्वोरन्तरे पादौ कृत्वा पादौ च गोपयेत्।

पादोपरि च संस्थाप्य गुदं गुप्तासनं विदुः।। घेरण्ड संहिता 2/21।।

अर्थ दोनों घुटनों के मध्य भाग में दोनों पांवों को छुपाकर रखे और उन पाँवों में गुह्य प्रदेश को कर लें। यह गुप्तासन कहलाता है।

व्याख्या– सुखासन में बैठ जाएँ। अपने बाएँ पैर की एड़ी को सीवनी नाड़ी पर लगाकर दबाएं और दाहिने पैर की अंगुलियों को बाएं पैर की जांघों एवं पिंडली के बीच फंसाएं। हाथों को ज्ञान मुद्रा की स्थिति में लाकर घुटनों के ऊपर रखें।

लाभ–

1. बल, वीर्य, आंख तेज उर्ध्वमुखी होकर तेजस्वी बनाता है।
2. ध्यान करने से शरीर के विकार खत्म होते है।
3. मानसिक तनाव दूर होते है।

5.10 मयूरासन

पाण्योस्तलाभ्यामवलम्ब्य भूमिं तत्कूर्परस्थापितनाभिपार्श्वम्।

उच्चासनों दण्डवदुत्थितः खे मायूरमेतत्प्रवदन्ति पीठम्।। घेरण्ड संहिता 2/30।।

अर्थ–

दोनों हाथो की हथेलियों को धरती पर टिका कर दोनों केहुनियों को नाभि पार्श्व में लगा लें। फिर दोनों पैरों को पीछे की ओर इस प्रकार उठा लें (क्षैतिज) जिस प्रकार डण्डे को उठाता जाता है। यह मयूरासन कहलाता है। संस्कृत में 'मयूर' का अर्थ होता है 'मोर'। मोर की आकृतिवाला होते के कारण इसे मयूरासन कहा गया है।

विधि–

1. दोनों पंजों के बल बैठ जाइयें घुटने जमीन से लगे रहेगें।
2. दोनों हाथों के पंजे खोलते हुये हथेलियां जमीन पर लगा लीजियें। हाथों की अंगुलियां फैली हुई पीछे की ओर रहेंगी।
3. कुहनियाँ नाभि के दोनों ओर भली प्रकार लगाये।
4. धीरे'–धीर पैर को सीधा फैलाकर सावधानीपूर्वक थोड़ा आगे आकर शरीर को ऊपर उठायें।
5. अगर शरीर उठ गया हो तो पैरों को दंड के समान सीधा करें व छाती गर्दन तथा सिर भी सीधा रखें। कुछ रूकने के पश्चात् पूर्वस्थिति में वापस आ जाइयें। धीरे से पैरों को मोड़कर हुए घुटनें जमीन पर लगा लें। हाथों को उठाते हुये पूर्वस्थिति में आ जायें।

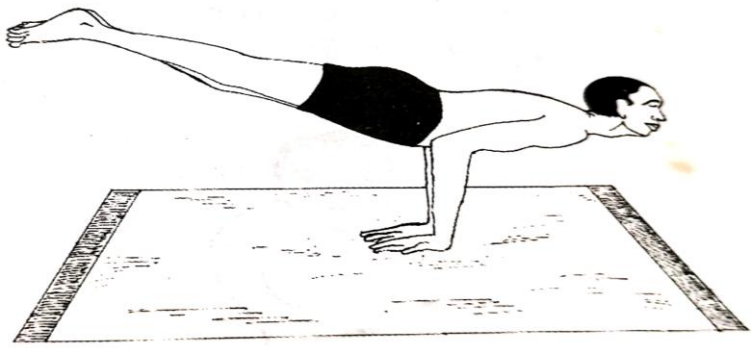

लाभ–

1. रक्त में टॉक्सिन कम करने में सहायक है।
2. पेट के निचले भाग में रक्त संचालन सुधारने में सहायक है।
3. मांसपेशियों को मजबूत करके शारीरिक व दिमागी संतुलन को बनाएं रखता है तथा मांसपेशियों को नियंत्रित करता है।
4. शरीर में इकट्ठे हुए टॉक्सिन को खत्म करता है व तीनों शारीरिक दोषों का संतुलन बनाए रखने में मदद करता है।

5. स्त्रियों के लिये इस आसन का अभ्यास पूर्णरूपेण वर्जित है।

सावधानी–

1.जिन्हें गर्दन में दर्द की शिकायत हो वे इसे न करें।

5.11 मत्स्येन्द्रासन

उदरं पश्चिमाभासं कृत्वा तिष्ठत्यत्नतः।।

नम्रित वामपादं हि दक्षजानूपरि न्यसेत्।। घेरण्ड संहिता 2/23।।

तत्र याम्यं कूर्परं च याम्यकरेऽपि च।

भ्रुवोर्मध्यें गतां दृष्टिः पीठं मात्स्येन्द्रमुच्यते।। घेरण्ड संहिता 2/24।।

अर्थ–

उदर को पीठ की ओर खींचकर पीठ को सीधा रखते हुए बायें पांव की एड़ी को यत्नपूर्वक मोड़कर दायीं जांघ पर रख लें और उस पर दायीं कोहनी रखे तथा ठुड़ी को दायें हाथ पर रखकर दृष्टि को भौहों के मध्य भाग में स्थिर कर लें यह मत्स्येन्द्रासन कहलाता है।

यह आसन हठयोगी मत्स्येन्द्र नाथ को समर्पित है।

विधि–

1. दोनों पैर मिली हुई अवस्था में सामने फैलाकर बैठ जाइयें, हाथ बगल में हथेलियाँ जमीन पर अंगुलियाँ हाथ के सामने मिली हुई अवस्था में रहेगी।
2. दाहिने पैर को घुटने से मोड़िएँ धीरे से एड़ी को जंघामूल से सटाकर लगा लिजीए।
3. अब बायां पैर मोड़ते हुये दाहिने घुटने के ऊपर से लाकर उसके बल भूमि पर रख लीजियें। बायें पैर का घुटना सीधा उठा रहेगा आकाश की ओर।
4. अब दाहिना हाथ बायीं ओर बायें घुटने के पास लाइये। बायां घुटना दाहिनी बगल (armbit) के दाहिनी ओर रहेगा।
5. अब दाहिना हाथ सीधा कीजिये व बायें पैर का अंगूठा या पंजा पकड़िये।
6. बायीं से मुड़त हुये पीछे की ओर देखें बायां हाथ पीछे की ओर से दाहिनी जंघा पर ले आवें दृष्टि पीछे की ओर रहेंगी।
7. वापस आते समय पहले जैसा जंघा वाला हाथ छोड़े व सिर सीधा कर लें।
8. अब दाहिना हाथ भी ढीला कर ले और पीठ सामान्य स्थिति में ले आये।
9. बायां पैर उठाकर पूर्व स्थिति में ले आवें।
10. दाहिना पैर भी उठाकर पूर्वस्थिति में ले आवें।
11. इसी प्रकार बायां पैर मोड़कर दूसरी ओर से करें।

लाभ–

- इससे यकृत की कार्यशीलता बढ़ती है तथा गुर्दो की दुर्बलता दूर होती है।,
- मधुमेह में यह बहुत उपयोगी है। अग्नाशय को सक्रिय बनाकर इन्सुलिन के उत्पादन में सहयोग देना है।
- यह बद्धकोष्ठता तथा अजीर्ण में अत्यन्त लाभकारी है।
- यह कंधे और पीठ की मांसपेशियों के लिये अत्यन्त लाभकारी है।
- कंधों और गर्दन से कड़ेपन को दूर करता है, पीठ को लचीला बनाता है और उदर के अंगों की मालिश करता है व उनमें सुधार लाता है।
- जननेन्द्रिय के रोग दूर करता है एवं पेट की जमीं चर्बी को दूर करता है।

सावधानी–

1. जिन्हें मेरूदण्ड में कड़ेपन को शिकायत हो वे इसे अत्यन्त सावधानी से करे।

2. साइटिका, पेट का अल्सर, मेरूदण्ड सम्बन्धी चोट वाले गर्भवती महिलाएं स्लिप डिस्क आदि रोग वाले इस आसन को सजगता पूर्वक करें।

5.12 उष्ट्रासन

अध्यास्य शेते पदयुग्मव्यस्तं पृष्ठे निधायापि धृतं कराभ्याम्।

आकन्च्य सम्यग्ध्युदरास्यागाढं उष्ट्रं च पीठं यतयो वदन्ति।। घेरण्ड संहिता 2/41।।

अर्थ–

अधोमुख लेटें और दोनों पांवों को पलटकर पीठ पर टिका लें तथा पांवों को हाथों से पकड़कर मुख और पांवों दृढतापूर्वक सिकोड़ ले यह उष्ट्रासन कहलाता है। उष्ट्र का अर्थ ऊँट है।

विधि–

घुटनों को जमीन पर टिकाते हुए अपने दोनों पैरों के जांध और पंजों को आपस में मिला लीजिए, पंजों को बाहर की तरफ रखते हुये। जमीन पर फैला दीजिए। घुटनों और पंजों के बीच एक फुट की दूरी रखते हुये घुटनों के बल खड़े हो जाएं। श्वास लेते हुये पीछे की ओर झुकें। इस बात का ध्यान रखें की झुकते समय गर्दन को झटका न लगे। पीछे की ओर झुकें और धीरे–धीरे दाहिने हाथ से दाहिनी एड़ी और बायें हाथ से बाईं एड़ी को पकड़ने का प्रयास करें। अंतिम स्थिति में जांघ को जमीन पर उर्ध्वाकार(लंबवत) रखते हुये सिर को हल्का सा पीछे की ओर खींचकर रखें। यथासम्भव पूरे शरीर का भार अपनी भुजाओं और पैरों पर होना चाहिये। इसका अभ्यास सर्वांगासन के बाद करना चाहिये इस मुद्रायें उचित लाभ होता है।

लाभ–

उष्ट्रासन दृष्टि दोष में अत्यंत लाभदायक है पीठ और गले के दर्द से आराम दिलाता है या उधर और नितंब की चर्बी को कम करने में सहायक है पाचन क्रिया संबंधी समस्याओं के लिए यह अत्यंत लाभदायक है

सावधानी–

उच्च रक्तचाप हृदय रोगी हर्निया के मरीजों को या आसन नहीं करना चाहिए

5.13 गोरक्षासन

जानूर्वोरन्तरे पादौ उत्तानौ व्यक्तसंस्थितौ।

गुल्फौ चाच्छाद्य हस्ताभ्यामुत्तानाभ्यां प्रयत्नतः।। घेरण्ड संहिता 2/25।।

कण्ठसंकोचनं कृत्वा नासाग्रमवलोकयेत्।

गोरक्षासनमित्याहुर्योगिनां सिद्धिकारणम्।। धे0 सं0 2/26

अर्थ–

दोनों जांघों और घुटने के मध्य में दोनों पैर के पंजों को छुपे रूप में रखें तथा दोनों हाथों से दोनों एड़ियों को पकड़कर कंठ का संकोच करें और नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि जमाले यह गोरक्षाआसन यह योगियों को सिद्धि प्रदान करने वाला है।

विधि–

पैरों को सामने फैला कर बैठ जाते हैं घुटनों को मोड़कर तलवों को मिलाकर एड़ियों को ऊपर उठा देते हैं घुटने और पैर के पंजे जमीन पर रहते हैं इसमें श्रेणी प्रदेश नितंब और प्रजनन इंद्रियों एड़ी के पीछे रहती है हाथों को नितंबों के पीछे इस प्रकार रखते हैं की उंगलियों बाहर की ओर रहे शरीर को सामने की ओर झुकाते हुए इतना ऊपर उठाते हैं कि पांव जमीन के लंबवत हो जाए नाभि के सामने

से दोनों कलाइयों को आर पार करते हुए बाई एडी को दाएं हाथ से तथा दाढ़ी को बाएं हाथ से पकड़ लेते हैं मेरुदंड को सीधा रखते हुए सामने की ओर देखते हैं

लाभ–

कंठ का संकुचन करने से कंठ रोगों से लाभ पहुंचता है दृष्टि नासिका के अग्रभाग पर स्थित करने से त्राटक का अभ्यास अपने आप से हो जाता है एवं नेत्र विकार दूर होकर आंखों में आकर्षण पैदा होता है प्रतिदिन अभ्यास करने से काम विकार का नाश होता है ऊर्जा को उर्ध्वमुखी करता है प्रतिदिन के अभ्यास से ध्यान की अवस्था को काफी देर तक रहा जा सकता है इसके अभ्यास से प्रजनन इंद्रियों कामवासना पर नियंत्रण प्राप्त किया जा सकता है मन को केंद्रित करने तथा धारणा की अवस्था प्राप्त करने के लिए भी इस आसन का अभ्यास किया जाता है।

5.14 पश्चिमोत्तानासन

अर्थ– दोनों पाँवों को दंड के सामान सहज भाव से भूमि पर फैलाएं उनके अँगूठों को पकड़ ले फिर दोनों जांघों के मध्य में सिर को रखें, तो यह पश्चिमोत्तानासन होगा।

विधि–

दोनों पैर मिली हुई अवस्था के सामने फैला कर बैठ जाइए हाथ बगल में हथेलियों जमीन पर उंगलियां सामने की ओर मिली हुई अवस्था में रहेंगी आपका शरीर जितना झुक सकता है जो हाथ छोड़कर जहां सुविधा हो वहां रख लीजिए अच्छा हो की जांघों पर रखें प्रतिदिन अभ्यास करें और थोड़ा थोड़ा आगे झुकते हुए अंत में पैरों के अंगूठे को दोनों हाथों की तर्जनी से पकड़िए और मस्तक घुटनों पर रखिए कुछ सेकंड बाद धीरे से सिर उठाइए अंगूठे छोड़िए और पूर्व स्थिति में आ जाइए अपना ध्यान मणिपुर चक्र में रखें।

लाभ–

घुटने के आसपास मांसपेशियों का खिंचाव तथा नितंब का जोड़ लचीला होता है रीड की हड्डी का खिंचाव होने से लंबाई बढ़ाने में सहायक है पेट के अंग लीवर, प्लीहा, किडनी तथा गुर्दे संबंधी समस्याओं के लिए गुणकारी है पेट की चर्बी को घटाता है।पाचन तंत्र तथा में पेट के लिए बहुत लाभदायक है बेचौनी क्रोध तथा तनाव को दूर कर मन को शांत करने में सहायक है मासिक धर्म की अनियमितता को दूर करता है। सेक्स संबंधी समस्याओं के लिए लाभप्रद है प्रसव के बाद महिलाओं के लिए विशेष सहायक है।

सावधानी–

आपका लक्ष्य धीरे से आगे झुककर अंगूठे पकड़ना है तथा मस्तक घुटनों पर कितना है अतः शीघ्रता ना करें यदि कठिनाई होती तो हो तो पहले दिन ही पूर्व स्थिति प्राप्त करने का प्रयास ना करें घुटने को न मोड़े चाहे आप आगे झुक जाए या नहीं। इस आसन को उच्च रक्तचाप हृदयरोग से पीड़ित व्यक्तियों को नहीं करना चाहिए जिन लोगों को साइटिका दर्द है या मेरुदंड संबंधी कोई दोष है उन्हें भी यह आसन नहीं करना चाहिए इस आसन का अभ्यास पीछे झुकने वाले आसनों जैसे चक्रासन भुजंगासन के बाद करना चाहिए।

5.15 उत्कट आसन

अङ्.गुष्ठाभ्यामवष्टभ्य धरां गुल्फौ च खे गतौ।

तन्नोपरि गुदं न्यस्य विज्ञेयं तूत्कटासनम्।। घेरण्ड संहिता 2/28।।

अर्थ–

पांव के अंगूठे का पृथ्वी पर टिका कर उनके सहारे बैठे और एड़ियों को भूमि पर न टिकने दें तथा गुदा स्थान को एड़ियों पर रखने तो यह उत्कट आसन कहलाएगा।।

विधि–

दोनों पैर मिलाकर खड़े हो जाइए हाथ बगल में जांघो से सटे रहेंगे दृष्टि सामने की ओर। दोनों पांवो को करीब एक फुट के अंतर पर रख लीजिए और हाथों को कंधे की ऊंचाई तक लाते हुए सीधे तान लीजिये हथेलियों जमीन की ओर रहेंगी। एड़ी उठा लीजिए पांव के अगले पंजो के बल खड़े हो जाइए और धीरे–धीरे अगले पंजो पर भार देते हुए बैठ जाइए। दोनों हाथों को दोनों घुटनों पर रख लीजिए। थोड़ी देर बाद वापस आते समय दोनों हाथों को घुटने पर से हटा कर कंधे की ऊंचाई में सीधा कर लीजिए। धीरे–धीरे संतुलन बनाए रखते हुए पैर के अगले पंजों के बल खड़े हो जाइए और

तब एड़ियों को जमीन से लगा दीजिए। हाथों को शरीर के बगल में ले जाइए और पांव को मिलाते हुए पूर्व स्थिति में आ जाइए।

लाभ–

- यह पिंडली की मांसपेशियों को शुद्ध बनाता है मुख्यता इसका उपयोग पैरों की स्नायु दुर्बलता दूर करने में है एवं या कब्जियत दूर करता है।
- यह शारीरिक संतुलन को पक्का बनाने के लिए संतुलन समूह के आसनों मे से एक है
- शरीर को समतोल बनाता है तथा मन को धिर बनाता है पाचन तंत्रिका रक्त वाहन तंत्रिका तथा प्रजनन तंत्रिका को उत्तेजित करता है मोटापा कम करने में सहायक एकाग्रता बढ़ाने के लिए उपयुक्त।
- पैरों में होने वाला दर्द खिंचाव सुन्न पड़ना पिंडली जांघे एवं एडी सहित पूरे पैर के विकार दूर करता है।

सावधानियां–

- जिन लोगों की मांसपेशियों में ऐंठन की शिकायत है वे इसे ना करें
- इस आसन को पुरानी घुटने के दर्द टखने घुटने की समस्याएं या क्षतिग्रस्त स्नायुबंधन सिर दर्द या अनिद्रा वाले लोगों को नहीं करना चाहिए
- एकदम से पहली बार में ही जमीन पर बैठने की कोशिश ना करें।

5.16 संकट आसन

वामपादचितेर्मूलं विन्यस्य धरणीतले।

पाद दण्डेनयाम्येन वेष्टयेद्वामपादकम्।

जानुयुग्मे करयुग्मेतत्संकटासनम्।। घेरण्ड संहिता 2/29।।

बायें पांव को घुटने तक भूमि पर टिका कर बायें पांव से बायें पांव को लपेट लें और फिर दोनों घुटनों पर दोनों हाथ रख लें इसे संकटासन कहते हैं।

विधि–

खड़े होकर बाएं पैर को जमीन पर रखिए और दाहिने पैर को मोड़कर बाएं पैर के चारों तरफ लपेट लीजिए दाई जंघा बायीं जंघा के सामने रहेगी हाथों को जांघों पर दबाकर रखना है या एक कठिन आसन है दोनों पैरों में दर्द होने पर पेशियों को आराम देने के लिए हम एक पैर को उस संकट मय स्थिति में ऊपर उठा लेते हैं इसी सिद्धांत पर संकटआसान आधारित है।

लाभः–

- यह मांसपेशियों को पुष्ट बनाता है।

- स्नायु को स्वस्थ प्रदान करता है तथा पैरों की जोड़ों को ढीला बनाता है।
- पैरों को दृढ़ता प्रदान करता है निरंतर अभ्यास से पैरों का कंपन दूर हो जाता है।

सावधानी–

- गठिया जैसी बीमारी वाले सावधानी पूर्वक अभ्यास करें।

5.17 सिंहासन

गुल्फौ च वृषणस्याधो व्युत्क्रमेणोर्ध्वतां गतौ।
चितियुग्मं भूमिसंस्थं करौ च जानुनोपरि।। घेरण्ड संहिता 2/15।

व्यात्तवक्त्रो जलन्ध्रेण नासाग्रमवलोकयेत्।
सिंहासनं भवेदेत्सर्वव्याधि विनाशकम्।। घेरण्ड संहिता 2/16।।

अर्थ–

दोनों पैरों की एड़ियों को व्यूत्क्रमपूर्वक अंडकोष के नीचे लगाकर जालंधर बंध सहित भौहों के मध्य में दृष्टि स्थिर करें अथवा नासिका के अग्रभाग में ही निश्चल दृष्टि रखे या सिंहासन नामक आसन सभी रोगों को नष्ट करने वाला है आकृति सिंह के समान होती है इसलिए इसे सिंहासन कहते हैं

विधि–

बज्र आसन में बैठ जाएं घुटनों के बीच बढ़ती दूरी रखें दोनों पैरों की उंगलियां आपस में एक दूसरे को स्पर्श करती हुई रहे आगे की ओर झुके और दोनों हथेलियों को घुटनों के बीच जमीन पर इस प्रकार रखें कि उंगलियां शरीर की ओर रहे भुजाओं को पूरी तरह सीधा कर ले और पीठ को मोड़कर चापाकार बनाएं जिससे गर्दन के सामने के भाग में अधिक से अधिक विस्तार हो सिर को पीछे की ओर झुकाएं, ताकि गर्दन में आरामदायक तनाव उत्पन्न हो आंखें बंद कर लें और शांभवी मुद्रा करते हुए अंतर्दृष्टि को भ्रूमध्य पर केंद्रित करें आंखें खुली भी रख सकते हैं ऐसी स्थिति में अपने दृष्टि को छत के किसी बिंदु पर केंद्रित करें मुंह बंद रहना चाहिए संपूर्ण शरीर और मन को विश्रांत बनाएं

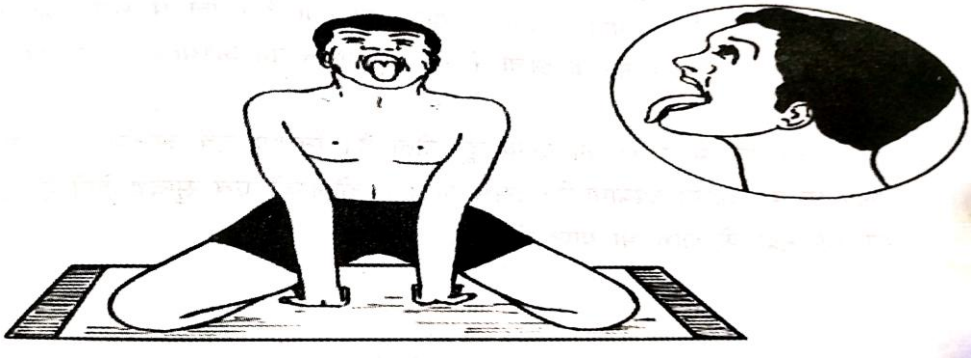

विशेष–

घुटनों पर हाथ सीधे तने हुए एवं छाती तनी हुई रहेगी जीभ बाहर निकालते समय थोड़ी सी आवाज के साथ धीमी गति से श्वास छोड़ते हुए गले से गर्जन की आवाज निकालते हैं। रेचक की समाप्ति पर मुंह बंद कर श्वास लेते हैं। यह एक क्रम होगा।

लाभ–

1. इसमें गर्दन की मांसपेशियों को आराम मिलता है और इससे रक्त संचरण की भी वृद्धि होती है।
2. थायराइड की समस्या में भी लाभ होता है ।
3. टॉन्सिल की कुछ प्रकारों में लाभकारी है।
4. हकलाना बंद होता है कंठ मधुर होता है नेत्र ज्योति ठीक होती है।
5. छाती को मजबूत बनाता है और पेट को नरम रखता है मूलाधार चक्र एवं आज्ञा चक्र भी जागृत होता है।
6. निराशा एवं अंतर्मुखी लोगों के लिए यह आसन उपयोगी है इसे वक्ष एवं मध्यपट का तनाव दूर होता है।

5.18 सारांश

संसार में जितने जीवों की योनियां है उतने ही आसन है जीव योनियां 84 लाख मानी गयी है। अतः आसन भी 84 लाख है। इनमें 84 आसन श्रेष्ठ माने गये है, इनमें भी 32 आसन अति विशिष्ट और अधिक शुभ समझने चाहिए। इस इकाई में हमने मुख्य–मुख्य योगासनों विधि एवं उनके लाभ के बारे में जाना। शारीरिक, मानसिक और आत्यात्मिक विकास के लिये योगासन बहुत लाभदायक है। आसनो से ग्रन्थियाँ, पेशियो, अस्थिबंधो और स्नाय का व्यायाम होता है, जिससे वे स्वस्थ रहते है। यौगिक क्रियाओं और आसनो का लक्ष्य इस भौतिक शरीर की आत्मा में निवास के लिये उपयुक्त स्थल बनाना है।

5.19 अभ्यास प्रश्न

अभ्यास प्रश्न–

1. ध्यानात्मक आसन क्या है? पद्मासन, सिद्धासन की विधि, लाभ एवं सावधानियाँ बताइये।
2. भद्रासन एवं वज्रासन की विधि, लाभ एवं सावधानियाँ बताइये।
3. वीरासन एवं गुप्तासन की विधि, लाभ एवं सावधानियाँ बताइये।
4. मयूरासन एवं मत्स्येन्डासन की विधि, लाभ एवं सावधानियाँ बताइये।
5. संकटासन एवं सिंहासन की विधि, लाभ एवं सावधानियाँ बताइये।

5.20 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. घेरण्ड संहिता – स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती , योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर बिहार, भारत
2. आसन , प्राणायाम, मुद्रा बंध – स्वामी सत्यानन्द सरस्वती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर बिहार, भारत
3. योगासन विज्ञान – धीरेन्द्र ब्रम्हचारी, धीरेन्द्र योग प्रकाशन, नई दिल्ली
4. हठयोग प्रदीपिका– स्वात्मारामकृत संस्करणकर्ता – स्वामी दिगम्बर जी , कैवल्य धाम लोनावाला
5. योग विज्ञान – स्वामी विज्ञानान्द सरस्वती, योग निकेतन ट्रस्ट मुनि की रेती, ऋषिकेश, उत्तराखण्ड

इकाई .06 कुक्कुटासन, कुर्मासन, उत्तानकुर्मासन, मण्डुकासन, उत्तान मण्डुकासन, नौकासन, पवनमुक्तासन, सर्वांगासन, मत्स्यासन, शवासन, शीर्षासन, शलभासन, भुजंगासन, धनुरासन, मकरासन

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 कुक्कुटासन

6.3 कुर्मासन

6.4 उत्तानकुर्मासन

6.5 मण्डुकासन

6.6 उत्तान मण्डुकासन

6.7 नौकासन

6.8 पवनमुक्तासन

6.9 सर्वांगासन

6.10 मत्स्यासन

6.11 शवासन

6.12 शीर्षासन

6.13 शलभासन

6.14 भुजंगासन

6.15 धनुरासन

6.16 मकरासन

6.17 सारांश

6.18 अभ्यास प्रश्न

6.19 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

6.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप

- विभिन्न आसनों की विधियों का विश्लेषण कर सकेंगे।
- आसनों की उपयोगिता को स्पष्ट कर सकेंगे।
- विभिन्न आसनों की विधि, लाभ, सावधानियों का वर्णन कर सकेंगे।
- आसनों की व्यवहारिक जीवन तथा साधना की दृष्टि से महत्ता को स्पष्ट कर सकेंगे।
- आसनों के अभ्यास से हमारी प्रसुप्त शक्ति जागृत होकर जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अधिकाधिक आत्मविश्वास से मानसिक एवं भावनात्मक सन्तुलन प्राप्त कर सकेंगे।

6.1 प्रस्तावना

यौगिक क्रियाओं का उद्देश्य मात्र शारीरिक लाभ प्राप्त करना नहीं बल्कि आध्यात्मिक शक्तियों को जागृत करना है। शारीरिक लाभ इसका छोटा उद्देश्य है। आध्यात्मिक लाभ का भी होना आवश्यक है। क्योंकि आसन एक सूक्ष्म विज्ञान है।

अतः हम कह सकते है कि योागसनों के अभ्यास द्वारा जीवन के हर क्षेत्र में परिपूर्णता आती है जन्म जन्मांतरों के संस्कार क्षीण हो जाते है। इस संसार बन्धन से मुक्ति मिल जाती है।

इस इकाई में आप शारीरिक स्थिरता के बाद मानसिक स्थिरता के लिये ध्यानात्मक आसनों के बारे में जानेंगे।

6.2 कुक्कुटासन

पद्मासनं समासाद्य जानूर्वोरन्तरे करौ।

कूर्पराभ्यां समासीनो उच्चस्थः कुक्कुटासनम्। घेरण्ड संहिता 2/31।।

अर्थ–

पद्मासन में बैठ गए जांघ और पिंडलियों के बीच से दोनों हाथों को निकाल कर जमीन पर रखिए दोनों हथेलियों को जमीन पर टिका कर अंगुलियों आगे की ओर रहे शरीर को हवा में ऊपर उठाइए पदम आसन में ही शरीर के अंगों पर टिका रहेगा या कुक्कुटासन कहलाता हैं।

कुक्कुट का अर्थ होता है मुर्गा इस आसन में शारीरिक विन्यास एक मुर्गे की भांति होता है इस कारण इसे कुक्कुटासन कहते हैं।

विधि–

पद्मासन में बैठे हाथों को पिंडलियों और जांघों के बीच में से धीरे–धीरे निकाले हथेलियों को जमीन में इस प्रकार रखें कि अंगुलियों को सामानों की तरफ रहे पूरे शरीर को धीरे–धीरे हाथ के बाहों में वजन देते हुए ऊपर उठाइए जितना संभव हो सके रुके फिर वापस मूल स्थिति में आ जाए अभ्यास हो जाने पर पैरों को बदलकर करें।

लाभ–

- इस आसन से भुजाओं एवं कंधों की मांसपेशियों की शक्ति प्राप्त होती है।
- बल का विस्तार होता है या पैरों को जोड़कर कि जोड़ों को ढीला कर संतुलन एवं स्थिरता के भाव को विकसित करता है।
- कंधों के रोग भुजाओं छाती और दिल से संबंधित रोगों के निराकरण में या विशेष उपयोगी अभ्यास है।
- स्पोर्ट्स में वॉलीबॉल बास्केटबॉल जूडो कराटे वालों को यह आसन अवश्य करना चाहिए।

सावधानी–

- भुजाएं एवं कलाइयां शरीर का भार सहने लायक होनी चाहिए।

- जिनके पैरों में बहुत अधिक बाल होते हैं उनके लिए हाथों को पिंडलियों एवं जांघों के बीच से निकलने की प्रक्रिया कठिन एवं कष्टप्रद हो सकती है हाथों में चिकना द्रव् लगाकर करने में सरलता होती है।

6.3 कुर्मासन्

गुल्फौ च वृषणस्याधो व्युत्क्रमेण समाहितौ।

ऋजुकायशिरोग्रीवं कूर्मासनमितीरितम्।। घेरण्ड संहिता 2/32।।

अर्थ–

दोनों अंडकोषों के नीचे दोनों एड़ियो को व्युत्क्रम में रखना और शरीर, सिर तथा ग्रीवा को सीधा करके बैठना कुर्मासन् कहलाता है।

व्याख्या कुर्म का अर्थ होता है कछुआ इस आसन में अपने शरीर की आकृति को कछुए की आकृति के सदृश बनाया जाता है।

विधि–

पैरों को सामने की ओर फैलाकर बैठ जाए पैरों को यथासंभव दूर दूर रखें एड़ियो को जमीन के संपर्क में रखते हुए घुटनों को थोड़ा सा मोड़ यह झुककर हाथों को घुटने के नीचे रखिए हथेलियों ऊपर या नीचे की ओर खुली रहे आगे झुके तथा भुजाओं को धीरे धीरे पैरों के नीचे सरकाकर आवश्यकता अनुसार घुटनों को थोड़ा सा मोड़ सकते हैं घुटनों के नीचे से हाथों को उतना ही ले जाए कि केहुनियाँ घुटनों के पीछे के भाग के निकट आ जाए पीठ की मांसपेशियों में तनाव ना आने दे ।ऐड़ियों को धीरे धीरे आगे खिसकाते हुए पैरों को यथासंभव सीधा करने का प्रयास करे शरीर भी अपने आप आगे झुकेगा। श्वास एवं शिथिलता के प्रति सजग रहते हुए शरीर को धीरे–धीरे आगे झुकाएं जब तक ललाट या ठुड्डी। पैरों के बीच जमीन का स्पर्श ना करने लगे किसी प्रकार का जोर न लगाए। भुजाओं को मोड़कर नितंबों के नीचे परस्पर बांध ले या अंतिम स्थिति है पूरे शरीर को शिथिल बनाएं फिर प्रारंभिक स्थिति में वापस आए।

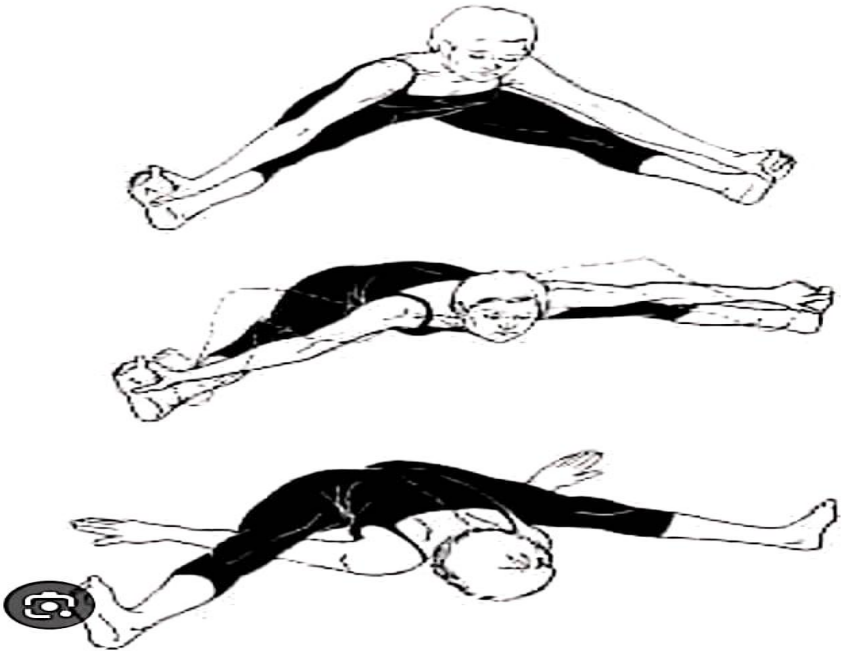

लाभ–

- कुर्मासन आमाशय के सभी अंगों को स्वस्थ बनाता है।
- मधुमेह एवं कब्ज जैसे रोगों के उपचार में सहायक होता है।
- सर दर्द एवं गर्दन दर्द का निवारण कर तथा स्नायु शमन कर मेरु दंड में रक्त संचार बढ़ाता है।
- मानसिक उत्तेजना को शांत करने के लिए मन को अंतर्मुखी बनाने के लिए और मेरुदंड को लचीला बनाने के लिए इसका अभ्यास किया जाता है।
- इस आसन के अभ्यास से आत्म संयम आंतरिक सुरक्षा तथा समर्पण की भावना जागृत होती है।
- जब योगी सब ओर से अपनी इंद्रियों को इंद्रियों के विषयों से उसी प्रकार समेट लेता है जिस प्रकार कछुआ अपने अंगों को समेट लेता है तब उस योगी की बुद्धि स्थिर होती है।

सावधानियां–

स्लिपडिस्क, साइटिका, हार्निया या दीर्घकालिक गठिया से पीड़ित व्यक्ति इस आसन का अभ्यास ना करें यदि मेरुदंड पर्याप्त लचीला हो तभी यह अभ्यास किया जाना चाहिए।

6.4 उत्तानकुर्मासन

कुक्कुटासनबन्धस्थं कराभ्यां धृतकन्धरम्।

पीठं कूर्मवदुत्तानमेतदुत्तनकूर्मकम्।। घेरण्ड संहिता 2/33।।

अर्थ–

कुक्कुटासन में कंधों को दोनों हाथों से पकड़कर कछुए के समान सीधा हो जाना उत्तान कूर्मासन कहलाता है।

विधि–

उत्तान कूर्मासन का अभ्यास पद्मासन में किया जाता है। पद्मासन में हाथों को जंघों और पिंडलियों के बीच से निकलकर कंधों को पकड़ते हैं और उसके बाद जमीन पर सीधे लेट जाते हैं यही उत्तान कूर्मासन कहलाता है।

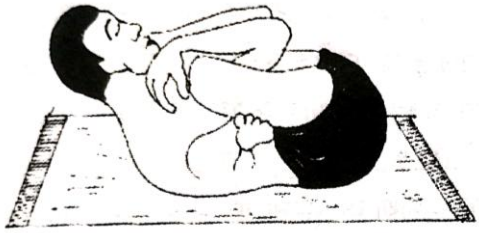

लाभ–

- इस आसन के लाभ कुक्कुटासन के लाभ के समान ही है अंतर इतना ही है कि इससे शरीर ज्यादा संकुचित हो जाता है, एक आकृति में बंद जाता है शरीर की संकुचित अवस्था में ही जब या सिर को नीचे रखते हैं और पिंडलियाँ केहुनियाँ के ऊपर रहती है तब सभी अंगों में दबाव की उत्पत्ति होती है।

- इस आसन को करने से पूरे शरीर में रक्त का संचार तीव्र गति से होता है विशेषकर मांसपेशियों में जमे हुए रक्त को हटाने के लिए इस आसन का अभ्यास किया जाना चाहिए

सावधानियां–

साइटिका, हार्नियां या दीर्घकालिक गठिया पीड़ित व्यक्ति इस आसन को अभ्यास न करें यदि मेरुदंड पर्याप्त लचीला हो तभी इसका अभ्यास किया जाना चाहिए।

6.5 मण्डुकासन

पृष्ठदेशे पादतलावड्.गुष्ठौ द्वौ च संस्पृशेत्।

जानुयुग्मं पुरस्कृत्य साध्येन्मण्डूकासनम्।। घेरण्ड संहिता 2/34।।

विधि–

दोनों पांवों को पृष्ठभाग में ले जाकर मिलायें और अंगूठे मिलाकर दोनों घुटनों को आगे रखें। इस प्रकार मण्डूकासन होता है।

अर्थ–

बज्र आसन में बैठकर घुटनों को यथासंभव दूर–दूर फैलाते हैं फिर पैरों एवं एड़ियों को इतना फैलाते हैं कि नितंब आरंभ से भूमि पर टिक जाए। पैरों की उंगलियों बाहर की ओर रहती है तथा पैरों का भीतरी भाग भूमि के संपर्क में रहता है यदि पैरों की उंगलियों को बाहर की ओर रखते हुए आसन में बैठना संभव ना हो तो उन्हें अंदर की ओर भी रख सकते हैं किंतु नितंब भूमि पर टिके रहने चाहिए हाथों को घुटनों के ऊपर रखे सिर एवं मेरुदंड को सीधा रखें आंखों को बंद रखें और पूरे शरीर का शिथिल बनाएं यह आसन मंडूक अर्थात मेंढक की भांति दिखने वाला आसन है।

लाभ –

पाचन तंत्र की प्रणाली को ठीक करता है अतः पेट के अंदर से उठने वाली दुर्गंध आदि रोगों को नष्ट करता है बुढ़ापे में कमर झुकने से रोकता है स्त्रियों के लिए यह अति लाभकारी है। जांघ नितंब और पीठ की अनावश्यक चर्बी कम करता है इस आसन के अभ्यास के बाद ताजगी प्राप्त होती है वीर्य की रक्षा होती है।

सावधानी पेट की विशेष बीमारी में यह अभ्यास ना करे।

6.6 उत्तान मण्डुकासन

मण्डुकासनमध्यस्थं कूर्पराभ्यां धृतं शिरः।

एतद्भेकवदुत्तानमेतदुत्तानमण्डुकम् ।। घेरण्ड संहिता 2/35।।

अर्थ–

मंडूकासन करके मस्तक को केहुनियों पर टिका लें और मेंढक के समान उत्तान हो जाए यह उत्तान मंडूकासन होगा।

विधि–

बज्र आसन में बैठे। धीरे–धीरे पीछे की ओर झुकते हुए सिर जमीन से स्पर्श कराएं और फिर कोहनी ऊपर टिका दें उत्तान मंडूकासन का अभ्यास बज्र आसन के सामान किया जाता है। दोनों जांघें एक साथ रहेगी या बज्र आसन है। उत्तान मंडूकासन में कमर को भी उठा दिया जाता है कमर को उठाने से शरीर का भार केवल घुटनों और सिर पर रहता है तथा इसमें पैर अलग–अलग रहते हैं।

लाभ–

- पृष्ठीय संस्थान पूर्णता खुलता हैं, जिससे फुफ्फुस अच्छी तरह फैल जाता है।

- यह आसन उदर प्रदेश, मेरुदंड, वक्षस्थल को संपूर्ण रूप से लाभ पहुंचाता है।
- यह आसन स्पॉण्डिलाइटिस, स्लिपडिस्क, साइटिका रोगों के निदान के लिए अच्छा है।

सावधानी–

- वापस मूल अवस्था (बज्र आसन की अवस्था) में आने के बाद ही पैरों को आगे फैलाएं अन्यथा घुटनों के जोड़ खिसक सकते हैं।
- साइटिका/तीव्र कमर दर्द, घुटने के दर्द, स्लिप डिस्क वाले व्यक्ति ध्यान पूर्वक करें।

6.7 नौकासन

इस आसन की अंतिम अवस्था में हमारे शरीर की आकृति नौका समान दिखाई देती है, इसी कारण इसे नौकासन कहते है।

विधि–

पीठ के बल लेट जाएं और हाथों को भी समानांतर रखें। पैरों, भंजाओं, धड़ व सिर को एक साथ जमीन से धीरे–धीरे ऊपर उठाएं, और अपने हाथों को पैर की अंगुलियों की ओर तानकर रखें। इस अवस्था में रुकें। अपने पेट की मांसपेशियों को संकुचित होने दे, किन्तु सांस लेते रहें। श्वास बाहर छोड़ते हुए आसन से बाहर आयें और विश्राम करें।

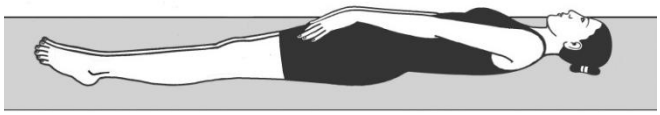

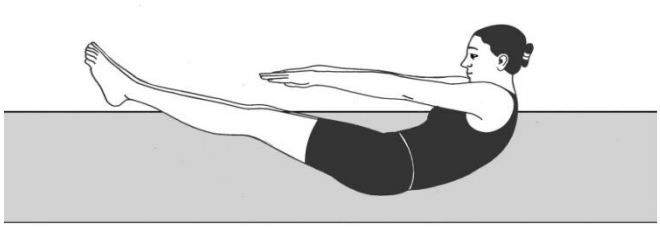

ध्यान–

स्वाधिष्ठान, मणिपुर एवं अनाहत चक्र पर

श्वासक्रम–

पहले श्वास ले और ऊपर उठते समय व अन्तिम स्थिति में एवं वापस आते समय अन्तः कुम्भक करें। इसके बाद श्वास छोड़े।

लाभ –

- पेट की मांसपेशियां मजबूत होती है और उनकी आन्तरिक मालिश होती है।
- पाचन क्रिया में सुधार होता है।
- जंघा से लेकर एड़ी तक मांसपेशयों में समुचित खिचांव होता है।
- मेरुदण्ड को मजबूत बनाता है, पेट की कृमियों को नाश करता है।
- वृक्क गुर्दो को क्रियाशील करता है, साथ ही थायराइड ग्रन्थि, प्रोस्टेट ग्रन्थि और आँतों को भी सक्रिय करता है।
- तनाव मुक्ति एवं आत्मविश्वास में वृद्धि होती है।
- अपने स्थान से हटी हुई नाभि को ठीक करता है।

6.8 पवनमुक्तासन

पवन शब्द का अर्थ वायु और मुक्त शब्द का अर्थ छोड़ना या मुक्त करना है। जैसा कि इस अभ्यास के नाम से ही पता चलता है यह आसन उदर या आंतो से वायु या वात बाहर निकालने में उपयोगी है।

अभ्यास विधि–

सर्वप्रथम पीठ के बल लम्बवत लेटना चाहिये। दोनों घुटनों को मोड़ते हुये जाँघों को वक्ष के ऊपर ले आएं। दोनों हाथों की अंगुलियों को आपस में गूंथते हुए पैरो को पकड़ लें। श्वास बाहर छोड़ते हुये सिर को तब तक ऊपर उठाएं जब तक कि ठुड्डी घुटनों से नही लग जाएं। कुछ समय तक इस स्थिति में रूके। श्वास लेते समय सिर को वापस जमीन पर ले आएं। श्वास बाहर छोड़ते समय पैरो को जमीन पर लें आएं। अभ्यास के अंत में शवासन में आराम करें।

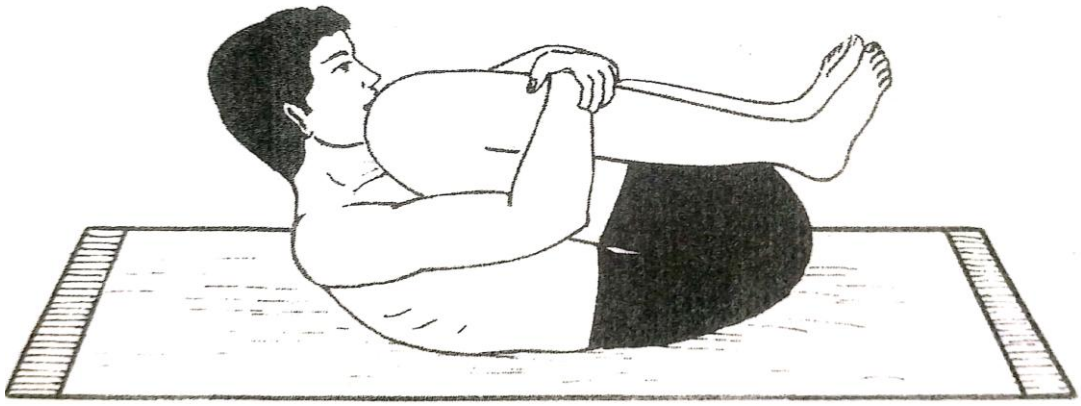

ध्यान–

पैरों की गतिविधि के अनुसार श्वास– प्रश्वास को एक लय में लाना चाहिये। घुटनों को ललाट से स्पर्श करते हुये यह अनुभव करना चाहिये कि कटि प्रदेश में खिंचाव हो रहा है, आँखे बंद रखनी चाहिये। ध्यान कटि प्रदेश पर होना चाहिये।

लाभ –

- कब्जियत दूर करता है, वात से राहत दिलाता है और उदर के फैलाव को कम करता है।
- पाचन क्रिया में भी सहायता करता है।
- गहरा आंतरिक दबाव डालता है, श्रोण और कटिक्षेत्र में मांसपेशियों, लिगामेंट्स और स्नायु की अति जटिल समस्याओं का निदान करता है और उनमें कसावट लाता है।
- यह पीठ की मांसपेशियों और मेरु के स्नायुओं को सुगठित करता है।
- नाम के अनुरूप अपान वायु को शरीर से निष्कासित करता है।
- सिर घूमना, मानसिक कमजोरी, सिर दर्द आदि रोगों में लाभकारी है।

सावधानियाँ –

उदर संबंधी व्याधि, हर्निया, साइटिका या तीव्र पीठ दर्द तथा गर्भावस्था के समय इस अभ्यास को न करें। हाईब्लडप्रेशर, स्लिपडिस्क, साइटिका वाले योग शिक्षक की देखरेख में करें।

6.9 सर्वांगासन

सर्व अंग और आसन अर्थात् सर्वांगासन। इस आसन को करने से सभी अंगो को व्यायाम मिलता है इसीलिए इसे सर्वांगासन कहते है।

अभ्यास विधि –

सर्वप्रथम पीठ के बल लेट जाइये। हाथ बगल में रहे तथा पैर सीधे। शरीर को ढीला छोड़ दे। अब दोनों पैरों को धीरे–धीरे उठाइए और तब तक उठाएं जब तक पैर बिल्कुल धड़ की सीध में न हो जाएँ। अब धड़ को दोनों हाथों से सहारा दें। यही सर्वांगासन है। ठीक इसी क्रम में वापस अपनी पूर्वावस्था में आते है।

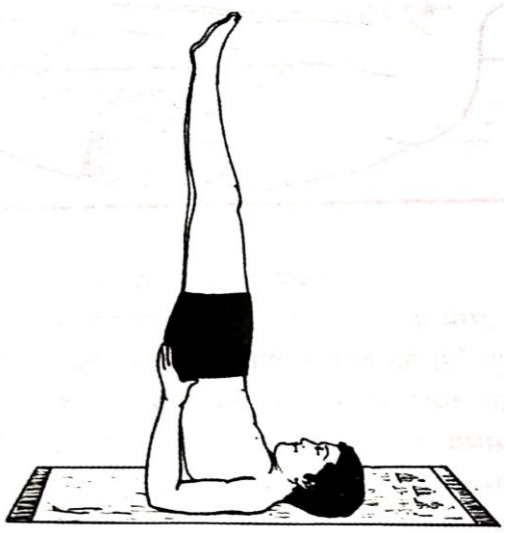

लाभ–

- गले की ऊपर के अवयवों या अंगो को नीरोगता तथा पुष्टता प्रदान करता है।
- हर्निया, कब्ज, मंदाग्नि, प्लीहा तथा यकृत दोष में लाभकारी है।
- हृदय को विश्राम मिलता है तथा शक्तिशाली बनता है।
- रक्त शुद्ध होता है तथा वीर्य दोष दूर करता है।
- थायराइड ग्रन्थि को स्वस्थ बनाता है।
- गर्भाशय सम्बन्धी रोगों में विशेष लाभकारी है।

सावधानियाँ–

- बढ़ी हुयी थायराइड, पित्ताशय तथा सर्वाइकल स्पॉन्डिलाइटिस, स्लिप डिस्क के रोगी न करें।

- जिन व्यक्तियों को आँख, कान, नाक, तथा हृदय रोग हो अथवा जिसका रक्तचाप अधिक रहता हो वह इस आसन को न करें।

6.10 मत्स्यासन

मुक्तपद्मासनं कृत्वा उत्तानशयनं चरेत्।

कूर्पराभ्यां शिरो वेष्ट्यं रोगघ्नं मात्स्यमासनम्।। घेरण्ड संहिता 2/22।।

अर्थ–

मुक्त पद्मासन की स्थिति में हाथों की केहुनियों से सिर को लपेट लें और भूमि पर चित्त लेट जाए या रोगों को नष्ट करने वाला आसन कहलाता है

विधि–

- पद्मासन में बैठ जाइये।
- पीठ के बल लेट ने के लिये धीरे से कुहनियों का सहारा लीजिए।
- अब पूर्णतः पीठ के बल लेट जाइये।
- दोनों कुहनियों या हथेलियों का सहारा लेकर सिर को पीछे मोड़कर सिर के मध्य का भाग जमीन पर रखलें।
- दोनों हाथों से की तर्जनी से पैरों के अंगूठे पकड़िए तथा कुहनियों को जमीन पर लगाइये।

- वापस आते समय पहले पैर के अंगूठे छोड़िए हाथों का सहारा लेकर सिर को स्थिति में ले आइये।

- केहुनियों का सहारा लेकर पद्मासन में बैठ जाइये।

लाभ–

- सर्वांगासन के पूरक के रूप में सर्वांगासन के तुरंत बाद इस आसन का अभ्यास किया जाना चाहिये। ऐसा करने से सर्वांगासन द्वारा होने वाले लाभ और अधिक अंश में प्राप्त होते हैं।

- हृदय को बल मिलता है, फेफड़े मजबूत होते हैं। श्वास– स्वास्थ्य संबंधी रोग के लिए या हितकारी औषधि जैसा है।

- मेरुदंड कमर पीठ एवं जांघों की मांसपेशियों को मजबूत करता है।

- सर्वाइकल और स्पॉन्डिलाइटिस में बहुत आराम मिलता है। थॉयराइड ग्रंथि को ठीक करता है।

- पेट के सभी रोगों के लिए हितकर है ,खूनी बवासीर को दूर करता है।

टिप्पणी–

यह क्रिया पूर्ण नियंत्रण एवं सावधानी के साथ करें क्योंकि अटका झटका लगने पर शरीर को क्षति पहुंच सकती है। गर्दन झटका देकर ना मोड़े। मेरुदंड व पीठ दर्द के रोगी , गर्भवती महिलाएं एवं साइटिका के रोगी इस आसन को शारीरिक अवस्था का ध्यान रखकर क्रम पूर्वक करे।

6.11 शवासन

उत्तानं शववत् भूमौ शयनं तु शवासनम्।

शवासनं श्रमहरं चित्तविश्रान्तिकारणम्।। घेरण्ड संहिता 2/20।।

अर्थ–

मृतक के सामान अपने पूरे शरीर को ढीला कर के धरती पर लेट जाएं। यह शवासन श्रम को दूर करने वाला और चित्त को संतोष देने वाला है।

शव का अर्थ मृत शरीर है या आसन करते समय शरीर निशक्त हो जाता है इसलिए इस आसन का नाम मृतआसन हैं।

विधि–

पीठ के बल सीधे आराम से लेट जाएं दोनों पैरों में लगभग डेढ़ फिट अंतर लाइए हाथों को शरीर से 6 इंच अलग हटाकर सीधे जमीन पर रखिए हथेली आसमान की ओर रहेगी अंगुलिया थोड़ी मोड़ी रहेंगे आंखें बंद रहेंगी कुछ देर बाद वापस आइए अब धीरे–धीरे सांस लें और छोड़ें पूरे शरीर में शक्ति के प्रभाव का अनुभव किया जा सकता है उसे लगभग 5 से 10 मिनट तक करें ।

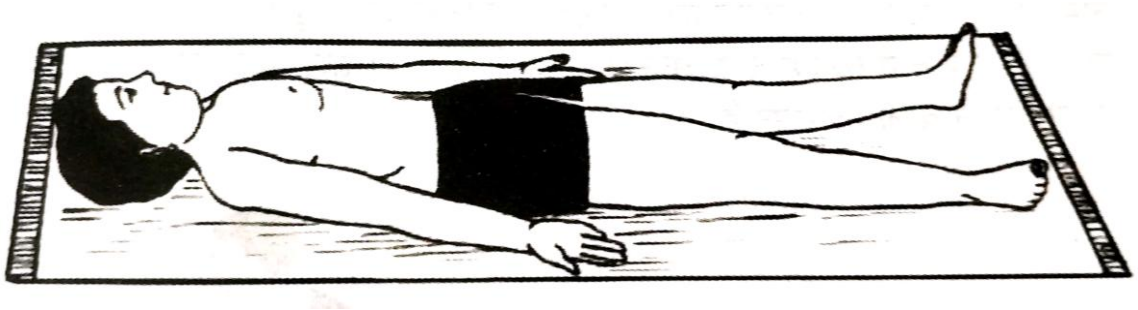

लाभ– यह आसन अन्य आसनों के तुरंत बाद किया जाता है जिससे थकावट दूर हो जाती है।

- अनिद्रा के रोगी इसका अभ्यास कर पुण्य लाभ प्राप्त कर सकते हैं।
- तनाव ग्रस्त व्यक्ति को या आसन अद्भुत शांति प्रदान करता है।
- यह उच्च रक्तचाप तथा हृदय के रोगों की में अत्यंत लाभकारी हैं।
- यह आसन संपूर्ण मानव उसका एक संस्थान का तनाव मुक्त करता है।
- जब शरीर पूरी तरह विश्राम की स्थिति में आ जाता है तब मन की अवस्था में वृद्धि होती है जिससे प्रत्याहार की अवस्था आती है।

सावधानियां :–

जिन्हें डॉक्टर ने किसी कारणवश पीठ के बल सोने से मना किया वो इसे ना करें।

6.12 शीर्षासन

इस आसन में सिर के बल उल्टा खड़ा होना होता है इसलिये इसे शीर्षासान कहते है।

अभ्यास विधि –

सिर को सामने की तरफ मोड़ते हुए कंबल पर सिर के अग्रभाग का ऊपरी तल टिकाएँ। दोनों हाथो की अंगुलियां को एक दूसरे में फंसाकर सिर के समीप घेरा बनाते हुये रखे। अब क्रमशः सिर की तरफ वजन देते हुये कमर को उठाएँ (ऐसी अवस्था में शरीर का आया वजन सिर की तरफ व आधावजन पैरो की तरफ हो जाएगा) एवं इसी क्रम में अब पूरा संतुलन बनाते हुए शरीर का पूरा भार सिर के अग्रभाग पर रखने की कोशिश करते हुये दोनों घुटनों को ऊपर उठाएँ और धीरे–धीरे एक पैर को सीधे आकाश की तरफ तान दे व दूसरा पैर भी सन्तुलन बनाते हुये ऊपर की तरफ करें। यह अवस्था शीर्षासन कहलाती है। अनुकूलतानुसार कुछ देर सके। मूल स्थिति में आते समय वापस घुटनों को मोड़े, कमर के हिस्से को झुकाएँ एवं वापस पैरो को जमीन पर रखें।

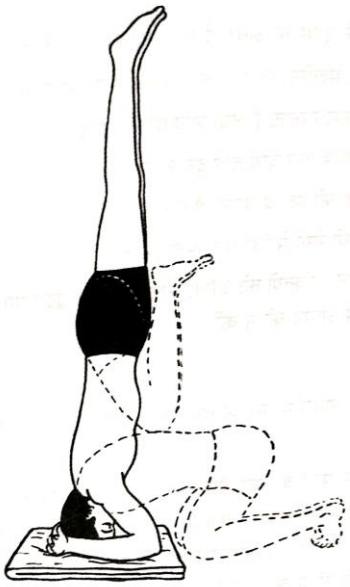

स्मरण शक्ति एकाग्रता, उत्साह, स्फूर्ति, निडरता, आत्मविश्वास और धैर्य बढ़ता है।

लाभ –

- यह आसन शरीर का कायाकल्प करता है।
- मस्तिष्क में शुद्ध एवं स्वस्थ रक्त प्रवाहित होने से मानसिक दुर्बलता और मस्तिष्क सम्बन्धी रोगों में लाभ होता है।
- इस आसन से चेहरे की चमक, ओज तेज बढ़ता है।
- बालों का असमय सफेद होना, झड़ना दूर होता है।

- नेत्र रोग दूर होते है।
- हर्निया, कब्ज, मंदाग्नि, प्लीहा तथा यकृत दोष में लाभकारी है।
- हृदय को विश्राम मिलता है तथा शक्तिशाली बनता है।
- रक्त शुद्ध होता है तथा वीर्य दोष दूर होता है।
- थायराइड ग्रन्थि को स्वस्थ बनाता है।
- गर्भाशय सम्बन्धी रोगो में विशेष लाभदायक है।

सावधानियाँ–

- जिन व्यक्तियों को ब्लड प्रेशर की शिकायत, आँख सम्बन्धी बीमारी, गर्दन में कोई समस्या हो इस आसन को नहीं करना चाहिये।
- यदि आप पूर्णतः स्वस्थ्य नहीं है तो इस आसन के अभ्यास के पूर्व किसी योग शिक्षक से परामर्श अवश्य करें।

6.13 शलभासन

अध्यास्त शेते करयुग्म वक्ष आलम्ब्य भूमि करयोस्तलाभ्याम्।

पादौ च शून्ये च वितस्ति चोर्ध्य वदन्ति पीठं शलभं मुनीन्द्रा।। घेरण्ड संहिता 2/39।।

अर्थ–

जमीन पर पेट के बल लेट जाना है मुख जमीन की और रहेगा दोनों हाथों को छाती के बगल में रखना है हथेलियां जमीन पर अच्छी तरह टिकी रहे इस अवस्था में अपने पैरों को ऊपर उठाना मुनीन्द्रों ने इसे शलभासन कहा है।

'शलभ' इस संस्कृत शब्द का अर्थ है टिड्डी। इस आसन की अंतिम स्थिति में शरीर की आकृ ति टिड्डी जैसी हो जाती है, अतः इसे शलभासन कहा जाता है।

विधि–

जमीन पर पेट के बल लेट जाइए दोनों पैर मिले रहेंगे पैर की उंगलियों पीछे तलवे आकाश की ओर हाथ बगल में सटे हुए सीधे पीछे की ओर अंगुलियां मिली हुई माथा जमीन पर लगा रहेगा श्वास अंदर खींचें घुटनों को मोड़े बिना पैरों को 6 इंच ऊपर उठाएं ऐसा अनुभव करें कि जैसे पैरों को खींच रहा है जैसे जैसे लचीलापन बढ़ेगा पैरों को और ऊपर उठाया जा सकता है पैरों को बिना खींचे, जब

तक आरामदायक स्थिति में रह सके स्थिति में रहे अथवा चार से पांच लंबी गहरी सांसें लेने तक करें सांस बाहर छोड़ते हुए धीरे–धीरे पैरों को जमीन पर ले जाए इस स्थिति में लेट जाए।

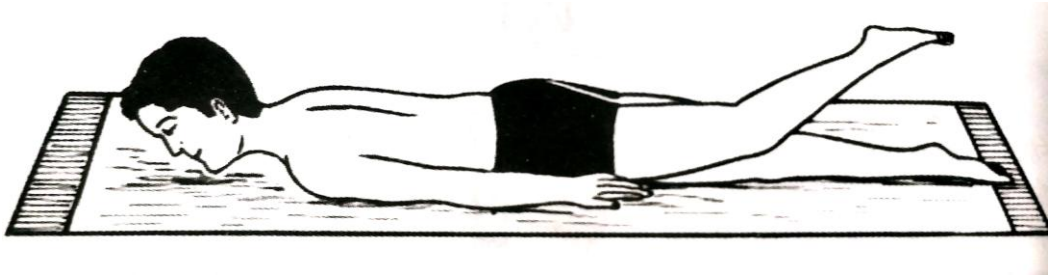

लाभ–

- भुजाओं और कंधों को मजबूत बनाता है।
- साइटिका और पीठ के निचले हिस्से के पीड़ा निवारण में सहायक और स्लिप डिस्क प्रारंभिक अवस्था में भी उपयोगी।
- लीवर सहित पेट की आंतों को लाभ पहुंचाता है पाचन सहायता करता है।
- नितंबों की मांसपेशियों को सुरक्षित बनाता है।
- शलाभासन पूरे स्वैच्छिक तंत्रिका तंत्र को विशेषकर परानुकंपी निःस्राव को उद्दीप्त करता है।
- इस आसन के नियमित अभ्यास से नाभि अपनी जगह रहती है।
- इससे भूख बढ़ती है अब पेट के रोग जैसे गैस, भूख ना लगना, अपच पेट में गड़गड़ाहट होना आदि दूर होते हैं।
- इससे जलोदर रोग(propsy) ठीक हो जाता है और भंगदर (fistal) रोग मे भी लाभ होता है।

सावधानियां–

- हृदय रोगियों को इस आसन का अभ्यास करने से बचना चाहिए।
- उच्च रक्तचाप, पेप्टिक अल्सर एवं हार्नियां रोग से पीड़ित व्यक्ति को यह नहीं करना चाहियें।

- पेट के निचले हिस्से में अधिक दर्द होने पर सावधानी पूर्वक अभ्यास करना चाहिये।
- कमजोर रीढ़ के व्यक्तियों ने केवल अर्धशलभासन करना चाहिये तथा गर्भवती महिलाएं भी इसे न करें।

6.14 भुजंगासन

अङ्.गुष्ठनाभिपर्यन्तमधौभूमौ च विन्यसेत्।

धरां करतलाभ्यां धृत्वोर्ध्वशीर्ष फणीव हि।। घेरण्ड संहिता 2/42।।

देहाग्निर्वर्द्धते नित्यं सर्वरोगविनाशनम्।

जागर्ति भुजन्गीदेवी भुजन्ग़सनसाधनात्।। घेरण्ड संहिता 2/43।।

अर्थ–

पांवों के अंगूठों से नाभि पर्यंत शरीर को धरती पर रखें और हथेलियों को भी धरती पर टिका कर सिर को सर्प के सामान ऊंचा उठा ले यह भुजंगासन कहलाता है यह आसन शरीरस्थ अग्नि को बढ़ाने वाला और सब रोगों का नाशक है इस के साधन से कुंडलिनी शक्ति का जागरण होता है।

संस्कृत शब्द भुजंग का अर्थ होता है सर्प। इस आसन के करने से फण उठाए हुए सर्प के आकार की सी स्थिति बनती है अतः इसे भुजंगासन कहलाता है।

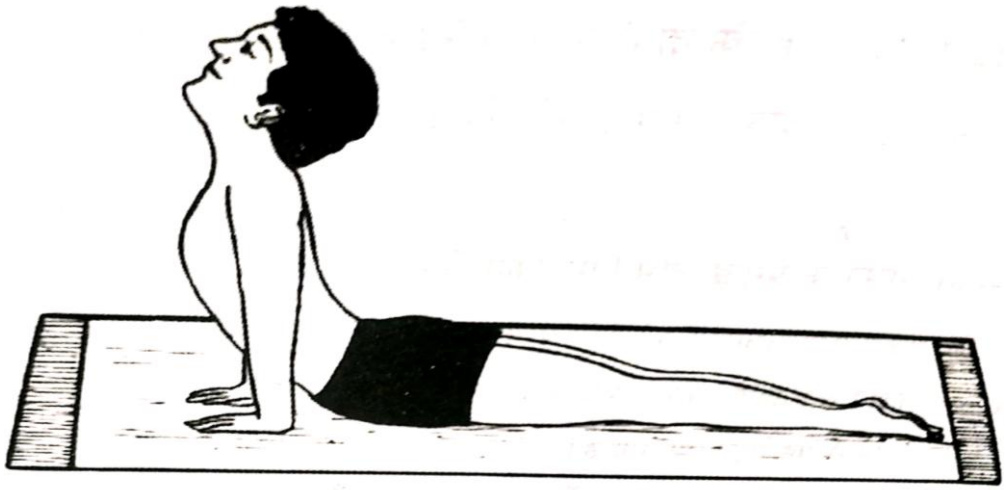

विधि–

- जमीन पर पेट के बल लेट जाइए दोनों पैर मिलाकर पैर की अंगुलियों पीछे तलवे आकाश की ओर, हाथ अंगूठा बगल से सटे हुए सीधे पीछे की और अंगुलियों मिली हुई है तलुएं आसमान की ओर माथा जमीन से लगा रहेगा।
- हाथों को कुहनियों से मोड़ियें तथा हथेलियों को कंधे के पास अपनी छाती के करीब बगल से लगाइए।
- माथा आगे लाइये, ठोड़ी जमीन से लगाइयें, दृष्टि सामने की ओर।
- ठोड़ी उठाइए सिर को पीछे की ओर जितना मोड़ सके और यह नाभि से ऊपर वाले शरीर के भाग को उठाइए, बल्कि नाभि को ना उठावें ।
- थोड़ी देर शुरू किए फिर धीरे से नाभि के ऊपर का प्रदेश नीचे करिए छाती कंधे ठोड़ी और अंत में गर्दन नीचे लाइए तथा माथा जमीन पर टिका दें।

लाभ–

- इस आसन से कमर दर्द दूर होता है और कमर के दूसरे रोगों से लाभ मिलता है इसमें रीड की हड्डी लचीली बनी रहती है।
- पेट के रोग जैसे कब्ज अपच वायु विकार दूर होते हैं और भूख बढ़ती है इसका प्रभाव शरीर की मांसपेशियों में गहराई से होता है।
- मोटापा दूर होता है शरीर छरहरा और सुडोल होता है।
- लीवर, किडनी, नाभि क्षेत्र के सभी अंगों को क्रियाशील बनाता है।

सावधानियां–

- हार्निया के रोगी इस आसन का अभ्यास नहीं करना चाहिये।
- जो लोग हर्निया, अल्सर, आंते संबंधित बीमारी, रीढ़ की समस्या आदि से पीड़ित हो उन्हें यह आसन विशेषज्ञ के मार्गदर्शन में ही करना चाहियें।
- जिन लोगों का उधर संबंधी सर्जरी हुई या कलाई हाथ आदि में फ्रैक्चर हो विशेषज्ञ के मार्गदर्शन में करना चाहिए।
- गर्भवती स्त्री ना करें।

6.15 धनुरासन

प्रसार्य पादौ भुवि दण्डरूपौं करौ च पृष्ठे धृतपादयुग्यम्।

कृत्वा धनुर्वत्परिवर्तितान्गं निगद्यते वै धनुरासनं तत्।। घेरण्ड संहिता 2/19।।

अर्थ–

दोनों पैरों को भूमि पर फैला दें दोनों हाथों को पीठ की ओर कर दोनों चरणों को पकड़ ले तथा धनुष के आकार में शरीर कर ले इसकी आकृति धनुष के समान होती है इसलिए इसे धनुरासन कहते हैं।

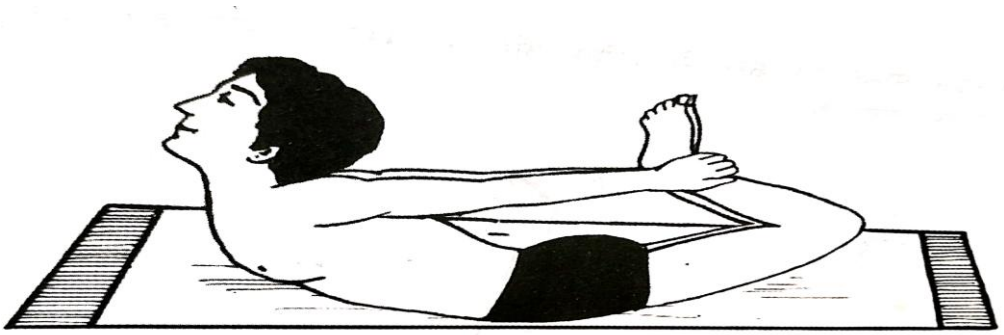

विधि–

पीठ के बल लेट जाइए पैर सीधे मेल हुए हैं, हाथ बगल में जांघों के पास सीधे रखे रहेंगे ठोड़ी जमीन पर लगी रहेगी। पैरों को घुटने से मोड़कर जांघों के ऊपर ले आइये, घुटने मिले रहेंगे। दोनों हाथों को पीछे ले जाइये, हाथ के अंगूठे व तर्जनी से दोनों पैरों के अंगूठे पकड़ लीजिये।(दाहिने से दाहिने पैर का तथा बाएं से बाएं पैर का) पैरों को थोड़ा ऊपर करके उठाइये, सिर व छाती भी उठाइयें। अंगूठे पकड़े हुए पैरों को अपने कानों की ओर खींचिए तथा पैरों के अंगूठे अपने कानों तक ले आइयें। दृष्टि सामने रहेगी। वापस आते समय हाथ ढीले कीजिये, पैर पीछे ले जाइयें, जांघे पूरी जमीन से लग जाने के बाद अंगूठे छोड़िये तथा पैर व हाथ पूर्व स्थिति में लाइये।

लाभ–

- यह मेरुदंड तथा पीठ की मांसपेशियों को लचीला बनाता है तथा इससे स्नायु दुर्बलता दूर होती है।

- यह कब्ज तथा पित्त विकार दूर करने में सहायक है।
- जिन्हें मेरुदंड में दर्द की शिकायत हो वह इसे ना करें।
- स्त्रियों के प्रजनन तंत्र को कार्यशील बनाता है व और भी कई बीमारियों को दूर करता है।
- इसका अभ्यास मेरुदंड से संबंधित रोगों जैसे स्लिप डिक्स और स्पॉण्डिलाइटिस या साइटिका के उपचार के लिए कराया जाता।

सावधानियां–

- आतें, किडनी व हार्नियां आदि रोग बदले वाले इस आसन को ना करें, एवं रक्तचाप और हृदय विकार वाले भी ना करें।
- यह आसन खाली पेट करें, क्योंकि पूरा जोर पेट पर भी पड़ता है।
- अंगूठे का जबर्दस्ती कान तक लाने का प्रयास न करें।
- उपरोक्त धनुरासन कहने के पूर्व सरल धनुरासन का अभ्यास आवश्यक है।

6.16 मकरासन

अध्यास्य शेते हृदय निधाय, भूमौ च पादौ प्रसार्यमाणौ।

शिरश्च धृत्वा करदण्डयुग्मे देहाग्निकारं मकरासनं तत्।। घेरण्ड संहिता 2/40।।

अर्थ–

पेट के बल लेटकर हाथों को ठुड्डी में टिका देते हैं। केहुनियाँ जमीन पर और चेहरा दोनों हथेलियों के बीच में रहता हैं। इसी अवस्था में अपने शरीर को ढीला छोड़ देते है। यह शरीरस्थ अग्नि को तीव्र करने वाला मकरासन है।

विधि–

पेट के बल सीधा लेट कर सिर और कंधो को ऊपर उठाते तथा केहुनियों को जमीन पर रखते हुए ठुड्डी को हथेलियों पर टिकाते हैं मेरुदंड को अधिक चपाकर स्थिति में करने के लिए कुहानियों को मिलाकर रखें यदि गर्दन पर अतिरिक्त तनाव पड़ा हो तो कुहनियों को थोड़ा फैला लें। आंखों को बंद कर पूरे शरीर को शिथिल बनायें।

लाभ –

- गहरा विश्राम प्रदान करता है।
- पैरासिटिक तंत्रिका तंत्र को सक्रिय करता है।
- शरीर में तनाव को कम करता है, तथा पुनः ऊर्जा निर्माण करने में सहायता करता है, लाभ शवासन के समान है।
- यह छाती और फेफड़ों का विस्तार करता है।
- गले को साफ करता है, क्योंकि अभ्यास के समय जब हम गले को ऊपर करते हैं, तो श्वसन नही एक सीधी रेखा में हो जाती है।
- जमा हुआ कफ साफ हो जाता है और बंद मार्ग खुल जाता है।

6.17 सारांश

इस इकाई में आसन के सम्पूर्ण अध्ययन के पश्चात् हमें ज्ञात हुआ है कि योगासन विद्या हमारे ऋषि मुनियों द्वारा अन्वेशित एक अमूल्य सम्पत्ति तथा एक महान वरदान और सुखी जीवन जीने की श्रेष्ठ कला है। जिसके द्वारा मनुष्य शरीर में अखण्ड स्वास्थ्य, इद्रियों पर अखण्ड नियंत्रण अन्तःकरण में अखण्ड शक्तियाँ, हृदय में अखण्ड प्रेम और मन में अखण्ड शान्ति प्राप्त कर आनन्द पूर्वक जीवन व्यतीत कर अन्ततोगत्वा परमात्मा में लीन हो सकता है। निष्कर्षतः आसन उसे कहेंगे। जिसमें साधक के मन में ब्रह्म विचार सहज एवं निरन्तर प्रवाहित होता रहता है।

6.18 अभ्यास प्रश्न

1. कुर्मासन एवं उत्तान कुर्मासन की विधि, लाभ एवं सावधानियों का वर्णन कीजिए।
2. सर्वाआसन एवं मत्स्यासन की विधि लाभ एवं सावधानियों का वर्णन कीजिये।
3. भुजंगासन एवं शलभासन की विधि, लाभ, सावधानियों का वर्णन कीजिये।
4. शवासन एवं नौकासन की विधि, लाभ, सावधानियों का वर्णन कीजिये।

5. धनुरासन एवं मकासन की विधि, लाभ, सावधानियों का वर्णन कीजिये।

6.19 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. घेरण्ड संहिता – स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती , योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर बिहार, भारत
2. आसन , प्राणायाम, मुद्रा बंध – स्वामी सत्यानन्द सरस्वती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर बिहार, भारत
3. योगासन विज्ञान – धीरेन्द्र ब्रम्हचारी, धीरेन्द्र योग प्रकाशन, नई दिल्ली
4. हठयोग प्रदीपिका– स्वात्मारामकृत संस्करणकर्ता – स्वामी दिगम्बर जी , कैवल्य धाम लोनावाला
5. योग विज्ञान – स्वामी विज्ञानान्द सरस्वती, योग निकेतन ट्रस्ट मुनि की रेती, ऋषिकेश, उत्तराखण्ड

तृतीय खण्ड परिचय

हठ ग्रन्थों में प्राणायाम

परास्नातक योग कार्यक्रम के अन्तर्गत हठयोग के सिद्धन्त के तृतीय खण्ड हठ ग्रन्थों में प्राणायाम को तीन इकाईयों में विभाजित किया गया है।

इकाई. 07

प्राणायाम की अवधारणा, प्राणायाम की अवस्थायें और चरण।

हठयोग साधना में प्राणायाम करने के लिये पूर्व अपेक्षाएं।

योग ग्रन्थों में वर्णित प्राणायाम।

इकाई. 08

नाड़ी शोधन प्राणायाम, सहित प्राणायाम (सगर्भ प्राणायाम, निगर्भ प्राणायाम)

उज्जायी प्राणायाम, भ्रामरी प्राणायाम, मूर्च्छा प्राणायाम, प्लाविनी प्राणायाम।

इकाई. 09

शीतली प्राणायाम, सीत्कारी प्राणायाम, भस्त्रिका प्राणायाम, सूर्यभेदी प्राणायाम, केवली प्राणायाम।

अतः इन समस्त इकाईयों के माध्यम से आप प्राणायाम की विधि, लाभ, सावधानियाँ तथा अर्थ उद्देश्य, महत्व और शारीरिक और मानसिक आध्यात्मिक रूप से स्वस्थ्य रहने की कला को समझ सकेंगे– जो जीवन के परम आनन्द की प्रप्ति कर सकेंगे।

इकाई.07 –प्राणायाम की अवधारणा, प्राणायाम की अवस्थायें और चरण।
हठयोग साधना में प्राणायाम करने के लिये पूर्व अपेक्षाएं।
योग ग्रन्थों में वर्णित प्राणायाम।

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 प्राणायाम की अवधारणा,

7.3 प्राण

- 7.3.1 पंचप्राण– प्राणवायु, अपानवायु, समानवायु, उदानवायु, ध्यानवायु
- 7.3.2 उपप्राण
- 7.3.3 प्राण–दर्शन तालिका
- 7.3.4 प्राणायाम के उद्देश्य

7.4 प्राणवाही नाड़ियाँ

- 7.4.1 प्राणायाम के साधन : श्वसन क्रियाएं
- 7.4.2 उदर श्वसन
- 7.4.3 यौगिक अभ्यास

7.5 प्राणायाम की अवस्थाएं

- 7.5.1 प्राणायाम के अभ्यास में सावधानियाँ
- 7.5.2 प्राणायाम के सामान्य लाभ
- 7.5.3 प्राणायाम की तैयारी

7.6 विभिन्न यौगिक ग्रन्थों में वर्णित प्राणायाम के प्रकार

- 7.6.1 हठयोग प्रदीपिका के अनुसार
- 7.6.2 घेरण्ड संहिता के अनुसार

7.7 सारांश

7.8 अभ्यास प्रश्न

7.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

7.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात प्राण के बारे में जान सकेंगे।

प्राण के भेदों पर विस्तार से चर्चा कर सकेंगें।

- प्राणायाम की अर्थ एवं परिभाषा एवं उसके प्रकारों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगें।
- प्राणवाही नाड़ियों के बारे में जान सकेंगे।
- प्राणायाम के प्रमुख प्रकारों महत्व तथा लाभ का विवरण प्रस्तुत कर सकेंगें।
- प्राणायामों के उद्देश्य के बारें में जानकारी प्राप्त कर सकेंगें।
- प्राण के भेदों पर विस्तार से चर्चा कर सकेंगे।

7.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आपने अष्टांग योग के तृतीय चरण योगासन के विषय में जानकारी प्राप्त की। अब इस इकाई में प्राण का अर्थ, परिभाषा एवं भेद के बारे में बताया गया है। प्राणायाम वैदिक काल में ही साधना की उच्चतम अवस्था तक पहुँचने का एक महत्वपूर्ण मार्ग रहा है, परन्तु इसके चिकित्सकीय प्रभावों से भी हम अनभिज्ञ नही रहे। प्राचीन काल में मनीषियों ने अपने अथक शोधों द्वारा यह जानकारी प्राप्त की कि प्राणायाम एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा हम शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक उन्नति कर सकते है। इसके साथ प्राणायाम हमारे समस्त रोगों को दूर करता है ऐसा हठयोग के ग्रन्थों में वर्णन मिलता है।

7.2 प्राणायाम की अवधारणा

प्राणायाम का अर्थ –

प्राणायाम दो शब्दों से मिलकर बना है प्राण+आयम प्राणायाम। प्राण का अर्थ जीवनी शक्ति और आयाम का तात्पर्य है नियमन इस प्रकार प्राणायामक अर्थ हुआ– जीवनी शक्ति का नियमन। जीवनी शक्ति कार्य करने की शक्ति

महर्षि घेरण्ड के अनुसार–

महर्षि पतंजलि के अनुसार –

तस्मिन्सति श्वासप्रश्वास योर्गति विच्छेदः प्राणायामः ।। प.यो.सू. 2/49।।

आसन के सिद्ध हो जाने के बार श्वास प्रश्वास की गति को नियंत्रत करने को प्राणायाम कहते है।

ऋग्वेद में प्राणायाम का वर्णन इस प्रकार है–

द्वाविमों वातौवात आ सिन्धोरा परावतः।

दक्षे ते अन्य आवातु षडन्यो वातु यद्रपः।।

प्राण और अपान नाम की वायु हमारे शरीर में चल रही है। इनमें से एक तो हृदय तक चलती है और दूसरी बाहर के वायुमण्डल तक। प्राणवायु तो आरोग्य, बल, उत्साह, जीवन को देने वाली तथा अपानवायु, निर्बलता व रोग को बाहर ले जानी वाली है।

याज्ञवल्क्य जी के अनुसार –

प्राणापानसमायोगः प्राणापानइतोरितः।

प्राणायाम इति प्रोक्तो रेचकपूरक कुंभकैः।। याज्ञतल्क्य 6/2।।

अर्थात प्राण और अपान वायु के मिलन को प्राणायाम कहते है। प्राणायाम कहने से रेचक, पूरक और कुंभक की क्रिया समझी जाती है।

गीता के अनुसार प्राणायाम की परिभाषा–

अपाने जुह्वहूति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे।

प्राणाआनगती रुद्ववा प्राणायामपरायणाः ।। 4/29।।

अर्थात

1. अपानवायु में प्राण को मिलना (पूरक)
2. प्राण में अपान का मेल करना (रेचक)
3. प्राण अपान दोनों की गति को रोकना (केवल कुम्भक)

अभ्यास की दृष्टि से प्राणायाम के कई प्रकार है। विभिन्न, प्राणायामों के निरन्तर अभ्यास से उन सभी प्राणिक ऊर्जाओं का नियंत्रण, नियमन, विस्तार, केन्द्रीकरण एवं संयुक्त ऊर्जा का ऊर्ध्वगमन होता है। चार माध्यम से हम प्राणिक ऊर्जा को ग्रहण कहते है।

1. नासिका में नाड़ियों के अन्तिम छोरो से

2. कण्ठ में नाड़ियो के अन्तिम छोरों से

3. फेफड़ो में नाड़ियों के अन्तिम छोरों से तथा

4. रोम कूपों द्वारा। कुंभक की अवस्था को शनैः शनैः बढ़ाया जाता है

अतः प्राण की ग्रहणात्मक शक्ति को बढ़ाने के दो सूत्र है –

1. कुम्भकी की अवस्था
2. नाड़ियों की शुद्धि

नाड़ी शुद्धि च ततः पश्चात्प्राणायामं या साधयेत्। घेरण्ड संहिता नाड़ियों की शुद्धि के लिये प्राणायाम करना चाहिये।

हठयोग प्रदीपिका के अनुसार–

चले वाते चलं चित्तं निश्चले निश्चलं भवेत्।

योगी स्थाणुत्वमाप्नोति ततो वायुं निरोधयेत् ।। हठप्रदीपिका 2/2

वायु के चलायमान होने से मन (चित्त) भी चलायमान होता है और वायु के स्थिर (निश्चल, चंचलता) रहित हो जाने से चित्त (मन) भी स्थिर हो जाता है।

प्राणवायु और मन, इन दोनों के स्थिर होने से योगी स्वाणुरूप को प्राप्त होता है तथा साधक स्थिर और दीर्घकाल तक जीता है। अतः योगी प्राणु वायु का निरोध करें।

यावद्वायुः स्थितो देहे तावज्जीवनमुच्यते।

मरणं तस्य निष्क्रांन्तिस्ततो वायुं निरोधयेत्।। हठप्रदीपिका 2/3

तक शरीर में वायु विद्यमान है तब तक ही जीवन कहलाता है उसका शरीर से निकल जाना ही मरण है अतः प्राणायाम का अभ्यास करें।

आसनों के अभ्यास से आप स्थूल शरीर को वश में कर सकते है जबकि प्राणायाम के अभ्यास से आप सूक्ष्म शरीर को वश में कर सकते है। श्वास तथा प्राणिक नाड़ियों के बीच गहरा सम्बन्ध है अतः श्वास के नियंत्रण से प्राणिक प्रवाहों पर भी नियंत्रण हो जाता है।

जिस प्रकार सोने को गरम भट्टी ने तपाकर उसकी गन्दगी को दूर किया जाता है, ठीक उसी तरह योग साधक, प्राणायाम के व्यवहार से अपने शरीर तथा इन्द्रियों के मल, विकारों का निवारण करता है।

7.3 प्राण

प्राण का अभिप्राय उसके शब्द के अर्थ से प्राप्त होता है– प्राण शब्द की व्युत्पत्ति 'प्र' उपसर्ग पूर्वक अन् (प्राणेन्) धातु से होती है। 'अन' धातु का अर्थ जीवन शक्ति चेतना वाचक है, चेतना की जीवनी शक्ति को संकल्प बल के रूप में मापा गया है। अतः प्राण शब्द का अर्थ चेतना शक्ति है।

प्राण विश्व में अभिव्यक्त सभी शक्तियों का योग है। ताप, प्रकाश, विद्युत, चुम्बकत्व– ये सभी प्राण की अभिव्यक्तियाँ है। सारी भौतिक तथा मानसिक शक्तियाँ प्राण की ही श्रेणी में आती है। यह वह शक्ति है जो हमारी सप्ता के उच्चतम से निम्नतम स्तर तक प्रत्येक तल में विद्यमान है। जो भी कुछ भी गतिशील अथवा कार्यशील है अथवा जिसमें जीवन है, वह सभी प्राण के ही स्वरूप में अभिव्यक्त ही प्राण एक ऐसी ऊर्जा है जो सभी स्तरों पर ब्रह्मांड में व्याप्त है। यह शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, आध्यात्मिक एवं ब्रह्माडीय ऊर्जा है। यह एक ऐसी ऊर्जा है जो जन्म देती है, सुरक्षा करती है एवं नष्ट भी करती है।

7.3.1 पंचप्राण

प्राण साक्षात् ब्रह्म से अथवा प्रकृति रूप माया से उत्पन्न है। प्राण गत्यात्मक है प्राण शक्ति एक है। इसी प्राण को स्थान एवं कार्यो के भेद से विविध नामों से जाना जाता है। देह में मुख्य रूप से पाँच प्राण तथा पाँच उपप्राण है–

पाँच प्राण– (1) प्राण (2) अपान (3) समान (4) उदान (5) ब्यान

पाँच उपप्राण (1) नाग (2) कूर्म (3) कृकल (4) देवदत्त (5) धनंजय

पंचप्राण की अवस्थिति तथा कार्य–

(1) **प्राण**– श्वास क्रिया पर नियंत्रण रखता है अर्थात यह वह शक्ति है जिसके द्वारा प्राणी श्वास को अन्दर की ओर खीचता है और कक्षीय क्षेत्र को गतिशीलता प्रदान करता है। प्राणायाम में प्राणवायु अंतः श्वास से क्रियाशील होती है।

जो श्वास आहार आदि को खींचता है और शरीर में मल, संचार करता है वह प्राण है।

शरीर में कण्ठ से हृदय और फेफड़ों के विकार प्राण वायु के दूषित होने से होते हैं विकार से क्रोध चिन्ता भय उत्पन्न होते है, मुख्य तत्व वायु है।

(2) **अपान**– उदर क्षेत्र के नीचे (नाभि–स्थान से नीचे) के स्थान में क्रियाशील रहता है। मूल, वीर्य, मल निष्कासन को नियंत्रित करताहै। अपान वाह्मश्वास से क्रियाशील रहता है।

मल–मूत्र, स्वेद, कफ, वीर्य आदि का विसर्जन, भ्रूण का प्रसव आदि बाहर फेंकनें वाली क्रियाएं इसी अपान प्राण के बल से सम्पन्न होती है। अपान वायु की गति नीचे की ओर होती है।

(3) **समान**– उदर स्थान को गतिशील करता है। पाचन क्रिया में सहायता करता है, उदर के अवयवों को ठीक ढंग से काम करने हेतु सुरक्षा प्रदान करता है।

जो रसों को ठीक तरह यथा स्थान ले जाता है और वितरीत करता हैं वह समान है, पाचक रसों का उत्पादन और उनका स्तर उपर्युक्त बनाये रखना इसी का काम है।

समान वायु दूषित होने पर शरीर की शक्ति क्षीण होने लगती है अनेक प्रकार के रोग होते है।

यकृत, आँत, प्लीहा एवं अग्न्याशय सहित सम्पूर्ण पाचन तंत्र को आन्तरिक कार्य प्रणाली का नियंत्रित करता है, मुख्य तत्व अग्नि है समान वायु की गति शरीर के केन्द्र की ओर बहती है।

(4)**उदान**– कण्ठ के ऊपर से सिर पर्यन्त जो प्राण कार्यशील रहता है, उसे 'उदान' कहते है।

कण्ठ से ऊपर शरीर के समस्त अंगों नेत्र, नासिका एवं सम्पूर्ण मुखमण्डल को ऊर्जा और आभा प्रदान करता है, पिच्युटरी तथा पिनिपल ग्रन्थि– सहित पूरे मस्तिष्क को यह 'उदान' प्राण क्रियाशीलता प्रदान करता है जो शरीर को उठाए रखे, कड़क रखे, गिरने न दे वह उदान है उध्वगमन को अनेकों प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष क्रियाएँ इसी के द्वारा सम्पन्न होती है।

(5) **व्यान–** यह जीवनी प्राणशक्ति पूरे शरीर में व्याप्त है

यह वायु शरीर की समस्त गतिविधियों को नियमित तथा नियंत्रित करता है। सभी अंगों, मांसपेशियों, तन्तुओं, सन्धियों, एवं नाड़ियों, को क्रियाशीलता, ऊर्जा एवं शक्ति यही व्यान प्राण प्रदान

करता है। रक्त संचार, श्वास–प्रश्वास, ज्ञानतंतु आदि के माध्यम से यह सारे शरीर पर नियंत्रण रखता है। अर्न्तमन की स्वचालित शरीरिक गतिविधियाँ इसी के माध्यम से सम्पन्न होती है।

7.3.2 उपप्राण

1. **नाग– डकारना –** यह प्राण और अपान के मध्य उत्पन्न रूकावटों को दूर करता है और पाचन तन्त्र में वात (गैस) का बनना रोकता है।
2. **कूर्म – पलक झपकना –** आँखों की बाहरी पदार्थों से रक्षा हेतु पलको की क्रियाएं करता है। देखने का कार्य कूर्म द्वारा नियंत्रित होता है।
3. **कृकल– छींकना–** नाक एवं गले से वाह्म पदार्थ को रोकने (छींकने और खाँसने में सहायता करता है। इसका कार्य भूख प्यास है।
4. **देवदत्त–** जम्हाई, अंगडाई, नींद आना है।
5. **धनंजय–** इस कार्य हर अवयव की सफाई जैसे कार्यों के लिये उत्तरदायी बताया गया है कफ पैदा करता है शरीर का पोषण करता है।

मृत्यु के तुरंत बाद जब प्राण, शरीर त्याग देते हैं तब कुछ समय के लिये धनंजय क्रियाशील होता है तथा पूरे शरीर पर नियंत्रण करता है।

प्राणों का कार्य प्राणमय कोश से सम्बन्धित है और प्राणायाम इन्हीं प्राणों एवं प्राणमय कोश को शुद्ध, स्वस्थ्य और निरोग रखने का प्रमुख कार्य करता है। इसीलिए प्राणायाम का सर्वाधिक महत्व और उपयोग है। प्राणायाम का अभ्यास शुरू करने से पहले इसकी पृष्ठिभूमि का परिज्ञान बहुत आवश्यक है। अतः प्राणायाम रूपी–प्राण–साधना के प्रकरण के आरम्भ में प्राणों से सम्बन्धित विवरण दिया गया है।

7.3..3 प्राण–दर्शन तालिका

मुख्य प्राण		गौण प्राण		चक्र	तत्व
नाम	स्थान	नाम	स्थान		
प्राण	हृदय के आस–पास का भाग	नाग	नाभि से थोड़ा ऊपर	अनाहत	वायु
अपान	पेडू, गुदा	कूर्म	आँख की पलकों में	मूलाधार	पृथ्वी
उदान	हृदय, कण्ठ, तलवा, भृकुटि के मध्य एवं मस्तिष्क में	देवदत्त	श्वासनली के ऊपरी किनारे और गले में	विशुद्धि	आकाश

समान	नाभि तथा आस–पास का विस्तार	कृकल	होजरी के ऊपर और श्वास नली के किनारे	मणिपुर	अग्नि (तंज)
व्यान	स्वाधिष्ठान चक्र से सम्बद्ध होकर पूरे शरीर में ब्याप्त	धनंजय	अस्थि मांस, त्वचा, रक्त, ज्ञानतन्तु, बाल आदि में	स्वाधिष्ठान	जल

जैसा कि आप जान चुके है कि श्वास प्रश्वास पर नियमन तथा नियंत्रण प्राणायाम है श्वास–प्रश्वास के संचालन को योग की भाषा में इस प्रकार वर्णित किया गया है।

(1) रेचकः श्वास को नासिका से बाहर निकालकर उसकी स्वाभाविक गति पर नियंत्रण करना रेचक कहलाता है यह प्रश्वास ही।

(2) पूरकः– श्वास को नासिका से अंदर खींच कर उसकी स्वाभाविक गति पर नियंत्रण करना पूरक कहलाता है। यह श्वास है।

(3) कुम्भक– श्वास–प्रश्वास दोनों गतियों पर नियन्त्रण से प्राण को जहाँ का वहाँ रोक देना कुम्भक कहलाता है। कुम्भक आयु को बढ़ाता है। इससे आध्यात्मिक शक्ति का विकास होता है।

7.3.4 प्राणायाम के उद्देश्य

प्राणायाम के महत्वपूर्ण उद्देश्य निम्नलिखित है।

(1) मन पर नियंत्रण पाना

(2) मानसिक स्थिरता, शांति, एकाग्रता विकसित करने की पद्धति है। इसके साधने पर ध्यान आसानी से लगता है।

(3) मन को धारण करने के योग्य बनाना

(4) हमारे ज्ञान पर जो दूषित आवरण है उसे हटाना, जिससे हमारी आकलन शक्ति बढ़े और सत्य स्थिति का ज्ञान होता है।

(5) प्राणायाम से शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक एवं आध्यात्मिक शक्ति का विकास करना

(6) प्राणायाम षटचक्रों के जागरण में महत्वपूर्ण होता है।

(7) प्राणायाम अनेक प्रकार के रोगों के निवारण में सहायक होता है।

7.4 प्राणवाही नाड़ियां (नाड़ियों के प्रकार)

नाड़िया प्राण के प्रभाव के मार्ग है शरीर को बहत्तर हजार नाड़िया पाई जाती है। मेरूदंड के दोनों ओर दो नाड़िया पायी जाती है जिनसे प्राण का संचार होता है। इनमें बांयी नासिका से सम्बन्धित नाड़ी को 'इड़ा' कहते है इसे 'चन्द्र नाड़ी भी कहा जाता है। दाहिनी नासिका से सम्बिन्धित नाड़ी को पिंगला कहते है, इसे सूर्य नाड़ी भी कहते थे। इड़ा का स्वभाव शीतल तथा पिंगला का स्वभाव गरम है।

इस प्रकार हमारे शरीर में सबसे मुख्य तथा महत्वपूर्ण तीन प्राणवाही नाड़िया

प्राणवाही नाड़िया (मुख्य)–

(क) इड़ा (चन्द्रनाड़ी)

(ख) पिंगला (सूर्य नाड़ी)

(ग) सुषुम्ना नाड़ी

(क) इड़ा– बांयी नासिका से सम्बन्धित नाड़ी को इड़ा कहते है। यह नाड़ी, मूलाधार चक्र के बाएं भाग से प्रारंभ होती है तथा आरा चक्र के बाएं भाग में समाप्त होती है। इड़ा की प्रकृति शीतल है इससे सम्बन्धित ग्रह चन्दमा है अतः इसे चन्द्र नाड़ी भी कहते है। इसका स्वभाव मृदु कोमल, ग्रहणशील तथा स्त्रैण है।

(ख) पिंगला– पिंगला नाड़ी का सम्बन्ध दायीं नासिका से है जब आपकी दाहिनी नाक क्रियाशील हो तो समझना चाहिये कि उस समय पिंगला नाड़ी से प्राण का प्रवाह तीव्र है।

पिंगला की प्रकृति उष्ण या गर्म है। इसे अतः सूर्य नाड़ी के नाम से भी जाना जाता है। इसका स्वभाव, उग्र, तीव्र क्रियाशील तथा पौरूषपूर्ण है।

(ग) सुशुम्नाः– सुशुम्ना नाड़ी शरीर के मध्य में मेरूदण्ड के समानान्तर सीधी गुजरने वाली नाड़ी है यह मूलाधार से आज्ञाचक्र तक सीधी जाती है। सामान्य स्थितियों में सुषुम्ना सुषुप्तावस्था में रहती है। इससे प्राण का प्रवाह नहीं होता। यह तभी क्रियाशील होती है जब इड़ा और पिंगला में संतुलन की स्थिति में हो। उस स्थिति में इसमें बहने वाली प्राण शक्ति को आध्यात्मिक शक्ति कहते है यह ावह मार्ग है जिसके खुलने पर कुण्डिलिनी जागृत होकर आरोहण करती है कुण्डलिनी का विकास आरोहण ही साधक का आध्यात्मिक विकास है।

प्राणायाम के साधक का लक्ष्य है इड़ा और पिंगला में संतुलन लाना ताकि सुषुम्ना नाड़ी क्रियाशील हो सके। प्राणायाम की जितनी भी विधियाँ है वे इसी उद्देश्य की ओर ले जाती है। इड़ा और पिंगला का संतुलन साधक के पूरे व्यक्तित्व को प्रभावित करता है। वह शारीरिक एवं मानसिक रूप से दृढ़ एवं संतुलित हो जाता है, उसके कार्य उसकी वाणी के अनुरूपा और व्यवस्थित रहते है।

निष्कर्ष यह कि इड़ा और पिंगला विपरीत गुणों वाली नाड़ियां है यदि किसी व्यक्ति में हमेशा इड़ा प्रबल रहे तो वह विचारशील तो होगा परन्तु कर्म की अनुपस्थिति में धीरे–धीरे आलस्य, तन्द्रा एवं अकर्मण्यता का शिकार हो जायेगा। आगे चलकर वह निराशा एवं अवसाद के गर्त में चला जायेगा। इसी प्रकार सदा पिंगला का प्रावल्य रहने पर शक्ति अतिउत्साही अति क्रियाशील एवं महत्वाकांक्षी हो जायेगा ये तनाव को जन्म देते है। जो आगे चलकर अनेक बीमारियों का कारण बनता है। अतः उचित शारीरिक, मानसिक, एवं आध्यात्मिक विकास के लिये इड़ा और पिंगला का संतुलन आवश्यक है यह प्राणायाम साधना से ही आकर ईश्वर की कृपा से हमें यह स्वचालित रूप से चलने वाला यंत्र मिला हुआ है। जब हमारे शरीर में उष्णता की आवश्यकता होती है, तब दायीं नासिका से श्वास आने लगता है और जब हमारे शरीर में ठण्डक की आवश्यकता होती है तो बायीं नासिका से श्वास आने लगती है इस स्वचलित यंत्र को हम अपनी इच्छा और आवश्यकतानुसार भी उपयोग में ला सकते है।

7.4.1 प्राणायाम के साधन : श्वसन क्रियाएं

प्राणायाम की साधना श्वसन क्रियाओं द्वारा सम्पादित होती है। वैसे तो श्वसन की क्रिया आजीवन चलती रहती है। यह शरीर में ऑक्सीजन की आवश्यकता को पूरी करती है। परन्तु हम इसके प्रति जागरूक नहीं होते; न ही इस पर कोई नियन्त्रण रखते है। शरीर की आवश्यकता के अनुरूप यह तीव्र या मन्द होती रहती है हमें यह भी पता नही चलता कि कब कौन सी नासिका चल रही हैं जबकि यह हमारे व्यक्तित्व एवं स्वास्थ्य पर गहरा प्रभाव डालती है।

प्राणायाम के अभ्यास से श्वास को अपने नियंत्रण में लाया जाता है। कब किस नासिका से और कितनी गहरी सांस ले और किस प्रकार छोड़े उसी के विभिन्न अनुपात के संयोगों पर प्राणायामक ा विज्ञान खड़ा है। यह योगियों के प्रयोग अनुभव और अतिन्द्रीय दृष्टि का ही फल है कि श्वाँस की विभिन्न क्रियाओं से हम चेतना के उच्च स्तरों पर पहुँचने की व्यवस्था पाते है।

श्वसन की क्रिया तीन आयामों में सम्पन्न होती है

(1) पूरक– श्वास को अन्दर खींचकर फेफड़ों में भरना पूरक कहलाता है।

(2) रेचक– श्वास को बाहर निकालना रेचक कहलाता है।

(3) कुम्भक– श्वास को रोकना कुम्भक कहलाता है।

(क) अन्तः कुम्भक– श्वास को अन्दर खींचकर रोकना अन्तः कुम्भक कहलाता है।

(ख) बाह्म कुंभक– श्वास को बाहर छोड़कर रोकने की क्रिया ब्राह्मकुभक कहलाता है।

श्वसन की विधियाँ–

वक्ष श्वसन– इस प्रकार के श्वसन में पूर्णतः पसली पिंजर (वक्षः पिंजर)को फैलाकर श्वसन क्रिया की जाती है।

वक्ष–श्वसन में वक्ष पिंजर को फैलाकर और संकुचित कर फेफड़ों के मध्य भाग का उपयोग किया जाता है। समान मात्रा में वायु विनिमय के लिये इसमें उदर श्वसन से अधिक ऊर्जा की खपत होती है।

इसका सम्बन्ध प्रायः शारीरिक व्यायाम और परिश्रम तथा साथ ही साथ दबाव और तनाव से भी रहता है। इस स्थिति में यह शरीर को अधिक, ऑक्सीजन प्राप्त करने में सहायक होता है। ऐसा देखा गया है कि तनावपूर्ण स्थिति टल जाने के बाद भी कई लोगों में इस प्रकार के श्वसन को जारी रखने की प्रवृत्ति हो जाती है, जिसके फलस्वरूप गलत श्वसन विधि की आदत हो जाती है और तनाव बना रहता है।

- आराम से बैठ जाएं या पीठ के बल लेट जाएं।
- एक हाथ छाती पर रखें।
- पेट को सीधा रखें। सजगता से गहरी लम्बी श्वास ले जिससे कि आपकी छाती फैलना शुरू हो। अपने हाथ से फैलाव को महसूस करे।
- उदर को हल्के से महसूस करें।
- श्वास छोड़ते समय छाती को सिकोड़े व ढीला छोड़ दे। पेट को विश्राम दे व कसा हुआ रखें।
- कई बार इस प्रक्रिया को करे जब आपको उत्तम लगे तब छाती से पूरी तरह श्वास ले, बिना हाथ के प्रयोग के अपनी श्वास को कि लम्बा व गहरा लेते वे छोड़ते समय।

  हसली से श्वास–

- कुछ समय छाती से श्वास लें तथा फेफड़ों के ऊपरी हिस्से तक गले के निचले हिस्से में फैलाव महसूस करें।

- कन्धे और हसली (कालरबोन) को ऊपर उठता महसूस करें।

- श्वास छोड़ते समय पहले गर्दन के निचले हिस्से को विश्राम दें छाती को विश्राम दें ढीला छोड़ दे।

7.4.2 उदर श्वसन–

इस विधि के श्वसन में बल को पूर्णतः स्थिर रखा जाता है। पूरक के समय नाभि बाहर आती है तथा रेचक के समय वह भीतर जाती है। इस क्रिया में डायफ्राम नामक माँसपेशी मुख्य भूमिका निभाती है। यह पेशी एक मोटी चादर के समान होती है। जो वक्ष गुहा से उदर गुहा को अलग करती है। हृदय तथा फेफड़ इसी के ऊपर अवस्थित रहते है।

उदर श्वसन करते समय डायफ्राम की पेशियों संकुचित होती है जिससे यह नीचे की ओर विस्थापित होता है इस विस्थापन से इससे ऊपर स्थिति फेफड़ों में फैलाव होता है। जिससे हवा अन्दर प्रवेश करती है। साथ ही नीचे की संरचनाओं पर दबाव पड़ता है।

जिससे नाभि बाहर की ओर आ जाती है। रेचक में इससे उल्टी क्रिया होती है। इस प्रकार श्वास प्रश्वास के साथ क्रमशः बाहर तथा अन्दर की ओर गति करती रहती है।

उदर श्वास लेने का अभ्यास–

- पीठ के बल लेटकर, बैठकर या खड़े होकर कर सकते है। किन्तु लेटकर उदर श्वास लेना सरल होता है।

- पेट के बल लेट जाएं, पैरों को अलग कर लें और पंजों को विश्राम दें।

- अपने हाथों को पेट पर और हथेलियों नीचे की ओर रखें।

- सजगतापूर्वक लम्बी श्वास ले ताकि हाथों से उठते पेट का महसूस करें।

- उदर को जितना हो सके सभी दिशाओं में फैलाएं।

- श्वास छोड़े नहीं नाभि को रीढ़ की तरफ खींच और हाथ से हल्का सा दबाव पेट पर देते हुए पेट को नीचे धकेले।

- पूरी तरह श्वास छोड़ दे।
- उत्तम श्वांस का राज उत्तम श्वास छोड़ने पर है।
- जितनी अच्छी तरह से श्वास उतना ही अच्छी तरह से श्वास ले पायेंगें।
- इस प्रक्रिया को दोहराएं। जब आपको उत्तम लगे तब आप उदर प्रसन बिना हाथ पेट पर रखें, अपनी श्वास को लेते एवं छोड़ते समय ध्यान रखें कि श्वांस लम्बी और गहरी हो।

7.4.3 यौगिक अभ्यास–

यौगिक श्वसन, श्वांस की दोनों विधियों का मिश्रित रूप है। इस श्वसन में वक्ष गुहा की परिधि बढती है तथा उदर श्वसन में वक्ष गुहा की उदग्र लम्बाई बढ़ती है। अतः किसी भी एक विधि से सांस लेने में फेफड़ों की पूरी क्षमता का उपयोग नहीं हो पाता। यदि दोनों विधियाँ एक साथ की जाये तो वक्ष गुहा का आयतन अधिक से अधिक बढ़ता है और अधिक से अधिक वायु का प्रवेश होता है अर्थात पूरी क्षमता का उपयोग होता है। यौगिक श्वसन में हम यही तरीका अपनाते है।

इस प्रकार की श्वसन प्रक्रिया में फेफड़ों की पूर्ण क्षमता को तथा श्वसन तन्त्र की सारी मांसपेशियों को प्रयोग में लिया जाता है।

- आराम से बैठ जाएं, पीठ के बल लेटकर भी कर सकते है।
- रीढ़ की हड्डी को सीधी रखें, छोड़ों जमीन के समान्तर
- दो तीन श्वांस पेट से ले।
- अब जो श्वास लेगे उसमें पेट फैलाएगें जैसे उदर में श्वास प्रक्रिया में करते है।
- श्वास लेते रहे, छाती को फुलाएं (फैलाएं) सभी दिशा में चेहरे को ढीला छोड़ दे, छाती से श्वसन लेते वक्त
- श्वास चालू रखें। श्वास छोड़ते समय पहले नाभि को अन्दर ले पेट को नीचे की तरफ ले जाएं फिर छाती का ढीला छोड़ दे।
- अपनी श्वास को लम्बी बराबर, लयबद्ध रखे जैसे लहरे उठती व गिरती है।

- आप अपना सीधा (दाहिना)हाथ पेट पर एवं बायाँ हाथ छाती पर रख सकते है ताकि आप अपनी गति महसूस कर सके व श्वास बाहर अच्छी तरह छोड़ सके।

- पाँच से दस बार दोहराये

यौगिक श्वास बहुत से प्राणायामों में उपयोगी है। मुख्य जरूरत वही है कि श्वसन आरामदायक व विश्रामपूर्वक हो। एक बार सजगतापूर्वक श्वास प्रक्रिया नियंत्रित हो जाएं तब हसली से श्वास तकनीक छोड़ यौगिक श्वास लेने लगते है जो कि दोनों का उदर श्वसन व छाती का मिश्रण है श्वांस स्वाभाविक रूप से प्रवाहित होनी चाहिये, ताकत से नही।

7.5 प्राणायाम की अवस्थाएं–

आचार्यों ने प्राणायाम की अवस्थाओं का वर्णन चार चरणों में किया है।

(1) आरम्भ (2) घट (3) परिचय (4) निष्पत्ति

आंरभिक अवस्था में साधक की जिज्ञासा और रूचि प्राणायाम में जाग्रत होती है। पहले पहल वह जल्दी करता है और थकान अनुभव करता हैं। जल्दी प्राणायाम की वजह से उसका शरीर काँपने लगता है और पसीना आ जाता है। जब व्यवस्थित रूप से धैर्य के साथ अभ्यास करता है तो पसीना आना एवं काँपना बंद हो जाता है और वह दूसरे चरण में पहुँच जाता है जो घटावस्था कहलाती है। शरीर की तुलना धडें से की गई है, जैसे बिना पका हुआ मिट्टी का घड़ा जल्द ही नष्ट हो जाता है, परन्तु यदि इसे प्राणायाम की अग्नि से खूब तपाया जाए एवं क्रमशः अभ्यास किया जाये तो इसमें स्थिरता आ जाती है और इसके बाद वह परिचयात्मक चरण में प्रवेश करता है। इस स्थिति में उसे प्राणायाम के अभ्यासों तथा अपने बारे में विशेष, ज्ञान प्राप्त होता है। जिससे वह अपने गुणों और अवगुणों को पहचान कर कर्मों के कारणों को महसूस करता है। इसके बाद साधक निष्पप्ति चरण में पहुँचाता है साधक की परम गति की यह अंतिम अवस्था है। उसकी कोशिशें सफल होती है। वह कर्मों की निर्जरा करता है। वह सम्पूर्ण गुणों से युक्त हो जाता है और उसे आत्मज्ञान प्राप्त हो जाता है।

7.5.1 प्राणायाम के अभ्यास में सावधानियाँ

- शौच आदि से निवृत्त होकर स्वच्छ, हवादार कमरें में प्राणायामक ा अभ्यास करें।

- कुम्भक के अभ्यास में मांसपेशियों पर अनावश्यक खिंचवा न डालें।

- प्रारम्भिक अवस्था में प्राणायाम की कुछ आवृत्तियां ही करें। और धीरे धीरे अभ्यास को बढ़ायें।
- नियमित अभ्यास करें
- भोजन करने के 3–4 धण्टे बाद आ तरह पेय के बाद कम से कम डेढ़ धण्टे बाद अभ्यास करना ही उचित है।
- अभ्यास सदैव कम्बल या कुश की चटाई को समतल स्थान विद्या कर, उसके ऊपर सुखपूर्वक बैठकर करें।
- अभ्यास स्थल शान्त व तनाव मुक्त होना चाहिये क्योंकि प्राणायाम के अभ्यास में तन की स्थिरता व एकाग्रता आवश्यक है।
- प्राणायाम अभ्यास के पश्चात खुली शीतल वायु में भ्रमण न करें। तत्काल स्नान न करें।
- अभ्यास काल में मिताहार लें।

7.5.2 प्राणायाम के सामान्य लाभ

जिस प्रकार अग्नि के सम्पर्क ने आकर पारा की सभी अशुद्धियाँ दूर हो जाती है, इसी प्रकार प्राणायाम के अभ्यास से उत्पन्न योगाग्नि शरीर में स्थित समस्त विजातीय द्रव्यों, पुद्गल, मलों को नष्ट कर देती है।

प्राणायाम अभ्यास से सर्वप्रथम शरीर के दोष, रोग, आदि नष्ट होते है। धीरे–धीरे शरीर में लघुता व आनन्द की अनुभूति होने लगती है।

- शरीर पर नियन्त्रण होता है और चित्त की शुद्धि होती है। इस प्रकार मन स्थिर व एकाग्र बनता है।
- प्रणायाम शरीर को धारणा, ध्यान समाधि के लिये उपयुक्त बनाता है ।
  नाड़ियों का शोधन होता है जिससे कुम्भक का अभ्यास बढ़ता है।
- प्राण का मध्य नाड़ी अर्थात् सुषुम्ना में प्रवेश होता है।
- विभिन्न कुम्भको के अभ्यास से शारीरिक ब्याधियां दूर होती है।

- सूर्यभेदन द्वारा वातदोष, कृमिदोष का नाश होता है।
- उज्जायी द्वारा कण्ठ से श्लेष्मा दोष, मन्दाग्नि जलोदर धातु दोष नष्ट होते है ।
- सीत्कारी– क्षुधा, निद्रा, आलस्य, तृष्णा दूर होते है ।
- भस्त्रिका समस्त शारीरिक दोष, वातपित्त, ब्रह्मनाड़ी के मुख पर स्थित मल आदि को नष्ट करता है।
- शरीग्नि को बढ़ाता है अर्थात जगराग्नि को तीव्र करता है। शारीरिक सौन्दर्य बढ़ता है।
- डायाफ्राम (मध्य पर) फेफड़ों तथा उदरस्थ अंगों का सूक्ष्मस्तर पर सनायविवतन्त्र व मस्तिक के आन्तरिक क्रिया कलापों के प्रति सजगता में तृप्ति होती है।

7.5.3 प्राणायाम की तैयारी

- आसन– पद्मासन या सिद्धासन प्राणायाम के उपयुक्त आसन हैं। पद्मासन का आधे धण्टे का अभ्यास करना चाहिए। इसके अभाव में सिद्धासन में बैठकर अभ्यास किया जा सकता है।
- नीचे कुशा का आसन, उसके ऊपर ऊनी कपड़ा और फिर सूती कपड़ा बिछाकर बैठना चाहिए। यदि नीचे बैठने का आसन सुखदायक नहीं होगा तो मन भी एकाग्र नहीं हो सकेगा।
- आसन में शरीर सीधा, परन्तु अकड़ा हुआ नहीं रहे। वन्ध इत्यादि के लिए श्रोणिप्रदेश में 30 डिग्री का कोण उपयुक्त रहता है। सिद्धासन और पद्मासन में यह स्थिति स्वतः ही बन जाती है।

नासिकामार्ग की शुद्धि –

- सूत्रनेति या जलनेति से नाक को साफ करके प्राणायाम प्रारम्भ करना चाहिए। पास में सूती वस्त्र का टुकड़ा या रूमाल भी रहना चाहिए जिससे नासिका से निकलनेवाले मल को साफ किया जा सके।
- बन्ध–प्रारम्भ में बिना बन्धों के ही प्राणायाम करना उचित है। बाद विशेषज्ञ की सम्मति से बन्धोंसहित बहुत सावधानी से अभ्यास बढ़ाना चाहिए। आभ्यन्तर कुम्भक में जालन्धर तथा

मूलबन्ध और रेचक करते समय उड्डीयान तथा बाह्म कुम्भक में मूलबन्ध और उड्डीयानबन्ध लगाये जाते हैं।

- बल–प्रयोग से हानि– प्राणायाम में बल–प्रयोग बहुत ही हानिकारक हैं विशेष करके आभ्यन्तर कुम्भक में अधिक रोकने के प्रयास से फुफ्फुसों को हानि पहुँचने की सम्भावना है। कुम्भक का समय धीरे–धीरे बढ़ाना चाहिए। प्राणायाम के चाहें कितने ही फेरे करने पड़ें, उनके मध्य में एकदम श्वास लेने की आवश्यकता नहीं पढ़नी चाहिए।

- जैसे सिंह, हस्ति और व्याघ्र धीरे–धीरे सिखाने पर अपने वश में हो जाते हैं वैसे ही प्राण को धीरे–धीरे वश में करना चाहिए। इसके विपरीत शीघ्रता या बल प्रयोग से यह साधक के प्राण ले लेता है। युक्तिपूर्वक किये हुए प्राणायाम से सभी रोग दूर होते है, परन्तु वहीं अयुक्ति से किया गया सभी रोगों का उत्पादक है। बिना विधि से करने पर प्राण कुपित होकर हिचकी, श्वास, कास, सिर, कान और नेत्रों में पीड़ा इत्यादि अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

- पूरक, कुम्भक और रेचक के समय का अनुपात 1:1:2, 1:2:2 या 6:8:5 भी रखा जा सकता है। अभ्यास हो जाने पर 1:4:2 के अनुपात से करना चाहिये।

- समय, ध्यान, साधना करने वालों को सर्वप्रथम प्राणायाम करना उचित है। जो कफ प्रकृति या आलसी स्वभाव वाले हैं उन्हें प्राणायाम आसनों या अन्य व्यायामों के पश्चात् करना चाहिए। इसके लिए प्रातः काल का ब्राह्म मुहूर्त ही सर्वश्रेष्ठ है। सायंकाल भी किया जा सकता है, परन्तु प्रातःकाल मन की एकाग्रता, वायु में शीतलता, शुद्ध वातावरण, शुद्ध वातावरण, खाली पेट इत्यादि अनुकूलताएं रहती है।

- प्राणायाम शरदऋतु में प्रारम्भ करना चाहिए। ग्रीष्मऋतु में सामान्य अभ्यास या शीतली प्राणायाम उपयोगी है।

- कितने समय तक प्राणायाम करें यह आयु, प्रकृति, भोजन, जलवायु और साधक की योग्यता पर निर्भर करें यह आयु, प्रकृति, भोजन, जलवायु और साधक की योग्यता पर निर्भर करता है। सामान्य अभ्यास 10 से 15 मिनट पर्याप्त है। 12 मात्र का प्राणायाम कनिष्ठ 16 मात्रा का मध्यम और 20 मात्रा का उत्तम होता है। उसे बढ़ाकर 108 मात्रा तक ले जाना चाहिए। यह अवधि एक चक्र की है ऐसे 20 चक्र एक बार में करने चाहिए। एक मात्रा का समय सामान्यतः एक सेकेन्ड जितना होता है।

- भोजन– भोजन सात्विक होना चाहिए। अभ्यास के प्रारम्भ में धृत एवं दुग्ध लेना आवश्यक है। अभ्यास के दृढ़ होने पर यदि कम भी मिले तो विशेष हानि नहीं। सामान्य प्राणायाम के लिए विशेष भोजन अनिवार्य नहीं है। प्राणायाम के पश्चात् उष्णता निवारणार्थ दही या छाछ का प्रयोग करने से वात–विकार उत्पन्न हो जाते है।

- एकाग्रता– मन की एकाग्रता प्राणायाम का आवश्यक अंग है। ओउम् का जप गायत्री मन्त्र या इष्ट का स्मरण करने से मन एकाग्र होता है। यह जप मानसिक होना चाहिए। प्राणायाम से इन्द्रियाँ बाह्म व्यापारों से उन्मुख होकर अन्तर्मुख होने लगती हैं ऐसे समय में उन्हें अध्यात्म की ओर अग्रसर करना चाहिए। प्राणायाम के समय में उन्हें अध्यात्म की ओर अग्रसर करना चाहिए। प्राणायाम के समय भी यदि सांसारिक चिन्तन करते रहें तो लाभ विशेष नहीं होगा, अतः अभ्यास नेत्र बन्द करके करना उचित है।

- नासिका के बाएँ नथुने को चन्द्र स्वर या इड़ा नाड़ी कहते हैं और दाहिना नथुना सूर्य–स्वर या पिगंला नाड़ी कहलाता है। चन्द्र–स्वर शीतल और सूर्य–स्वर उष्ण हैं इन्हें बन्द करने के लिए क्रमशः दाहिने हाथ की तर्जनी और मध्यमा अंगुली को मोड़कर अंगूठे से के पास लगाइए। यह ज्ञानमुद्रा कहलाती है। अंगूठे से दाहिना और कनिष्ठा तथा अनामिका से बायां नथुना दबाना चाहिए।

7.6 विभिन्न यौगिक ग्रंन्थों में वर्णित प्राणायाम के प्रकारः–

प्राणायाम का वर्गीकरण का आधार –

महर्षि पतंजलि के अनुसार–

पतंजलि ने प्राणायाम के चार प्रकार बताये हैं।

बाह्याभ्यन्तर स्तम्भ वृत्ति देशकाल संख्याभिः 2/50

क्रिया भेद से प्राणायाम तीन प्रकार के होते है– बाह्यवृत्ति, आभ्यन्तर वृत्ति और स्तम्भ वृत्ति। देशकाल और संख्या के द्वारा नियमित एवं दीर्घ और सूक्ष्म रूप में इनके अनेकों भेद होते है।

बाह्यवृत्ति– श्वास को शरीर से बाहर रोकना जितनी देर हो सके।

स्तम्भ वृत्ति – श्वास प्रश्वास की गति के समय जहाँ वह है वही उसे रोक देना स्तम्भ वृत्ति कहलाता है।

तीनों प्राणायाम अभ्यास से सिद्ध होते है इन तीनों को देश (कहाँ तक इसका अनुभव करना), काल (कितना समय लगे), संख्या (कितनी आवृत्तियाँ हुई) से दीर्घसूक्ष्म देखा जा सकता है। प्राणायाम के सूत्र में प्राण का विस्तार करना बताया गया है। अतः जब प्राण (श्वास) अधिक लम्बी (दीर्घ) होगी तो वह सूक्ष्म होगी यह निश्चित है।

महर्षि पतंजलि चौथे प्रकार के स्वयं घटित होने वाले प्राणायाम की बात कहीं है–

बाह्याभ्यन्तर विषयाक्षेपी चतुर्थः !! 2/51 पं.यो.सू.

बाह्य, आभ्यन्तर इन विषयों का त्याग करने से अर्थात इनसे अलग अपने आप होने वाला प्राणायाम है।

जब साधक के अभ्यास द्वारा तीन प्रकार के प्राणायाम होने लगते है। इसके बाद ऐसा प्राणायाम होता है, जहाँ न बाह्य, अभ्यन्तर और न ही स्तम्भ वृत्ति होती है, साधक को पता नहीं चलता कि उसने कितना श्वास छोड़ा, कितना लिया, कितना रोका, इन सबकी स्थिति में एक ऐसा समय आ जाता है जब श्वास की गति किसी प्रयास के स्वाभाविक रूप से अपने आप रूक जाती है इसे ही पतंजलि चतुर्थ प्राणायाम कहते है, इसमें किया नहीं जाता। इसमें स्वयं घटित होता है इसमें ही 'केवल कुम्भक' भी कहा जाता है।

प्राचीन एवं आधुनिक योग विषयक ग्रंथों में प्रक्रिया के आधार पर प्राणायाम को अलग–अलग प्रकारों में विभक्त किया गया है, जो निम्नलिखित है–

हठप्रदीपिका के अनुसार :–

सूर्यभेदनमुज्जायी सीत्कारी शीतली तथा।

भस्त्रिका भ्रामरी मूर्च्छा प्लाविनीत्यष्ट कुम्भकाः ।। 2/44

सूर्यभेदन, उज्जायी, सीत्कारी, शीतली, भस्त्रिका, मूर्च्छा तथा प्लाविनी ये आठ प्रकार के कुंभक हैं। स्वामी स्वात्माराम जी ने प्राणायाम को कुंभक के नाम से पुकारा है।

घेरण्ड संहिता के अनुसार :–

सहितः सूर्यभेदश्च उज्जायी शीतली तथा।

भस्त्रिका भ्रामरी मूर्च्छा केवली चाष्टकुम्भकाः।। घे0 सं0 5/46।।

सहित–कुम्भक, सूर्य भेदी, उज्जायी, शीतली, भस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्च्छा, केवली ये आठ प्रकार के प्राणायाम है।

7.6 सारांश

प्राणायाम अष्टांग योग का चौथा सोपान है इस सोपान को पार कर लेने का अर्थ है कि साधक अन्तर्यात्रा की सारी तैयारी पूरी कर चुका है । वह बाहर से चलकर मुख्य द्वार तक पहुँच चुका है जिसे खोलकर उसे इस शरीर रूपी भवन में प्रवेश करना है यहाँ से प्रारम्भ होती है अन्दर की यात्रा प्राणायाम के अभ्यास वैसे अभ्यास है जो श्वसन क्रिया की सहायता से किये जाते है। भस्त्रिका एवं सूर्यभेदी प्राणायाम उष्मा उत्पन्न करने वाले प्राणायाम है। शीतली और शीतकारी शीतलता प्रदान करते है। नाड़ी शोधन प्राणायाम प्राण शरीर की नाड़ियों का अवरोध दूर करता है। उज्जायी एवं भ्रामरी प्राणायाम एकाग्रता को बढ़ाने वाले प्राणाया है। इस प्रकार विभिन्न प्रकार के प्राणायामों के प्रभाव में हम भिन्नता पाते है। परन्तु यह अन्तर स्थूल स्तर पर ही दिखाई पड़ता है। प्राणिक स्तर पर सभी समान है सभी का लक्ष्य प्राणिक शरीर को शक्तिशाली एवं दृढ़ बनाना है। इड़ा और पिंगला के सन्तुलन से सुषुम्ना का मार्ग खोलना है।

अपने इन प्रभावों के कारण प्राणायाम अनेक बीमारियों को दूर करने में सक्षम हैं, विशेषकर वैसी बीमारियाँ जिनकी जड़े मन में है। इन्हें हम मनोशारीरिक बीमारियाँ कहते है।

7.7 अभ्यास प्रश्न

प्रश्न 1. – प्राण से आप क्या समझते है? प्राण के कितने भेद हैं उनका वर्णन कीजिये।

प्रश्न 2. – प्राणायाम का अर्थ, परिभाषा और लाभ लिखिए।

प्रश्न 3. – प्राणायाम का व्यावहारिक जीवन में क्या महत्व है? वर्णन कीजिए।

प्रश्न 4.– इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना के प्रकृति की चर्चा करते हुए इन नाड़ियों के महत्व की व्याख्या कीजिये।

प्रश्न 5. – यौगिक श्वसन क्या है? इसके महत्व पर प्रकाश डालिए।

7.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. घेरण्ड संहिता – स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती , योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर बिहार, भारत
2. आसन , प्राणायाम, मुद्रा बंध – स्वामी सत्यानन्द सरस्वती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर बिहार, भारत

3. योगासन विज्ञान – धीरेन्द्र ब्रम्हचारी, धीरेन्द्र योग प्रकाशन, नई दिल्ली

4. हठयोग प्रदीपिका– स्वात्मारामकृत संस्करणकर्ता – स्वामी दिगम्बर जी , कैवल्य धाम लोनावाला

5. योग विज्ञान – स्वामी विज्ञानान्द सरस्वती, योग निकेतन ट्रस्ट मुनि की रेती, ऋषिकेश, उत्तराखण्ड

इकाई. 08 – नाड़ी शोधन प्राणायाम, सहित प्राणायाम (सगर्भ प्राणायाम, निगर्भ प्राणायाम) उज्जायी प्राणायाम, भ्रामरी प्राणायाम, मूर्च्छा प्राणायाम, प्लाविनी प्राणायाम।

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 नाड़ी शोधन प्राणायाम

8.2.1 अभ्यास विधि

8.3 सहित प्राणायाम

8.3.1 सगर्भ

8.3.2 निगर्भ

8.4. उज्जायी प्राणायाम

8.5 भ्रामरी प्राणायाम

8.6 मूर्च्छा प्राणायाम

8.7 प्लाविनी प्राणायाम

8.8 सारांश

8.9 प्रश्न– उत्तर

8.10 संदर्भ ग्रन्थ

8.0 उद्देश्य :–

इस इकाई में प्राणायाम के विभिन्न पक्षों की जानकारी उपलब्ध कराना है। इस इकाई में आप पायेगें।

1. प्राणायाम के विभन्न प्रकारों का वर्णन कर सकेंगे।
2. विभिन्न प्रकार के प्राणायामें की विधि, लाभ एवं सावधानियों का अभ्यास और वर्णन कर सकेंगे।
3. इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त अन्य हठप्रदीपिका एवं घेरण्ड संहिता में वर्णित प्राणायाम, सहित प्राणायाम, उज्जायी प्राणायाम, भ्रामरी, मूर्च्छा, प्लाविनी, सहित, नाड़ीशोधन की विधियाँ, लाभ एवं सावधानियों के बारे में विस्तार से जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

इस इकाई के अन्त में आप प्राणायाम के सैद्धन्तिक पक्ष से पूरी तरह परिचित हो जायेंगे, जिससे आपको इसकी साधना में सहायता मिलेगी।

8.1 प्रस्तावना :–

इससे पहले की इकाई में प्राणायाम के अर्थ परिभाषा, प्राण के प्रकार, नाड़ियों आदि के विषय में बताया गया, इस इकाई में अलग–अलग ग्रन्थों में प्राणायाम के अनेक प्रकारों का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत इकाई में किया जा रहा है। प्राणायाम की विधि, लाभ एवं सावधानियाँ के बारे में बताया जा रहा है।

8.2 नाड़ी शोधन प्राणायाम

इस प्राणायाम की मुख्य विशेषता है कि बाएं एवं दाएं नासिकारन्ध्रों से क्रमवार श्वास–प्रश्वास को रोककर अथवा बिना श्वास–प्रश्वास रोके श्वसन किया जाता है।

शारीरिक स्थितिः– कोई भी ध्यानात्मक आसन।

8.2.1 अभ्यास विधि

- सर्वप्रथम किसी भी ध्यानात्मक आसन में बैठ जाएं।
- मेरूदण्ड एवं सिर को सीधा रखें और आंखे बंद कर लें।
- कुछ गहरी श्वासों के साथ शरीर की शिथिल कर लें।
- ज्ञान मुद्रा में बाई हथेली बाएं घुटने के ऊपर रखनी चाहिए। दायां हाथ नासाग्र मुद्रा में होना चाहिए।
- अनामिका एवं कनिष्ठिका अंगुली बाई नासिका पर रखनी चाहिए। मध्यमा और तर्जनी अंगुली को मोड़कर रखें। दाएं हाथ का अंगूठा हटा कर वहां (दाई नासिका) से श्वास बाहर छोड़ें।
- तत्पश्चात् एक बार दाई नासिका से श्वास ग्रहण करना चाहिए।
- श्वासोच्छ्वास के अंत में दाई नासिका को बंद करें, बाई नासिका खोलें तथा इसके द्वारा श्वास बाहर छोड़ दें।
- यह पूरी प्रक्रिया नाड़ी शोधन या अनुलोम विलोम प्राणायाम का एक चक्र है।
- यह पूरी प्रक्रिया पांच बार दोहराई जानी चाहिए।

अनुपात एवं समय–

- प्रारम्भिक अभ्यासियों के लिए श्वासोच्छ्वास की क्रिया की अवधि बराबर होनी चाहिए।

- धीरे–धीरे इस श्वासोच्छ्वास क्रिया को क्रमशः 1:2 कर देना चाहिए।

श्वसन–

- श्वसन क्रिया मंद, समान एवं नियन्त्रित होनी चाहिए। इसमें किसी भी प्रकार का दबाव या अवरोध नहीं होना चाहिए।

लाभः–

- इस प्राणायाम का मुख्य उद्देश्य शरीर में ऊर्जा वहन करने वाले मुख्य स्त्रोतों का शुद्धिकरण करना है। अतः यह अभ्यास पूरे शरीर का पोषण करता है। मन में निश्चलता लाता है। और शांति प्रदान करता है साथ ही एकाग्रता बढ़ाने में भी सहायक है।

- जीवन शक्ति बढ़ाता है और तनाव एवं चिंता के स्तर को कम करता है। यह कफ विकार को भी कम करता है।

8.3 सहित प्राणायाम

सहितोः द्विविधः प्रोक्तः सगर्भश्च निगर्भकः।

सगर्भो बीजमुच्चार्य निगर्भो बीज वर्जितः।। घेरण्ड संहिता 5/47।।

अर्थ–

सहित प्राणायाम दो प्रकार के होते हैं– सगर्भ और निगर्भ। सगर्भ में बीज मन्त्र का प्रयोग किया जाता है और निगर्भ का अभ्यास बीज मंत्र रहित होता है।।47।।

व्याख्या–

सहित प्राणायाम के दो विभाजन हैं–सगर्भ और निगर्भ। जब तक सगर्भ की सिद्धि नहीं होती, तब तक सूर्यभेद की सिद्ध किया जाता है। सूर्यभेद के पश्चात् 'उज्जायी, फिर शीतली, फिर भ्रामरी और भास्त्रिका को सिद्ध किया जाता है। मूर्च्छा और केवली उच्च प्राणायाम माने गये, जब शरीर के भीतर प्राण को जागृति होती है तब प्राणों का विकास हलकेपन का आभास देता है और प्राणों की जागृति से उनका तात्पर्य भी यही है।

8.3.1 सगर्भ

महर्षि घेरण्ड कहते हैं कि सुखासन की अवस्था में उत्तर या पूर्व की तरफ मुख करके बैठे एवं लाल वर्ण के रजोगुण युक्त ब्रह्मा का ध्यान करें। अब बाएं स्वर से अं बीज का सोलह बार जप करके पूरक करें। पूरक के बाद और कुम्भक के पहले उड्डियान बंध लगाएँ। अब सतोगुणी उकार बीज रूप कृष्ण वर्ण हरि का ध्यान करें और जप करते हुए चौसठ मात्रा तक कुम्भक करें और तमोगुण युक्त मकार रूपी शुक्लवर्ण के शिवजी के ध्यान के साथ ''म'' बीज मंत्र जपते हुए रेचक करें। बिना तर्जनी और मध्यमा लगाए अनुलोम विलोम अभ्यास करें।

8.3.2 निगर्भ

इस प्राणायाम(कुम्भक) में बीज मंत्र का प्रयोग नहीं किया जाता। पूरक, कुम्भक और रेचक वाले प्राणायाम की एक से लेकर सौ तक मात्राएँ होती है। इसी प्रकार उत्तम प्राणायाम की बीस मात्राएँ मध्यम और सोलह और अधम की बारह होती हैं। इस तरह प्राणायाम के तीन अंग होते हैं। अधम प्राणायाम में स्वेद(पसीना) निकलता है,मध्यम से मेरु कम्प होना और पृथ्वी से ऊपर उठना, ये तीनों ही लक्षण सिद्धि को प्रकट करने वाले है। प्राणायाम के अभ्यास से आकाश गमन, रोगनाशन और कुण्डलिनी जागरण होता है। प्राणायाम के अभ्यास से पुरुष का मन आनंदित होता है। और वह सुखी होता है।

8.4 उज्जायी प्राणायाम

संस्कृत शब्द उज्जायी का अर्थ होता है 'विजयी' यह 'जी' धातु से बना है जिसका अर्थ होता है विजय प्राप्त करना।

मुखं संयम्य नाड़ीभ्यामाकृष्य पवनं शनैः।

यथा लगति कण्ठान्तु हृदयावधि सस्वनम्।। हठप्रदीपिका 2/51।।

मुख को बंद करके दोनों नथुनों से वायु को कुछ आवाज के साथ धीरे–धीरे इस प्रकार लेना चाहिये जिससे कंठ से लेकर हृदय प्रदेश तक इसके स्पर्श का अनुभव हो।

विधि :–

पद्मासन में बैठकर मेरुदण्ड सीधा रखे तथा ज्ञान मुद्रा में बैठे। अब दोनों नासिका को हृदय से कण्ड पचरित श्वास को अन्दर ले, फिर कुम्भक करे जालंधर बंध लगाये तथा इसके बाद जालंधर बंध खोलकर दोनों नासिका से 'सस्' की आवाज करते हुये रेचक करें। यह उज्जायी प्राणायाम है।

लाभ :–

- मानसिक स्तर पर बहुत शिथिलीकारक प्रभाव होता है।
- यह अनिद्रा को दूर करने में सहायक होता है।
- यह शरीर की सप्तधातुओं रस, रक्त, मांस, मेद अस्थि, मज्जा, वीर्य के दोषों का निवारण करता है।
- उज्जायी के अभ्यास से साधक को कफ, कब्ज, आँव, आँत का फोड़ा, जुकाम, बुखार और यकृत आदि के रोग नहीं होते।
- यह प्राणायाम शांति प्रदायक माना जाता है। इसका उपयोग मन को शांत करने में किया जाता है इससे जठराग्नि प्रदीप्ति हो जाती हैं।
- इससे नाड़ी शोधन धातु सम्बन्धी रोग दूर होते है।

सावधानियाँ :–

- वायु को लेते–छोड़ते समय घर–घर तथा खर्राटे की आवाज न हो।
- हृदय से पीड़ित व्यक्तियों को उज्जायी के साथ बंधो व कुम्भक का अभ्यास नहीं करना चाहिये।
- थकावट होने पर श्वास–प्रश्वास सामान्य होने पर ही यह प्राणायाम करें।
- गले के रोगी इस प्राणायाम को न करें।

8.5 भ्रामरी प्राणायाम

भ्रामरी शब्द भ्रमर से लिया गया है, जिसका मुख्य अर्थ है भौंरा। इस प्राणायाम के अभ्यास के समय निकलने वाला स्वर भ्रमर के गुंजन के स्वर की तरह होता है इसलिये इसे भ्रामरी प्राणायाम कहते है।

वेगाद् घोषं पूरकं भृंङ्गनादम्

भृंगनादम् रेचकं मन्दमन्दम्।

योगीन्द्राणामंवमभ्यास योगात्

चित्ते जाता काचिदानन्दलीला।। **हठ प्रदीपिका 2/68**

वेद से भ्रामर गुंजन के समान आवाज करते हुये पूरक करना चाहिये। तत्पश्चात भ्रामरी के गुंजन के समान आवाज करते हुये धीरे–धीरे रेचक करना चाहिये। इस प्रकार अभ्यास करने से उत्तम साधको के चित्त में एक अपूर्व आनंद लीला की उत्पत्ति होती है।

विधि :–

किसी भी ध्यानात्मक आसन में बैठकर अपने दोनो हाथों की उँगलियो से दोनो कानो को सहज रूप से तर्जनी उँगली बंद करके तथा ऑखों को बंद करके पूरक करने के पश्चात रेचक करते हुये भ्रमर के गुंजन के समान आवाज करते हुये यह अभ्यास पूर्ण किया जाता है। यह अभ्यास तीन से पाँच चक्र करें।

लाभ :–

- भ्रामरी प्राणायाम का अभ्यास तनाव से मुक्त करता है और चिंता क्रोध और अतिसक्रियता को घटाता है।
- भौरें जैसी आवाज का प्रतिध्वनिक प्रभाव मस्तिष्क एवं तंत्रिका तंत्र पर लाभकारी होता है।
- यह महत्वपूर्ण शांतिकारक अभ्यास है जो तनाव सम्बन्धी विकारों को दूर करने में लाभकारी होता है।
- यह एकाग्रता और ध्यान की आरंभिक अवस्था में उपयोगी है।
- यह आवाज को मधुर एवं मजबूत बनाता है।
- यह गले के रोगों का निवारण करता है।

सावधानियाँ :–

- इस प्राणायाम का अभ्यास लेटकर नहीं करना चाहिये।
- हृदय रोग से पीड़ित व्यक्तियों को बिना कुंभक के यह अभ्यास नहीं करना चाहिये।
- नाक एवं कान में संक्रमण होने पर इसका अभ्यास न करें।

8.6 मूर्च्छा प्राणायाम

मूर्च्छा का अर्थ है बेहोश हो जाना। इस प्राणायाम द्वारा साधक विषय जगत की चेतना से मूर्च्छित हो जाता है। जिसके कारण इसका नाम मूर्च्छा प्राणायाम पड़ा।

पूरकान्ते गाढतरं बद्ध्वा जालन्धरं शनैः।

रेचयेन्मूर्च्छनाख्येयं मनोमूर्च्छा सुखप्रदा।। **हठप्रदीपिका 2/69**

अर्थात सर्वप्रथम किसी भी ध्यानात्मक आसन में बैठे। कुछ देर सामान्य श्वास–प्रश्वास कर शरीर–मस्तिष्क को शान्त करें (आराम दें) फिर पूरक करें तत्पश्चात् दृढ़ता से जालन्धर बंध लगाये तथा कुछ देर बाद बहुत धीरे–धीरे श्वास को बाहर छोड़े।

विधि :–

किसी भी ध्यानात्मक आसन में बैठते हुये ज्ञान मुद्रा लगाएँ, फिर दोनों नासिका से पूरक करते हुए कुम्भक करें तथा जालंधर बन्ध लगाये। कुछ देर कुम्भक करने के बाद जालंधर बंध को छोड़कर रेचक करें। इससे गले में घर्षण होता है। बार–बार घर्षण करते हुये रेचक–पूरक करें। यह मूर्च्छा प्राणायाम है।

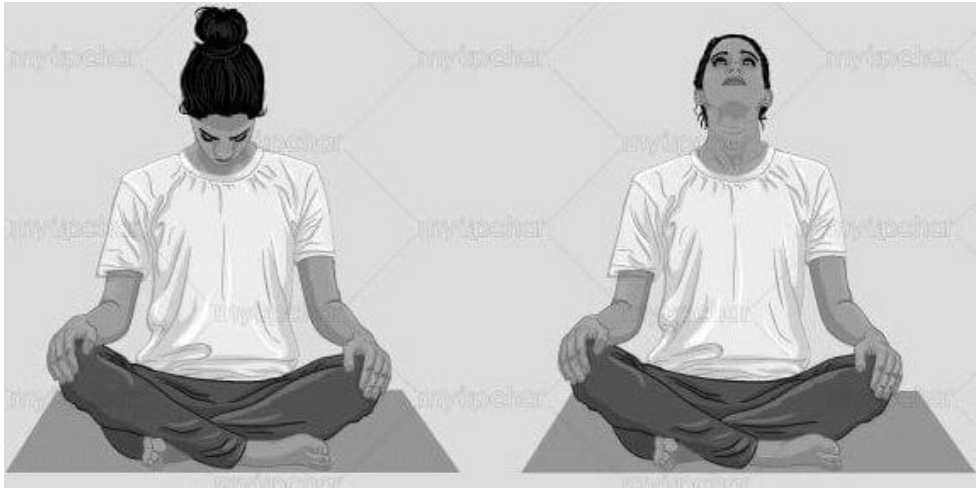

लाभ :–

मूर्च्छा प्राणायाम के लाभ निम्नलिखित है।

- जो व्यक्ति इस प्राणायाम को कर लेता है। उसे आत्मानंद की प्राप्ति होती है।

- इस प्राणायाम से सम्पूर्ण शरीर एवं मस्तिष्क को विश्राम मिलता है।
- इस प्राणायाम से व्यक्ति का बर्हिमुखी स्वभाव स्वतः ही अंतःमुखी होने लगता है।
- मानसिक चिंताग्रस्त व्यक्ति को अथवा मस्तिष्क के निष्क्रिय हो जाने की अवस्था में सुख लाभ प्राप्त होता है।
- कुण्डलिनी व ध्यान में सहयोगी।

सावधानियाँ :–

इसमें निम्नांकित बातों का ध्यान रखना चाहिये।

- उच्च रक्तचात, सिर में चक्कर आना, मस्ष्कि में चोट लगी हो, हृदय, फेफड़ो से पीड़ित व्यक्तियों को।
- मूर्च्छा प्राणायाम का अभ्यास इतना अधिक नहीं करना चाहिये कि बेहोश हो जाएँ।
- जो लोग अत्यधिक कमजोर हो उन्हें यह अभ्यास नहीं करना चाहिये।
- यह अभ्यास सिर में हल्केपन या बेहोशी की सी अवस्था लाता है। इसलिये किसी विशेषज्ञ के मार्गदर्शन में ही इसका अभ्यास करना चाहिये।

8.7 प्लाविनी प्राणायाम

प्लाविनी का अर्थ वह प्राणायाम है जो व्यक्ति को तैरने योग्य बनाता है।

अन्तः प्रवर्तितोदारमारुता पूरितोदरः।

पयस्यगाधेऽपि सुखात् प्लवते पद्यपत्रवत्।। **हठप्रदीपिका 2/70**

श्वास नली द्वारा उदर में प्रचुर मात्रा में वायु भरकर कमल पत्र के समान गहरे पानी की सतह पर भी सरलता से तैर सकता है।

विधि :–

किसी भी ध्यानात्मक आसन में बैठकर अपने आप को प्राणायाम के लिये तैयार करते है– दोनों नासा छिद्र से श्वास को खींचकर पेट को भरते हैं या काफी मात्रा में मुँह से श्वास खींचते है और भोजन की भाँति उसे निगलते हैं। पेट में धारण करते है, बाहर नहीं निकालना है। इस प्रकार वायु को 30 से 90 मिनट तक धारण करने का अभ्यास करना चाहिये। यथाशक्ति इस क्रम को दोहराते रहें।

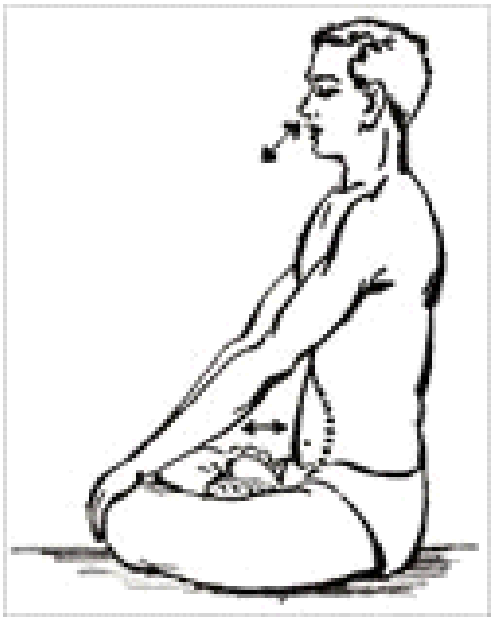

लाभ :–

- इसके अभ्यास से साधक पानी के ऊपर आराम से तैर सकता है जैसे कोई लकड़ी का टुकड़ा तैरता है।
- पाचन तंत्र के अवयव ठीक कर कब्ज को दूर करता है।
- समान और अपान प्राण को कुपित नहीं होने देता।
- यह गैस्ट्रिक तथा वायु विकार में लाभदायक है।

सावधानी :–

इस प्राणायाम का अभ्यास नियमित प्राणायाम करने वाले साधकों को ही करना चाहिये, अर्थात जिन साधकों ने पूर्व के प्राणायामों को सिद्ध कर लिया है। यह अभ्यास प्रारम्भिक या सामान्य साधक के लिये नहीं है।

8.8 सारांश

आज आधुनिकता की अंधी दौड़ एवं वैज्ञानिकता की चकाचौंध में सम्पूर्ण मानव समाज अपने को असहाय सा पा रहा है और रोगग्रस्त होता जा रहा है रोगग्रस्त व्यक्ति न तो अपना कल्याण कर पाता है न ही समाज का, प्राणायाम को यदि जीवन में उतार लिया जाये औषधियों और अन्य खर्चीले यांत्रिक साधनों से मुक्त पा सकते है।

यह भारत की प्राचीन देन है। इसके सहारे व्यक्ति अपने को स्वस्थ रखकर अध्यात्म पथ पर अग्रसर हो सकते है। इससे शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक एवं आध्यात्मिक विकास किया जा सकता है।

प्राणायाम एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है इसको सही विधि से किया जाये तो उत्तम परिणाम प्राप्त होते है किन्तु गलत अभ्यास करने पर हानि भी हो सकती है इसलिए प्राणायाम की पूरी जानकारी प्राप्त करने पर ही प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए।

8.9 अभ्यास प्रश्न

प्रश्न 1. – नाड़ी शोधन क्या है? नाड़ी शोधन प्राणायाम की विधि, लाभ, सावधानियाँ बताइये।

प्रश्न 2. – उज्जायी प्राणायाम की अभ्यास विधि एवं महत्व विवरण दीजिये आध्यात्मिक क्षेत्र में इसकी भूमिका का मूल्यांकन कीजिये।

प्रश्न 3. – भ्रमर ध्वनि के साथ किये जाने वाले प्राणायाम की विधि प्रभाव एवं महत्व का विवरण दीजिये।

8.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- घेरण्ड संहिता – स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती , योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर बिहार, भारत
- आसन , प्राणायाम, मुद्रा बंध – स्वामी सत्यानन्द सरस्वती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर बिहार, भारत
- योगासन विज्ञान – धीरेन्द्र ब्रम्हचारी, धीरेन्द्र योग प्रकाशन, नई दिल्ली
- हठयोग प्रदीपिका– स्वात्मारामकृत संस्करणकर्ता – स्वामी दिगम्बर जी , कैवल्य धाम लोनावाला
- योग विज्ञान – स्वामी विज्ञानान्द सरस्वती, योग निकेतन ट्रस्ट मुनि की रेती, ऋषिकेश, उत्तराखण्ड

इकाई .09 – शीतली प्राणायाम, सीत्कारी प्राणायाम, भस्त्रिका प्राणायाम, सूर्यभेदी प्राणायाम, केवली प्राणायाम।

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 शीतली प्राणायाम

9.3 सीत्कारी प्राणायाम

9.4 भस्त्रिका प्राणायाम

9.5 सूर्यभेदन प्राणायाम

9.6 केवली प्राणायाम

9.7 सारांश

9.8 प्रश्न – उत्तर

9.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

9.0 उद्देश्य :–

इस युनिट का अध्ययन करने के पश्चात् आपः

- प्राणायाम के प्रमुख प्रकारों का वर्णन कर सकेंगे।
- प्राणायाम की विधि महत्व लाभ का विवरण प्रस्तुत कर सकेंगे।
- शीतली प्राणायाम, सीत्कारी प्राणायाम, भस्त्रिका प्राणायाम, सूर्यभेदन प्राणायाम, केवली प्राणायाम का विवरण प्रस्तुत कर सकेंगे।

9.1 प्रस्तावना :–

जन्म से लेकर मृत्यु तक हमारी सांस चलती रहती है लेकिन इतने महत्वपूर्ण तथ्य पर हमारी जानकारी कितनी अल्प होती है। प्राण पूरे शरीर में है लेकिन श्वास केवल फेफड़ो में आता है। श्वांस स्थूल है और प्राण सूक्ष्म है। वायु की अतंरंग शक्ति का नाम है– प्राण, यह हर स्थान पर व्याप्त है। श्वांस के द्वारा हम इस जीवनी शक्ति को निरन्तर प्राप्त करते है संसार की सभी गतिशील वस्तुओं में प्राण है। मनुष्य में प्राण है इसलिये इसे प्राण कहते है।

हमारी नसों में जो शक्ति स्फुरित है, वह ब्रह्माण्ड में व्याप्त है इसी शक्ति को नियंत्रित करने का नाम प्राणायाम है।

9.2 शीतली प्राणायाम

शीतली का अर्थ है शीतल होना। यह साधक के चित्त को शांत करता है और मन की व्यग्रता को दूर करता है। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, यह शरीर और मन को शीतलता प्रदान करता है। इसकी सृष्टि शरीर के तापमान को नियंत्रित करने के लिये ही विशेष रूप से की गई है। इस प्राणायाम के अभ्यास से न केवल शरीर का तापमान नियंत्रित होता है। बल्कि मन भी एकदम शांतचित्त हो जाता है।

जिह्वया वायुमाकृष्य पूर्ववत कुम्भसाधनम् ।

शनकैर्घ्राणरन्ध्राभ्यां रेचयेत् पवनं सुधीः ।। **हठप्रदीपिका 2/57**

जीभ को दोनों ओर से मोड़कर परनाले की तरह विशेष स्थिति में लाकर, फिर उसके द्वारा वायु अन्दर खीचकर पहले की तरह कुम्भक का अभ्यास करना चाहिये। पश्चात् बुद्धिमान (साधक) को धीरे–धीरे नासिका छिद्रों द्वारा वायु का रेचन करना चाहिये।

विधि :–

किसी भी ध्यानात्मक आसन में बैठे, मेरूदंड सीधा रखे। तत्पश्चात् जीभ को बाहर निकाले तथा नाली के आकार से उसे मोड़े तथा फिर जिह्वा के अग्र भाग से श्वास को खीचे, फिर कुम्भक करें तथा जालंधर बंध लगाएं। कुछ समय पश्चात जालंधर बंध छोड़े दें तथा दोनों नासिका से श्वास बाहर निकाल दें। यह शीतली प्राणायाम है।

लाभ :–

- शीतली प्राणायाम रक्त को शुद्ध करता है।
- यह शरीर में शीतलता प्रदान करता है।
- उच्च रक्तचाप वाले व्यक्तियों के लिये यह विशेष लाभप्रद है।
- यह भूख और प्यास का शमन करता है। कटिशूल तथा पेट दर्द को दूर करता है।
- यह कुंभक वायु गोला, तिल्ली, ज्वर, पित्त, भूख, प्यास, आदि सभी प्रकार के रोगों को तथा विष के प्रभाव को नष्ट करता है।

- इस प्राणायाम से मन शांत होता है तथा चिड़चिड़ापन दूर होता है।
- यह त्वचा और नेत्रों के लिये भी लाभदायक है।

सावधानियाँ :–

- इस प्राणायाम के बाद एकदम से उठकर तेजी से काम न करें।
- यदि इस क्रिया में वायु ज्यादा भर जाये तो पश्चिमोत्तान शीर्षासन, सर्वांगासन, योगमुद्रा कर लेना चाहिये।
- ठंड कफ अथवा तुण्डिका शोध (टॉन्सिलाइट्स) के मरीजों को यह प्राणायाम नहीं करना चाहिये।

9.3 सीत्कारी प्राणायाम

सी+त+कारी अर्थात इस प्राणायाम में सीत की आवाज करने के कारण इसे सीत्कारी प्राणायाम कहते है इस प्राणायाम में पूरक के समय 'सी' की तथा पूरक समाप्त होने पर 'त' की आवाज आती है।

सीत्कां कुर्यात्तथा वक्त्रे घ्राणेनैव विजृम्भिकाम्।

एवमभ्यासयोगेन कामदेवो द्वितीयकः ।। **हठप्रदीपिका 2/54**

मुख से सीत्कार (सी सी की आवाज) करते हुये पूरक करना चाहिये और रेचक केवल नासिका से ही करना चाहिये। इस प्रकार अभ्यास करते हुये व्यक्ति दूसरा कामदेव जैसा हो जाता है।

विधि :–

किसी भी ध्यानात्मक आसन में बैठते हुये मेरुदंड को सीधा रखें। ज्ञानमुद्रा में बैठें। दॉतों को एक दूसरे के ऊपर दवा के रखे तथा होंठ खुले हुये रखें, फिर सी सी की आवाज करते हुये मुंह से श्वास ले तथा 'त' के साथ कुम्भक करते हुये जालंधर बंध लगाएं। पर्याप्त कुम्भक करने के बाद जालंधर बंध खोले तथा नासिका से रंचक करें। यह एक सीत्कारी प्राणायाम हुआ। इस तरह इस क्रिया को कई बार करना होता है।

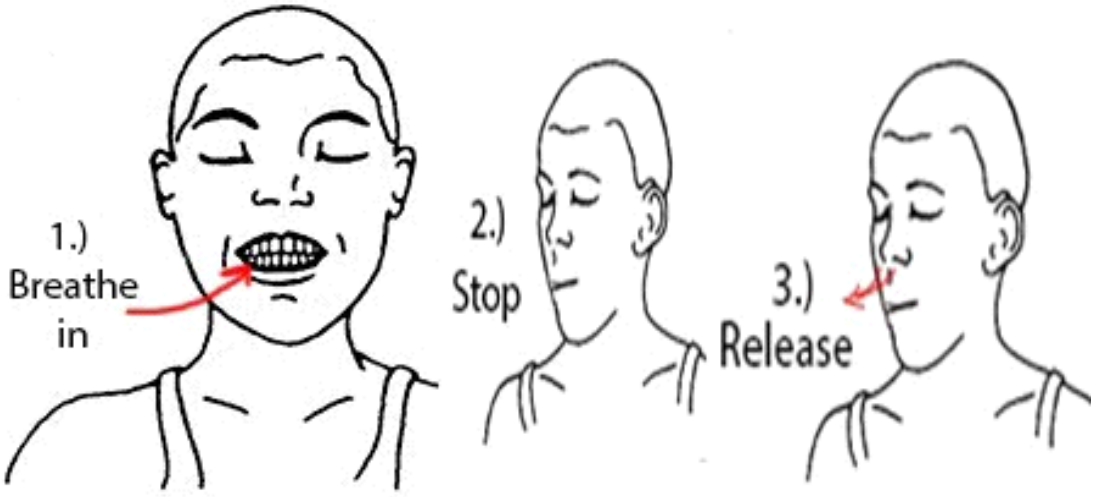

लाभ :–

- यह प्राणायाम क्षुधा, तृष्णाख निद्रा आलस्य आदि में लाभकारी होता है।
- दंत, पायरिया, मुह में छाला आदि के लिये लाभकारी है।
- इस प्राणायाम के करने से शरीर गौरवर्ण हो जाता है। शरीर लेजस्वी बनता है।
- गले, मुख, नाक रोग में लाभ मिलता है।
- पित्त प्रकृति वाले अवश्य करें लाभ प्राप्त होता है।
- ग्रीष्म ऋतु में करने से शरीर ठंडा होता है।
- उच्चरक्त चाप को सामान्य रखता है।

सावधानी :–

- जिन व्यक्तियों को अधिक ठंड लगती हो या कफ सम्बन्धी दोष हो उन्हें इसका अभ्यास नहीं करना चाहिये। यह शीत प्रकृति प्राणायाम है इसलिये इसका अभ्यास सर्दियों में नहीं करना चाहिये।
- रेचक को मुँह से नहीं करना है।
- इसे निम्न रक्त चाप वाले न करें। वात–प्रकृति के व्यक्ति न करें।

9.4 भस्त्रिका प्राणायाम

भस्त्रिका का अर्थ है 'भाथी' या 'धौकनी' रस प्राणायाम में पूरक एवं रेचक दोनो बलपूर्वक किये जाते है लोहार की धौंकनी के समान सांस तेजी से आती जाती है। पूरी प्रक्रिया धौकनी जैसी होने के कारण इसे भस्त्रिका कहते है।

भस्त्रिका लोहकाराणां यथाक्रमेण सम्भ्रमेत्।

तथा वायुं च नासाभ्यामुभाभ्यां चालयेच्छनैः।।

एवं विंशतिवारं च कृत्वा कुर्याच्च कुम्भकम।

तदन्ते चालयेद्वायुं पूर्वोक्तं च यथा विधि।।

त्रिवारं साधयेदेनं भस्त्रिका कुम्भकं सुधीः। **घे.सं. 5/76–78**

अर्थ :–

लोहार द्वारा धौकनी से वायु भरने के समान नासिका द्वारा वायु से उदर को पूरित करे और उदर में ही धीरे–धीरे चलाये। इस प्रकार बीस बार करके कुम्भक द्वारा वायु धारण करें। तत्पश्चात लोहार की धौकनी से वायु निकलने के समान नासिका द्वारा वायु निकाल दे। विद्वानों ने इसे भस्त्रिका कुम्भक कहा इस प्रकार तीन बार करना चाहिये इससे किसी प्रकार के रोग नहीं होते दिनो दिन अरोग्य में वृद्धि होती है।

विधि :–

पद्मासन में बैठे कमर (मेरुदंड) को सीधा रखते हुये दोनों हाथों को धुटनों पर रखते हैं। चित्त बिल्कुल एकाग्र करते है। पूरी श्वास बाहर निकालकर लम्बी गहरी श्वास लेते है। फिर दबाव देते हुये श्वास को 20 बार छोड़ेगें। तत्पश्चात दाई नासिका से श्वास लेकर बायीं से छोड़ेगें। फिर शांत बैठते है। पूरक, रेचक तथा कुम्भक का अनुपात 1:4:2 होता है।

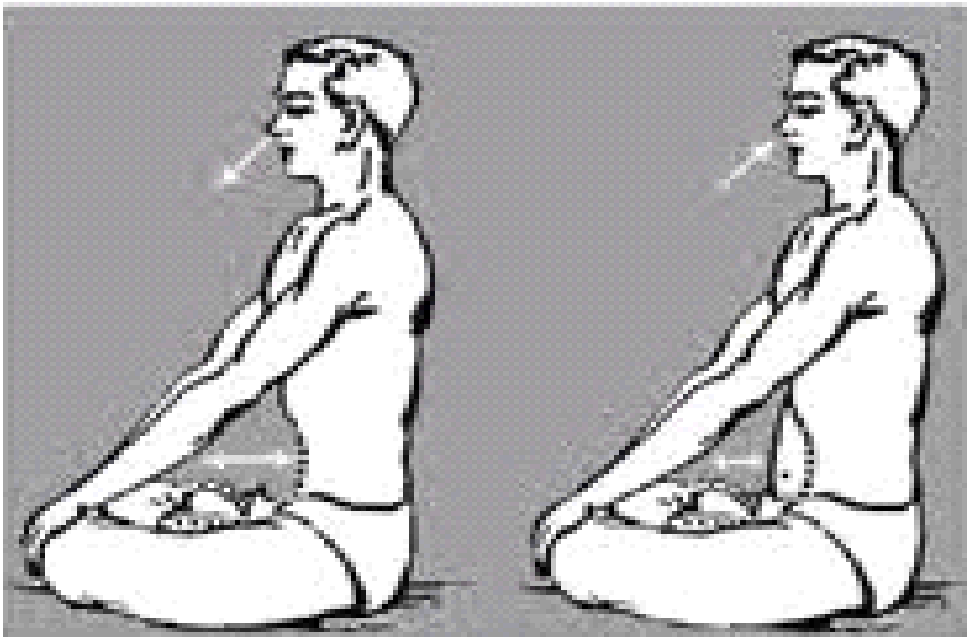

लाभ :–

- रस प्राणायाम से वात, कफ के रोग दूर होते है तथा जठराग्नि प्रदीप्ति होती है।
- यह प्राणायाम सुषुम्ना के मुख में जमें हर कफ को बाहर निकाल देता है। अंततः यह कुंडलिनी जागरण के लिये सहायक होता है।
- यह मोटापा दूर करने में सहायक होता है।
- इस प्राणायाम को करने से मन शांत होता है।
- उदर प्रदेश के अवयव यकृत, प्लीहा एवं पाचन–तंत्र की ग्रंथियों की क्रियाशक्ति बढ़ जाती है।
- फेफड़े मजबूत होते है। अतः दमा एवं क्षय रोग का शमन होता है।

सावधानियाँ–

इसमें निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिये–

- इस प्राणायाम को अधिक नहीं करना चाहिये, क्योंकि इस प्राणायाम से शरीर के तापमान में वृद्धि होती है।
- गरमी के दिनों में इस प्राणायाम को नहीं करना चाहिये।

- उच्च रक्तचाप, हृदयरोग, हर्निया, गैस्ट्रिक अल्सर, मिरगी से पीड़ित व्यक्तियों को इस प्राणायाम का अभ्यास नहीं करना चाहिये।

- यदि भस्त्रिका का अधिक अभ्यास करेगें तो रक्त की गंदगी में फोड़े–फुंसी घाव एवं चर्म रोगों की शिकायत बढ़ेगी (होने लगेगी) अतः धैर्यपूर्वक साधक को अभ्यास करना चाहिये। अशुद्धियों का निष्कासन धीरे–धीरे होने दे जिससे किसी बीमारी से ग्रस्त होने की संभावना ज्यादा न रहें।

9.5 सूर्यभेदन प्राणायाम

सूर्यभेदन प्राणायाम की विशेषता है कि इसकी सभी पूरक (श्वास लेना) क्रियाएँ दाएं नासिका द्वार से की जाती है और रेचक क्रिया (श्वास छोड़ना) बाएं द्वार से की जाती है।

आसने सुखदे योगी बद्ध्वा चैवासनं ततः।

दक्षनाड्या समाकृष्य बहिस्थं पवनं शनैः ।।

आकेशादानखाग्राच्च निरोधावधि कुम्भयेत्।

ततः शनैः सव्यनाड्या रेचयेत् पवनं शनैः।। **हठप्रदीपिका 2/48,49**

योगाभ्यासी कोई सुखदायक आसन बिछाकर, उस पर आसन लगाकर, दाहिने नथुने से बाहरी वायु को धीर–धीरे अन्दर खीचकर, उसे जब तक हो सके अधिकाधिक निरोध करे (श्वास को रोके) और फिर बाएँ नथुने से धीरे–धीरे श्वास को छोड़े।

विधिः–

सर्वप्रथम किसी ध्यानात्मक आसन में बैठे। कमर मेरुदंड सीधा करें। ब्राह्मी मुद्रा बनाएँ तथा बॉया हाथ ज्ञान मुद्रा में रखें दाई नासिका से नियंत्रित गति से श्वास ले तथा फिर यथाशक्ति कुम्भक करें। जालंधर बंध लगाएं। फिर धीरे–धीरे जालंधर बंध हटाएं, नियंत्रित गति से रेचक करें। यह सूर्यभेदी प्राणायाम हुआ। इसी तरह बार–बार प्राणायाम करे। इससे पुरक कुम्भक, रेचक 1:4:2 के अनुपात में रखते है।

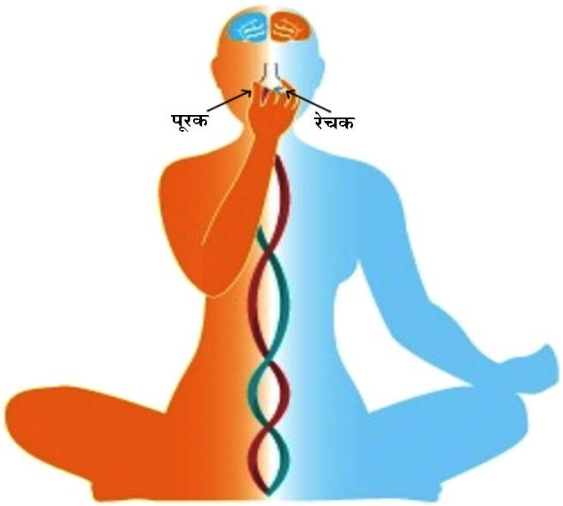

लाभ :–

- यह बुढ़ापा तथा मृत्यु को दूर करता है।
- इससे कफ दोष दूर होते है।
- इस प्राणायाम को करने से मोटापा कम होता है।
- यह प्राणायाम कुंडलिनी शक्ति को जागृत करता है।
- इस प्राणायाम के नियमित अभ्यास से मस्तक की शुद्धि होती है। सभी प्रकार के वातरोग दूर होते है। पेट के होने वाले कृमि दोष नष्ट हो जाते है। सर्दियों में इसे करने से सर्दी नहीं लगती क्योंकि यह शरीर को उष्णता देता है।

सावधानियाँ :–

- इस प्राणायाम को ग्रीष्म ऋतु में नहीं करना चाहिये। जिन लोगों को पित्त सम्बन्धी दोष हो एवं नकसीर फटने की समस्या हो उनके लिये यह अभ्यास वर्जित है।
- उच्च रक्तचाप वाले रोगी न करें।
- कुम्भक की संख्या धीरे–धीरे बढ़ानी चाहिये।

9.6 केवली प्राणायाम

कुम्भके केवले सिद्धे रेचपूरकवर्जिते।

न तस्य दुर्लभं किञ्चित्त्रिषु लोकेषु विधते।। ह0यो0प्र0 2/23।।

रेचक–पूरक के बिना अपने आप जो वायु का धारण होता है, इस प्रकार के प्राणायाम को केवल कुम्भक कहा गया है।

विधि –

- अभ्यास के लिये उपयुक्त वातावरण चुने और अभ्यास के लिये नीचे कुछ बिछाकर पद्मासन या सुखासन में बैठ जाये।
- बैठने के बाद रेचक–पूरक किए बिना ही सामान्य स्थिति में सांस लेते हुए इच्छा के अनुसार प्राण वायु (सांस) को जिस अवस्था में हो, उसी अवस्था में रोक लेना और जितनी देर तक रोकना सम्भव हो रोककर रखना ही केवली प्राणायाम है। इस क्रिया को अपनी क्षमतानुसार 5 से 10 बार कर सकते है।
- सभी प्राणायामों का अभ्यास करते रहने से केवली प्राणायाम स्वतः ही घटित होने लगता है, फिर भी साधक इसे साधना चाहे तो साध सकता है।

लाभ –

- केवली प्राणायाम के अभ्यास से असामंजस्य दूर होता है।
- केवली प्राणायाम से आयु बढ़ती है।
- ध्यान की एकाग्रता बढ़नी है दिव्य दृष्टि प्राप्त होती है।
- हठयोग प्रदीपिका में लिखा गया है कि तीनों लोक में ऐसी कोई वस्तु नहीं जो केवली कुंभक के सिद्ध होने पर साधक हो न प्राप्त हो।

सावधानियाँ –

- केवली प्राणायाम का अभ्यास किसी योग शिक्षक की देख–रेख में ही करें।

9.7 सारांश

प्राणायाम पर उपलब्ध प्रमाण शारीरिक और मनोवैज्ञानिक लाभ की ओर इशारा करते है। प्राणायाम त्रिदोष होते है अर्थात वात–पित्त–कफ से होने वाले सभी रोगो को दूर करते है। प्राणायाम–शीतली, सीत्कारी, भस्त्रिका, सूर्यभेदन, केवली प्राणायाम के जीवन में बहुत लाभ है।

साधक को चाहिये कि एक उचित मार्गदर्शन में ही इनका अभ्यास करें। प्राणायाम का अभ्यास करते समय व्यक्ति को अपने आहार, शारीरिक स्थिति, समय, मौसम, इत्यादि का ध्यान रखते हुये प्राणायाम का चयन करना चाहिये।

9.8 अभ्यास प्रश्न

प्रश्न 1.– सीत्कारी प्राणायाम की विधि लाभ एवं सावधानियों का वर्णन कीजिये।

प्रश्न 2.– शीतली प्राणायाम की विधि लाभ एवं सावधानियों का वर्णन कीजिये।

प्रश्न 3.– सूर्यभेदन प्राणायाम की विधि लाभ एवं सावधानियों का विस्तार से वर्णन कीजिये।

प्रश्न 4.– भिस्त्रिका प्राणायाम की विधि लाभ एवं सावधानियों का विस्तार से वर्णन कीजिये।

प्रश्न 5.– केवली प्राणायाम की विधि लाभ एवं सावधानियों का वर्णन कीजिये।

9.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. घेरण्ड संहिता – स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती , योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर बिहार, भारत
2. आसन , प्राणायाम, मुद्रा बंध – स्वामी सत्यानन्द सरस्वती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर बिहार, भारत
3. योगासन विज्ञान – धीरेन्द्र ब्रम्हचारी, धीरेन्द्र योग प्रकाशन, नई दिल्ली
4. हठयोग प्रदीपिका– स्वात्मारामकृत संस्करणकर्ता – स्वामी दिगम्बर जी , कैवल्य धाम लोनावाला
5. योग विज्ञान – स्वामी विज्ञानान्द सरस्वती, योग निकेतन ट्रस्ट मुनि की रेती, ऋषिकेश, उत्तराखण्ड

चतुर्थ खण्ड परिचय

हठयोग ग्रन्थों में बंध, मुद्रा और अन्य क्रियाएं

परास्नातक योग कार्यक्रम के अन्तर्गत हठयोग के सिद्धन्त के चतुर्थ खण्ड हठयोग ग्रन्थों में बंध, मुद्रा और अन्य क्रियाएं को तीन इकाईयों में विभाजित किया गया है।

इकाई. 10

मूलबन्ध, जालन्धर बंध, उड्डियान बन्ध, महाबन्ध।

इकाई. 11

महाबेध मुद्रा, विपरीतकरणी, खेचरी मुद्रा, काकी मुद्रा, पाशिनी मुद्रा

वज्रोली मुद्रा, शक्तिचालिनी मुद्रा, तड़ागी मुद्रा, माण्डुकी मुद्रा, अश्विनी मुद्रा

इकाई. 12

घेरण्ड संहिता में प्रत्याहार, धारणा और ध्यान की अवधारणा।

हठ प्रदीपिका में नादानुसंधान की अवधारणा और लाभ नादानुसंधान की चार अवस्थाएं

अतः इन समस्त इकाईयों के माध्यम से आप शारीरिक और मानसिक, सामाजिक, आध्यात्मिक रूप से स्वस्थ होकर जीवन के परम लक्ष्य को प्राप्त कर सकेंगे।

इकाई. 10 – मूलबन्ध, जालन्धर बंध, उड्डियान बन्ध, महाबन्ध

इकाई का प्रारूप

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 बन्ध

10.2.1 मूलबन्ध

10.2.2 जालन्धर बंध

10.2.3 उड्डियान बन्ध

10.2.4 महाबन्ध

10.3 षट्चक्र

10.3.1मूलाधार चक्र

10.3.2 स्वाधिष्ठान चक्र

10.3.3 मणिपुर चक्र

10.3.4 अनाहत चक्र

10.3.5 विशुद्धि चक्र

10.3.6 आज्ञा चक्र

10.3.7 सहस्रार चक्र

10.4 सारांश

10.5 अभ्यास प्रश्न

10.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

10.0 उद्देश्य

- बंध का अर्थ व परिभाषाओं का अध्ययन करेंगे।
- बंध के उद्देश्यों एवं महत्व को जान सकेंगे।
- बंधों की विधि, लाभ एवं सावधानियों को समझ सकेंगे।
- हठयोग में वर्णित चारों बन्धों का विश्लेषण कर सकेंगे।
- चक्रों के विषय में विस्तृत जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

10.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में हम हठयोग के महत्वपूर्ण अभ्यास बन्धों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे। बन्ध बहुमूल्य साधन है जो साधक को लक्ष्य तक पहुँचाते है। प्राणायाम के अभ्यासों में जब कुम्भक किया जाता है तो बन्धों को लगाना अति आवश्यक है। वे तंत्रिका तंत्र की संवेदनाओं और उत्तेजनाओं को शान्त एवं संयत करने में सहायक सिद्ध होते है।

साथ ही इस इकाई में षटचक्रों के बारे में सामान्य जानकारी दी जा रही है, कुंडलिनी की शक्ति के मूल तक पहुँचने के मार्ग में छह द्वार है। यह द्वार या ताले खोलकर ही कोई जीव उन शक्ति केन्द्रों तक पहुँच सकता है और परमानन्द को प्राप्त करता है।

10.2 बंध

बंध का शाब्दिक अर्थ है– गाँठ, बंधन या ताला, कसना नियंत्रण आदि बंध नामक इन यौगिक क्रियाओं द्वारा शारीरिक एवं मानसिक प्रवृत्तियों को बांधकर अर्थात नियंत्रित रख सकते हैं। यदि हम योग में बंध की बात करें तो यह शरीर के कुछ हिस्सों में ऊर्जा प्रवाह को रोककर उसे अन्य कामों में प्रवाहित या संचित करने का कार्य करता है। सही मायनों में ऊर्जा के वितरण का कार्य करता है। इससे आंतरिक अंगों की मालिश होती है तथा रक्त का जमाव दूर होता है।

इसमें शरीर के कुछ विशेष अवयवों या आंतरिक अंगों को प्राणवायु द्वारा कसकर बांध लिया जाता है यह बंध शक्ति को अंतरोमुख करते हैं तथा प्राणायाम में सहायक होते हैं। साधक के शरीर में जब प्राणायाम द्वारा ऊर्जा प्रभावित होती है। तब साधक इन बंधों का उपयोग कर शक्ति को बहिर्मुख

होने से बचा लेता है प्राणायाम द्वारा उत्पन्न शक्ति को ये बंध आंतरिक अंगों में वितरण करने में सहायता करते हैं। इनका अभ्यास कुंडली जगाने में भी किया जाता है। बंध का कार्य आंतरिक अंगों की गंदगी को दूर करके अधिक स्वच्छ बनाना है बंध को लगाने से शरीर के अवयव पुष्ट होते हैं। एक प्रकार की मालिश हो जाती है। बंध शरीर की नाड़ी विशेष को प्रोत्साहित एवं उन्हें सुचारू कर रक्तादि के मन को शुद्ध करते हैं। इनको करने से वे सभी ग्रंथियां खुल जाती हैं जो हमारे शरीर में स्थित चक्र में प्राण के प्रवाह को रोकती है इस दौरान सुषुम्ना नाड़ी द्वारा ऊर्जा के प्रवाह को दिशा मिलती है उच्च अभ्यासी समाधि की दशा में यह अनुभव प्राप्त करते हैं।

बंध का अभ्यास वास्तव में स्नायविक अवरोध है, जो कि शरीर व मस्तिष्क के भीतर समस्त तंत्र–तंत्रिकाओं में उत्पन्न हो रही संवेदना को रोक देती है। जिससे अन्य प्रकार की संवेदना जागृत होती है।

शरीर के भीतरी अंगों में जिन–जिन स्थानों पर संकुचन या प्रसारण को क्रिया होती है वह चाहे गर्दन, कंठ, ज्ञानेंद्रियां व गुदाद्वार के भाग में हो वह स्वतः ही भीतरी अंगों से संबंधित क्रियाएं या प्रक्रियाएं बदल देती है।

बंधों का नियमित व निरंतर अभ्यास शरीर को एक भिन्न प्रकार की उत्तेजनात्मक व शांति की स्थिति की ओर अग्रसर करता है जिसके फलस्वरूप आंतरिक स्थिरता उत्पन्न होती है बंध व्यक्ति के शरीर व मस्तिष्क पर सकारात्मक प्रभाव डालते हैं। वे सम्बंधित क्षेत्र से सम्बंधित रोग एवं व्याधियाँ दूर करते हैं।

बंधो का अभ्यास सुषुम्ना नाड़ी में प्राण के स्वतंत्र प्रवाह में अवरोध उत्पन्न करने वाली बाह्य ग्रंथि, विष्णु ग्रंथि व रूद्र ग्रंथियों को खोल देता है। जिसके माध्यम से आध्यात्मिकता का विकास होता है।

बंधों का प्राणायाम में विशेष महत्व है बंध के अभाव में प्राणायाम अधूरे माने जाते हैं बंधो का अधिकतर उपयोग मुद्रा व प्राणायाम के अभ्यास के दौरान कुंभक का अभ्यास अति आवश्यक है। कुंभक की समयावधि प्रारंभ में कम व धीरे–धीरे बढ़ाई जा सकती है। कुंभक, बंधो के अभ्यास को पूर्ण अवस्था तक ले जाता है। अतः कुंभक, प्राणायाम व बंधो का आपस में घनिष्ठ संबंध है यह तीनों ही अभ्यास एक दूसरे के अभाव में अधूरे माने जाते हैं। यह योग के अति लघु अंग हैं परंतु अति महत्वपूर्ण जिसका प्राणायाम के विशेष महत्व है। बंधो के प्रकारों की विधि, लाभ आदि का वर्णन निम्नवत् किया गया है।

बंध और ग्रंथियां–

बंध चार प्रकार के होते हैं– मूलबंध, जालंधर बंध, उड्डीयान और महाबंध चौथा बंध पहले तीन बंधो का संयोजन है। यह तीनों बंध सीधे तीन ग्रंथियों पर प्रभाव डालते हैं मूलबंध का संबंध ब्रह्मा ग्रंथि से, उड्डीयान बंध का विष्णु ग्रंथि से और जालंधर बंध का संबंध रूद्र ग्रंथि से है यह ग्रंथियां सुषुम्ना नाड़ी से प्राण के स्वतंत्र प्रवाह में अवरोध पैदा करती है जिससे चक्रों के जागरण और कुंडलिनी के आरोहण में बाधा उत्पन्न होती है

ब्रह्म ग्रंथि पहली ग्रंथि है जो मूलाधार और स्वाधिष्ठान चक्रों से संबंध है इसका संबंध जीवित रहने की सहज इच्छा, संतानोंत्पत्ती की इच्छा गहरे सहज ज्ञान, सजगता एवं कामना से है। जब ब्रह्म ग्रंथि को पार कर लिया जाता है तब साधक व्यक्तित्व के आकर्षणों एवं सहज वृत्तियों के पास में नहीं बंधता और कुंडलिनी मूल आधार एवं स्वाधिष्ठान चक्र को बिना किसी व्यवधान के पार कर जाती है।

दूसरी ग्रंथि– विष्णुग्रंथि जो मणिपुर और अनाहत चक्र से संबंध है इन दो चक्रों का संबंध मनुष्य के शारीरिक भावनात्मक और मानसिक पक्षो के पोषण से है। मणिपुर अन्नमय कोश का पोषण करता है। अन्नमय कोश हमारा भौतिक शरीर है, जो भोजन के पाचन एवं चयापचय को नियंत्रित करता है अनाहत मनोमय कोश (मानसिक शरीर) और प्राणमय कोश (प्राण शरीर) का पोषण करता है। विष्णु ग्रंथि को पार कर लेने के बाद ऊर्जा मनुष्य के शरीर में स्थित सीमित केंद्रों से नहीं बल्कि सीधे ब्रह्मांड से प्राप्त की जाती है।

अंतिम ग्रंथि रुद्र ग्रंथि है इसका संबंध विशुद्धि और आज्ञा चक्र से है विशुद्धि और आज्ञा, विज्ञानमय कोश अर्थात प्रज्ञा (उच्च मानव शरीर) को पोषित करते हैं यह किसी रूप विचार या धारणा का रूपांतरित कर उसके सार्वभौमिक पहलू को उजागर करते हैं। रुद्र ग्रंथि का भेदन हो जाने पर व्यक्तिगत चेतना समाप्त हो जाती है। पुराना अहंकार पीछे छूट जाता है और अब चेतना की अनुभूति आज्ञा एवं सहस्रार चक्र के पार प्रकट होने लगती है।

10.2.1 मूलबंध –

मूलबंध अर्थात शरीर का मूल स्थान जहां गुदा होता है। वहां अपान प्राण स्थित होता है। अपान प्राण के उर्ध्वगमन के लिए इसका अभ्यास किया जाता है।

इसका वर्णन घेरण्ड संहिता में निम्नानुसार किया गया है–

पार्ष्णिना वामपादस्य योनिमाकुच्चयेत्ततः।

नाभिग्रंथि मेरुदण्डे सुधीः संपीड्य यत्नतः।। घे0सं0 3/6

मेढ्रं दक्षिणगुल्फेन दृढ़बन्धं समाचरेत्।

जराविनाशिनी मुद्रा मूलबन्धो निगद्यते।। घे0सं0 3/7

अर्थात बायीं एड़ी से गुहा प्रदेश को संकुचित करें और प्रयत्न पूर्वक मेरुदंड में नाभि–ग्रंथि को लगाकर दबाएं और दायीं एड़ी से उपस्थ को दृढ़ता पूर्वक दबा ले। यह मूलबंध है जिसके अभ्यास से वृद्धावस्था नष्ट होती है।

सर्वप्रथम किसी भी ध्यानात्मक आसन में सिर कमर सीधा करके बैठ जाते हैं। आंखें को बंद कर दोनों हाथों को ज्ञान मुद्रा अथवा किसी अन्य मुद्रा में रख लेते हैं।

थोड़ी देर सामान्य श्वास–प्रश्वास करते हैं फिर अपना ध्यान गुदा प्रदेश पर ले जाते हैं। गुदा प्रदेश की मांसपेशियों को ऊपर की ओर संकुचित करते हैं थोड़ी देर इस अवस्था में रहते हैं फिर मांसपेशियों को ढीला छोड़ दिया जाता है। यह प्रक्रिया पुनः दोहराई जाती है। इस प्रक्रिया में श्वास–प्रश्वास सामान्य रहता है।

लाभ–

- इसका अभ्यास उत्सर्जन एवं प्रजनन तंत्र को स्वस्थ बनाता है।
- कब्ज बवासीर आदि रोग नहीं होता है।
- शारीरिक मानसिक और आध्यात्मिक लाभ प्राप्त होते हैं ।
- ब्रह्मचर्य पालन में सहायक होता है। शरीर में ऊर्जा का संचार होता है।
- मूलबंध का अभ्यास कुंडलिनी जागरण में अत्यंत सहायक है।

सीमाएं –

यहां अभ्यास किसी अनुभवी योग शिक्षक के मार्गदर्शन में ही करना चाहिए। मूलबंध ऊर्जा का जागरण बड़े तीव्रता से करता है। और यदि सही ढंग से अभ्यास न किया जाए या प्रारंभिक तैयारी अच्छे से न की जाए तो अत्यधिक क्रियाशीलता के लक्षण उत्पन्न हो सकते हैं।

10.2.2 जालंधर बंध –

इसका वर्णन धेरंड संहिता में निम्नानुसार किया गया है–

कण्ठसंकोचनं कृत्वा चिबुकं हृदये न्यसेत्।

जालन्धरेकृते बन्धे षोडशाधारबन्धनम्।। घे. सं. 3/10

जालन्धरमहामुद्रामृत्योच्श्र क्षयकारिणी।

सिद्धो जालन्धरो बन्धो योगिनां सिद्धिदायकः।।

षण्मासमभ्यसेद्यो हि स सिद्धो नात्र संशयः।। घे. सं. 3/11

अर्थ –

जाल का शाब्दिक अर्थ जाला, कंठ का संकोच करें और हृदय पर ठुड्डी को रखे तो जालंधर बंध होता है इससे 16 आधारों का नियंत्रण हो जाता है यह जालंधर बंध नाम की महामुद्रा मृत्यु को भी जीत लेती है। जालंधर बंध सिद्ध होने पर योगियों को सिद्धि प्रदान करता है तथा इसका छः महीने अभ्यास करने से ही योगी अवश्य सिद्ध हो जाता है।

विधि –

सर्वप्रथम किसी भी ध्यानात्मक आसन में बैठते हैं सिर एवं मेरुदंड सीधा रखते हैं दोनों हथेलियों को घुटनों पर रखते हैं इसके बाद धीरे–धीरे श्वास भरते हैं श्वास भरकर रुकते हैं फिर कंठ को संकुचित कर ठुड्डी को छाती (कंठ के मूल भाग में) से लगाने का प्रयास करते हैं।

घुटनों पर हथेलियों से दबाव डालते हुए भुजाओ को सीधा करते हैं जब तक आराम से श्वास अंदर रोक सके तब तक रोके रखें। इसके बाद कंधों, भुजाओं को शिथिल कर सिर को ऊपर उठाते हैं, तत्पश्चात श्वास को धीरे–धीरे छोड़ते हैं। श्वास सामान्य हो जाने पर पुनः इस अभ्यास की पुनरावृत्ति कर सकते हैं।

लाभ–

- इससे थायराइड पैरा थायराइड ग्रंथियां प्रभावित होती हैं तथा ढंग से कार्य करती है।
- जालंधर बंध से श्वास–प्रश्वास क्रिया पर अधिकार प्राप्त होता है।
- ज्ञान तंतु बलवान होता है।
- यह मानसिक तनाव, चिंता, क्रोध आदि का निवारण करता है इस बंध के अभ्यास से कंठ मधुर व सुरीला होता है गले को समस्त व्याधियां दूर होती है।
- इस बंध के अभ्यास से शरीरस्त 16 आधारों का नियंत्रण होता है।

- थायराइड एवं पैराथायराइड ग्रंथियों को क्रियाशील बनाकर उनके हार्मोन के स्राव को संतुलित करता है जिससे शरीर को चयापचय क्रिया ठीक रहती है और शक्ति स्फूर्ति उत्साह एवं युवावस्था अधिक दिनों तक कायम रहती है।

- विशुद्धि चक्र सक्रिय होता है जिससे आकाश तत्व शुद्ध होकर शरीर को शुद्ध करता है।

- यह क्रिया मन को प्रसुप्त शक्ति को जगाने के लिए अद्वितीय है, मन शांत, सौम्य, एकाग्र और संतुलित है। इस क्रिया की चरम स्थिति में श्वास–प्रश्वास स्वतः रुक जाती है जो मस्तिष्क में उठने वाले अनचाहे अनियंत्रित विचारों के प्रवाह को था हठात् रोक देती है। स्नायु संस्थान सफल बनाता है।

सावधानियां –

गर्दन दर्द (सर्वाइकल स्पांडिलाइटिस) हृदय रोगी तथा उच्च रक्त के रोगी ना करें। अतः मस्तिष्क के दबाव में चक्कर आने वाले रोगी न करें। जल्दबाजी में अभ्यास को ना करें। इसे करने के लिए प्राणायाम का अभ्यास होना जरूरी है तभी पूरा लाभ हो सकता है। घुटन का अनुभव होने का पर अभ्यास रोक दें और विश्राम करें। यह ध्यान रखें कि बंध हटाकर सिर को उठाकर ही पूरक और रेचक क्रिया करें।

10.2.3 उड्डियान बंध –

उड्डियान का अर्थ होता है उड़ना, ऊपर उठना आदि उड्डियान बंध के द्वारा प्राण ऊर्जा को ऊपर की ओर उठाया जाता है।

इसका वर्णन धेरंड संहिता में निम्नानुसार किया गया है–

उदरे पश्चिमं तानं नाभिरुर्ध्वं तु कारयेत्।

उड्डीनं कुरुते यस्माद्विश्रान्तं महाखगः।।

उड्डीयानं त्वसौ बन्धो मृत्युमातंगकेसरी।। घे. सं. 3/12

अर्थात नाभि के ऊपर उधर को पीठ की ओर संभाव में सिकोडें, जिसके परिणामस्वरुप महाखग (प्राण) ऊपर उठता है इसे उड्डियान बंध कहते हैं।

विधि –

किसी भी ध्यानात्मक आसन जैसे पद्मासन, सिद्धासन, सुखासन आदि में सिर व मेरुदंड सीधा करके बैठते हैं हथेलियां घुटने के ऊपर रखते हैं आंखें बंद कर पूरी शरीर को ढीला छोड़ देते हैं नासिका से धीरे–धीरे गहरी सांस लेकर फिर श्वास को छोड़ते हैं फेफड़ों को संपूर्ण रूप से खाली करने का प्रयास करते हैं श्वास को बाहर रोककर अर्थात बिना श्वास के लिए ही हाथ सीधे कर के कंधों को ऊपर उठाते हैं साथ ही जालंधर बंध लगाते हैं। पेट की मांसपेशियों को संकुचित करके नाभि को भीतर ऊपर की ओर उठाते हैं। इस स्थिति में जब तक सहजता अनुभव करें तब तक करते हैं फिर इसके बाद पेट की मांसपेशियों को ढीला कर कोहनियों से मोड़ते हैं। कंधों को सामान्य कर जालंधर बंध खोलते हैं फिर धीरे–धीरे श्वास लेते हैं श्वास को सामान्य करते हैं जब श्वास–प्रश्वास सामान्य हो जाए तो फिर से दोहराते हैं।

लाभ–

- पाचन संस्थान स्वास्थ्य होता है।
- जठराग्नि तीव्र होती है।
- फेफड़ों की कार्य क्षमता में वृद्धि होती है
- आलस्य तनाव चिंता कम होती है।
- हृदय क्षेत्र की मांसपेशियों की अच्छी मालिश होती है।
- चेहरे की झुर्रियों को समाप्त कर तेज बढ़ाता है।
- मणिपुर चक्र में जागृति हो आती है जिसके कारण सजगता बढ़ती है तथा ध्यान अवस्था प्राप्त होती है

सावधानियां –

अमाशय एवं आंत्र व्रण, हर्निया, उच्च रक्तचाप, हृदयरोग, ग्लूकोमा, सिरदर्द से पीड़ित व्यक्तियों को इसका अभ्यास नहीं करना चाहिए। गर्भवती महिलाओं के लिए भी इसका अभ्यास वर्जित है किंतु प्रसव के पश्चात पेट की मांसपेशियों को सशक्त बनाने तथा पेट को पूर्व आकार में लाने हेतु इसका अभ्यास अवश्य करें। बंध का अभ्यास सदैव खाली पेट करना चाहिए।

10.2.4 महाबंध–

वामपादस्य गुल्फेन पायुमूलं निरोधयेत्।

दक्षपादेन तद्गुल्फं संपीड्य यत्नतः सुधीः।। घे. सं. 3/14

शनकैश्चालयेत्पार्ष्णि योनिमाकुञ्चयेच्छनैः।।

जालन्धरे धरेत्प्राणं महाबन्धो निगद्यते।। घे. सं. 3/15

महाबन्धः परो बन्धो जरामरण नाशनः।

प्रसादादस्य बन्धस्य साधयेत्सर्ववाञ्छितम्।। घे. सं. 3/16

विधि –

ध्यान के किसी भी आसन में बैठें, परन्तु मुख्यतः सिद्धयोगी आसन में ही बैठें। इसमें तीनों बंध एक साथ लगाने होते है। अब श्वास लें। पहले जालंधर बंध लगाएँ फिर उड्डियान बंध और मूल बंध लगाएँ। समस्त चक्रों पर क्रमशः मूलाधार से सहस्रार तक ध्यान लगाएँ। अनुकूलतानुसार उसी स्थिति में रहिए। अब क्रमशः मूलबंध, उड्डियान बंध फिर जालंधर बंध खोलिए। धीरे–धीरे श्वास लें तथा मूल अवस्था में आने के बाद यही क्रम दोहराएँ। उपरोक्त तीनों बंधो का अभ्यास अच्छी तरह हो जाने के बाद ही यह बंध लगाएँ।

लाभ –

- उपरोक्त तीन बंधो के सभी लाभ इस महाबंध से मिलते है।
- कुण्डली जागरण के लिए अद्भुत।
- बिंदु (वीर्य) बल की रक्षा हेतु
- चित्त शिव–स्थिति में पहुँच जाता है। फलस्वरूप अनेक सिद्धियाँ स्वतः प्राप्त हो जाती है।
- गंगा, जमुना, सरस्वती के संगम की ही तरह तीनों नाड़ियों का संगम होता है।

10.3 षट्चक्र

संस्कृत में 'चक्र' का अर्थ है पहिया अथवा कुंडल योग में इसे भंवर के रूप में देखा जाता है। चक्र मानव शरीर में विद्यमान ऊर्जा केन्द्र है, जिसके माध्यम से ब्रह्माण्ड की ऊर्जा मानव शरीर में प्रवाहित होती है।

चक्र मानव की अनुभूति से भी परे है, क्योंकि सूक्ष्म शरीर से सम्बन्धित है। चक्र, प्रतीकात्मक एवं वास्तविक, दोनों रूप में होते है। इससे दो अर्थ ध्वनित होते हैः

1. ये व्यक्ति के प्राणिक शरीरमें केन्द्रित सूक्ष्म ऊर्जाओं का प्रतिनिधित्व करते है। प्रत्येक चक्र एक विशिष्ट आवृत्ति वाले प्राणिक ऊर्जा से सूक्ष्मता से संबंद्ध है।
2. ये चक्र जागरूकता के उत्तरोत्तर उच्चतम अवस्थाओं का प्रतिनिधित्व करते है। ये मनुष्यों में जागरूकता के विभिन्न स्तरों के प्रतीक हैं, जैसे मूलधार चक्र, जो सहज गुणों से संबंद्ध है और आज्ञा चक्र जो सहज ज्ञान से संबद्ध है।

एक प्रकार प्रत्येक चक्र दो विशेषताओं से परिभाषित होता है, जैसे प्राण तथा चेतना। इन मनोवैज्ञानिक केन्द्रों (चक्रों) की शारीरिक या मानसिक उत्तेजना मनुष्य में मानसिक क्षमता को जगाती है तथा उसकी अन्तर्दृष्टि से उसे परिचित करवाती है। यही योगाभ्यास का परम लक्ष्य है।

तकनीकी भाषा में कहें तो मनुष्य में चक्र के छः प्रकार होते है। ये चक्र तीन महत्वपूर्ण नाड़ियों इडा. पिंगला तथा सुषुम्ना के अवरोधन केन्द्र पर रहते है। वे छः चक्र है– मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्ध तथा आज्ञाचक्र, किन्तु वास्तव में, आठ महत्वपूर्ण चक्र (अष्ट चक्र) होते है। उपर्युक्त षट् चक्र के अतिरिक्त दो अन्य चक्र है ललना चक्र और सहस्रार चक्र।

10.3.1 मूलाधार चक्र–

मूलाधार चक्र अन्य चक्रों का सहयोग करता है। यह प्रजनन ग्रंथियों से जुड़ा होता है। यह रीढ़ की हड्डी के आधार और कुंडलिनी शक्ति पर स्थित है। यह रंग के कमल के फूल का प्रतीक होता है जिसकी चार पंखुड़ियां होती है। यह शारीरिक ऊर्जा, आत्मसंरक्षण तथा मूल सिद्धांतों का केन्द्र है। इस चक्र का तत्व पृथ्वी है। यह पीठ, पाँव, कूल्हों, अण्डाशय, योनि, रीढ़ और पैरों को संचालित करता है। यह सुरक्षा, अस्तित्व और मानव की मौलिक क्षमता से संबंधित है।

10.3.2 स्वाधिष्ठान चक्र–

स्वाधिष्ठान चक्र को त्रिकास्थि या तिल्ली चक्र के नाम से भी जाना जाता है। यह नाभि के नीचे पेट के पास स्थित होता है। यह शक्ति का एक केन्द्र है तथा संतरी रंग के कमल के फूल का प्रतिनिधित्व करता है, जिसकी छः पंखुड़ियाँ होती है। इस चक्र का तत्व जल होता है। यदि यह चक्र ठीक से कार्य कर रहा है, तो व्यक्ति विश्वास से पूर्ण और भावनात्मक स्तर पर संतुलित महसूस करता है, किंतु यदि चक्र अतिसक्रिय होता है तो मनुष्य भावनाओं पर नियंत्रण नहीं रख पाता। यह प्रजनन अंगों, मूत्राशय, आंत्र तथा निचली आंतों को नियंत्रित करता है। आत्मविश्वास की कमी, डर तथा इच्छाओं को नष्ट कर इस चक्र को शुद्ध किया जा सकता है।

10.3.3 मणिपुर चक्र–

संस्कृत में मणि का अर्थ 'आभूषण' तथा पुण का अर्थ 'स्थान' माना जाता है। दीप्तिमान कांति के कारण यह चक्र मणि अथवा रत्न की भांति दिखता है, इसी कारण इसे मणि चक्र का नाम दिया गया है। यह चक्र गतिशीलता, प्रभुत्व तथा आत्म अभिकथन का केन्द्र है तथा यह पीले रंग के दस पंखुड़ियों वाले कमल के फूल की भांति लक्षित होता है, जिसमें एक उल्टा त्रिकोण बना है, जो अग्नि का प्रतीक है। यह पेट, ऊपरी आंत, ऊपरी पीठ तथा ऊपरी रीढ़ को संचालित करता है। यह चक्र शांति का प्रतीक है। जब भी चेतना इस चक्र के ऊपर बढ़ती है तो मनुष्य सभी दुखों व कष्टों से मुक्ति पा लेता है।

10.3.4 अनाहत चक्र–

अनाहत शब्द का अर्थ है 'आघातरहित'। यह चक्र हृदय के केन्द्र में स्थित है, जहाँ से अनाहत नाद को सुना जा सकता है। यह चक्र हरे रंग की बारह पंखुड़ियों वाले कमल के फूल जैसा होता है, जो हृदय स्थल के केंन्द्र में स्थित होता है। ऐसा कहा जाता है कि मनुष्य का स्वत्व, जो शुद्ध और स्थिर है, यहां रहता है। इसी हृदय में वैश्विक बंधुत्व और सहिष्णुता जन्म लेती है। इसका आधार समर्पित प्रेम, सहानुभुति, कल्याण तथा करुणा जैसी भावनाएँ है। अनाहत चक्र उत्तरदायित्व, पूर्ण सुरक्षा, विश्वास तथा सादगी प्रदान करता है। जैविक रूप से यह चक्र हृदय, रक्त, फेफड़े, संचार प्रणाली, प्रतिरक्षा तथा अन्तःस्रावी प्रणाली से सम्बन्धित है। अनाहत चक्र द्वारा असन्तुलित रूप से कार्य करने पर प्रेम–सम्बन्धी कठिनाइयाँ उत्पन्न होती है। यह असन्तुलन बाल्यग्रंथि तथा अन्तःस्रावी ग्रंथि को उत्तेजित करता है। ये दोनों ग्रन्थियों अनाहत चक्र से संबद्ध है। दमा तथा अन्य हृदय संबंधी विकार चक्र के निष्क्रिय होने से उत्पन्न होते है। यदि चक्र अधिक क्रियाशील होता है, तो व्यक्ति का प्रेम स्वार्थपूर्ण होने लगता है।

10.3.5 विशुद्धि चक्र–

संस्कृत के शब्द शुद्ध का अर्थ है, 'पवित्र' विशुद्ध चेतना एवं रचनात्मकता का केन्द्र विशुद्ध चक्र। आसमानी रंग के 16 पखुड़ियों वाले कमल के फूल द्वारा परिलक्षित होता है। जब इस चक्र में चेतना जाग्रत रहती है तो मनुष्य अच्छी समझ तथा उचित–अनुचित का भेद बेहतर कर पाता है, जिसके परिणामस्वरूप वह द्वंद्व में नही उलझता। वह अच्छाई व बुराई, दोनों को स्वीकार करता है तथा दूसरों के साथ पवित्र सम्बन्ध रखता है, किन्तु अनासक्त भाव के साथ। शारीरिक स्तर पर यह चक्र थायरॉयड ग्रंथि व फेफड़ों से जुड़ा होता है। चयापचय, वोकल कोर्ड्स, फेरिक्स ओसोफैगस को नियंत्रित करता है। यह हमारी अभिव्यक्ति को प्रभावित करता है। यदि यह चक्र सक्रिय न हो, तो सर्दी–जुकाम, खाँसी, थायरॉयड जैसी समस्याएँ उत्पन्न हो जाती है तथा संप्रेषण भी प्रभावित होता है। यदि यह अधिक

सक्रिय हो, तो मनुष्य वाचाल हो जाएगा। इस चक्र में सन्तुलन बनाए रखने के लिए व्यक्ति को ध्यान, भ्रामरी प्राणायाम तथा योगासन, जैसे भुजंग आसन का अभ्यास करना चाहिए।

10.3.6 आज्ञा चक्र–

यह अति महत्वपूर्ण चक्र है। ज्ञानचक्षु त्रिवेणी, गुरूचक्र तथा शिव का नेत्र इत्यादि नामों से चक्र भी इस को जाना जाता है। संस्कृत में 'आज्ञा' शब्द का अर्थ है, 'आदेश'। एक अग्रिम विद्यार्थी, जो गहन ध्यान में मग्न है, यह अपने गुरू तथ दिव्य ज्ञान से आदेश तथ दिशानिर्देश प्राप्त करता है। यह चक्र दो पंखुड़ियों वाले कमल के फूल से परिलक्षित होता है। यह एक द्वार है, जो हमारी चेतना के लिए आगे का मार्ग प्रशस्त करता है, ताकि यह गंतव्य तक पहुंच सके, जो सातवीं केन्द्र है।

शारीरिक स्तर पर, आज्ञा चक्र प्रत्यक्ष रूप से पीयूष ग्रन्थि तथा मस्तिष्क से सम्बन्धित है, जो अन्तःस्रावी प्रणाली से जुड़ने के लिए हार्मोन्स स्रावित करता है और इसके अतिरिक्त यह अधःश्चेतक के द्वारा केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र को जोड़ता है। चेतना भौतिक आधार में पीयूष ग्रंथि महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। पीयुष ग्रंथि भौतिक या शारीरिक रूप में चेतना का प्रतिनिधित्व करती है।

यह सहज ज्ञान तथा बुद्धिमत्ता का आधार है। यदि यह निष्क्रिय न हो तो व्यक्ति नकारात्मक सोच, थकान तथा उदासीनता से ग्रस्त रहता है। यदि चक्र अधिक सक्रिय है, तो व्यक्ति कल्पना की दुनिया में रहने लगता है तथा मतिभ्रम में पड़ जाता है।

इस चक्र में दिव्य चिन्तन, प्राणायाम तथा गुरु की कृपा के द्वारा प्रवेश किया जा सकता है।

10.3.7 सहस्रार चक्र–

सभी चक्रों में से सबसे अधिक पवित्र सहस्रार चक्र है, जिसका अर्थ 'एक हजार' है। हजार पंखुड़ी वाले बैगनी रंग के कमल के रूप में इसे दर्शाया जाता है। यह उसी केन्द्र पर स्थित है, जहाँ आत्मानुभूति होती है। जब कुण्डलिनी जागृत होती है, तब चेतना विभिन्न चक्रों से होते हुए सहस्रार चक्र तक पहुँच जाती है। सहस्रार चक्र में कुण्डलिनी अपने स्रोतो के साथ विलीन हो जाती है तथा परम आनन्द प्राप्त करती है। यह चक्र शीर्ष ग्रंथि से सम्बन्धित है, जो संवेदनशील है तथा मेलाटोनिन हार्मोन बनाती है। यह निद्रा तथा जागरण को नियमित करता है। यह जब अच्छी तरह से कार्य करती है, तब व्यक्ति की वैचारिक शक्ति तथा बुद्धि में सुधार आता है। यह ग्रंथि बचपन में बड़ी होती है, परन्तु परिपक्वता में सिकुड़ जाती है। आज्ञा चक्र व्यक्ति को तंत्रिका तंत्र प्रणाली के माध्यम से परम सत्य की प्रत्यक्ष अनुभूति में सहायता करता है। यह चक्र सभी चक्रों की योग्यताओं का समन्वित रूप है। यह केवल परमात्मा की कृपा से ही सक्रिय हो सकता है।

10.4 सारांश

हठयोग ग्रन्थों में बंध की उपयोगिता स्वीकार किया गया है बन्ध के प्रयोग से साधक असीम आनन्द की प्राप्ति करेंगे तथा कुण्डलिनी शक्ति का जागरण कर समाधि की प्राप्ति करेंगे अर्थात मोक्ष की प्राप्ति कर सकेंगे। भारतीय दर्शन और योग में चक्र प्राण या आत्मिक ऊर्जा के केन्द्र होते है। चक्र हमारी आध्यात्मिक यात्रा के महत्वपूर्ण घटक है और चक्रो को समझने से हमें अपने मन शरीर और आत्मा को बेहतर ढंग से जोड़ने में मदद मिल सकती है बंध और चक्रों का उद्देश्य स्वास्थ्य, आत्म जागरूकता और आध्यात्मिक ज्ञान में सुधार करना है।

10.5 अभ्यास प्रश्न

- बन्ध से आप क्या समझते है ? इनके उद्देश्यों की विस्तारपूर्वक चर्चा कीजिए।
- बन्ध का अर्थ समझाते हुये इनके महत्व पर चर्चा कीजिए।
- जालन्धर बन्ध व उड्डियान बन्ध की विस्तार पूर्वक चर्चा कीजिए।
- मूलबन्ध व महाबन्ध की विस्तार पूर्वक चर्चा कीजिए।
- षटचक्र से आप क्या समझते है। मूलाधारचक्र व स्वाधिष्ठान चक्र की व्याख्या कीजिए।

10.6 संन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. घेरण्ड संहिता – स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती , योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर बिहार, भारत
2. आसन , प्राणायाम, मुद्रा बंध – स्वामी सत्यानन्द सरस्वती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर बिहार, भारत
3. योगासन विज्ञान – धीरेन्द्र ब्रम्हचारी, धीरेन्द्र योग प्रकाशन, नई दिल्ली
4. हठयोग प्रदीपिका– स्वात्मारामकृत संस्करणकर्ता – स्वामी दिगम्बर जी , कैवल्य धाम लोनावाला
5. योग विज्ञान – स्वामी विज्ञानान्द सरस्वती, योग निकेतन ट्रस्ट मुनि की रेती, ऋषिकेश, उत्तराखण्ड

इकाई. 11– महामुद्रा, विपरीतकरणी, शांभवी मुद्रा, काकी मुद्रा, योग मुद्रा मातड़िनी मुद्रा, भुजङ्गिनी मुद्रा, तड़ागी मुद्रा, अश्विनी मुद्रा

इकाई का रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 मुद्रा परिचय

- 11.2.1 महामुद्रा
- 11.2.2 विपरीतकरणी
- 11.2.3 शांभवी मुद्रा
- 11.2.4 काकी मुद्रा
- 11.2.5 योग मुद्रा
- 11.2.6 मातड़िनी मुद्रा
- 11.2.7 भुजङ्गिनी मुद्रा
- 11.2.8 तड़ागी मुद्रा
- 11.2.9 अश्विनी मुद्रा

11.3 सारांश

11.4 अभ्यास प्रश्न

11.5 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

11.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में हम

- मुद्रा का अर्थ परिभाषाओं का अध्ययन कर सकेंगे।
- मुद्रा के उद्देश्यों को समझ सकेंगे।
- मुद्राओं की विधि, लाभ तथा सावधानियों का अध्ययन कर सकेंगे।
- हठयोग में वर्णित विभिन्न मुद्राओं का विश्लेषण कर सकेगें।

11.1 प्रस्तावना

इस इकाई में आप हठयोग के प्रमुख अंग मुद्रा के बारे में अध्ययन करेंगे। हठयोग में मुद्रा का स्थान आसन एवं प्राणायाम से भी बढ़कर है क्योंकि मुद्रा के अभ्यास हमारे प्राणमय कोश एवं मनोमय कोश को प्रभावित करते हैं । मुद्रा हमारे शरीर के विभिन्न अंगों द्वारा भाव विशेष को प्रकट करती है। समानता नृत्य में हमें कई तरह की मुद्राएं देखने को मिलती हैं।

योग शास्त्र में वर्णित मुद्रा तंत्रिका तंत्र की संवेदना और उत्तेजनाओं को शांत एवं संयत करने में सहायक सिद्ध होती है।

महर्षि घेरण्ड कहते हैं कि मुद्रा बहुमूल्य साधन है जो ब्रह्मद्वार अर्थात मूल स्थान पर सोती हुई कुंडलिनी शक्ति का जागरण करके साधक को लक्ष्य तक पहुंचाती है। परंतु मुद्राओं को सोने की पिटारी की तरह गुप्त रखना चाहिए। अतः स्पष्ट होता है कि बंध व मुद्राएं हमें बाह्य या भौतिक जगत से हटाकर अंतर्जगत मे ले जाती है जहाँ लक्ष्य की प्राप्ति हो जाती है।

11.2 मुद्रा परिचय

मुद्रा शब्द मुद् धातु से बना है जिसका अर्थ प्रसन्नता से है। मुद्रा शरीर व मन के भावों के प्रकटीकरण का माध्यम है सरल शब्दों में कहा जाये तो चित्त को प्रकट करने वाले विशेष भाव को मुद्रा कहते है।

योगियों ने मुद्राओं की अनुभूति शक्ति प्रवाह की स्थितियों के रूप में की, जिनका उद्देश्य होता है व्यक्ति को प्राणशक्ति को ब्रह्माणी प्राण शक्ति के साथ जोड़ना।

मुद्राएं सूक्ष्म शारीरिक गतियों का संयोजन है जो मनोवृति मनोदशा और सहज बोध में परिवर्तन लेती है और सजगता एवं एकाग्रता को गहरा बनाती है मुद्राओं के अभ्यास उच्च कोटि के हैं, जिनसे प्राणों, चक्रो एवं कुंडलिनी का जागरण होता है और कुछ साधकों को महान सिद्धियां प्राप्त होती हैं।

मुद्रा एक ऐसी अनोखी विधि है जो एक तरफ शरीर को स्वस्थ बनाती है तो दूसरी तरफ चेतना को जटिल मनोग्रंथियों से मुक्त कर उच्चतर आयाम देती है मुद्राएं शरीरस्थ किसी विशेष चक्र या अंतः स्रावी ग्रंथि को उत्प्रेरित करती है स्वैच्छिक संस्थान को नियंत्रित करती है। और इस प्रकार मनः स्थिति को प्रभावित कर सोच में शरीर पर गहरा प्रभाव डालती है। जिस प्रकार आसन अन्नमय कोष को विशेषकर प्रभावित करता है, उसी प्रकार मुद्रा मनोमय कोश को प्रभावित करती है, शरीर और चेतना की विशेष स्थिति को मुद्रा कहते हैं। शास्त्रीय नृत्य और नाटक शास्त्र में मुद्रा के प्रयोग का काफी विस्तार है। मुद्राओं को कुछ बीमारियों के उपचार के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है लेकिन मुद्राओं का नियमित अभ्यास आपके समग्र स्वास्थ्य में योगदान करेगा और इसे निवारक उपाय के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है।

आध्यात्मिक दृष्टि से बंध एवं मुद्रा प्रस्तुत कुंडलिनी को जगाने और चक्रों का भेदन करने में सहायक है शारीरिक दृष्टि से अंतः स्रावी को उत्तेजित करके उनसे उचित मात्रा में अंतः स्राव होकर शरीर की अनेक क्रियाएं व्यवस्थित हो जाती हैं।

योग में जिस प्रकार आसन प्राणायाम एवं बंध का महत्व है। उसी प्रकार साधक के लिए मुद्राओं के अभ्यास का भी विशेष महत्व है। मुद्राओं का अभ्यास ऋषि–मुनियों द्वारा हजारों वर्षों से चला आ रहा है। मुद्राओं का अभ्यास आध्यात्मिकता की ओर अग्रसर करता है तथा इसके माध्यम में मन व मस्तिष्क में स्थिरता एकाग्रता व शांति आती है।

मुद्राओं द्वारा अनैच्छिक शरीरगत प्रक्रियाओं पर नियंत्रण प्राप्त कर साधक आज के इस तनावपूर्ण जीवन में स्वस्थ व प्रसन्नचित्त रह सकता है। यह साधक को सूक्ष्म शरीर में स्थित प्राण शक्ति के प्रति सजग व जागरूक बनाता है। मुद्राओं के माध्यम से शरीर के भीतर विद्यमान शक्तियां चेतन रूप से नियंत्रित होती हैं तथा नाडियों में प्राण के प्रवाह को सुचारू व नियमित करता है। मुद्राओं के नियमित अभ्यास से साधक शारीरिक व मानसिक रूप से स्वस्थ रहता है तथा रोगों का निवारण होता है जिससे आध्यात्मिकता की प्राप्ति होती है।

कुंडलिनी शक्ति के जागरण में मुद्राओं का अभ्यास अति लाभकारी है यदि कोई व्यक्ति किसी मुद्रा का अभ्यास दीर्घ अवधि तक करता है तो वह उस मुद्रा के भाव को प्राप्त कर लेता है क्योंकि शरीर व हृदय में उसी प्रकार की स्थिति उद्देश्य संवेदना उत्पन्न होने लगती है।

स्थूल रूप से देखें तो चित्र के विशेष भाव को मुद्रा कहते हैं। यह चित्र के विशेष भाव व प्राण की अवस्थाओं की द्योतक है । घेरण्ड संहिता में भगवान शिव ने माता पार्वती को संबोधित करते हुए कहा है–

मुद्राणां पटलं देवि कथितं तव संनिधौ।

येन विज्ञातमात्रेण सर्व सिद्धिः प्रजायते। धे. सं. 3/4

गोपनीय प्रयत्नेन न देय यस्यकस्यचित्।

प्रीतिदं योगिना चौव दुर्लभंमरुतामपि।। धे. सं. 3/5

अर्थात हे देवी! मैंने तुम्हें मुद्राओं का ज्ञान प्रदान किया एकमात्र इनका ज्ञान ही सिद्धियों को प्रदान करने वाला है यह विधाएं योगियों को आनंद देने वाली है देवताओं को भी यह विधाएं सुलभ नहीं है इन विधाओं को सदा गुप्त रखना।

मुद्राओं के अभ्यास से संपूर्ण शरीर स्वस्थ होकर मानसिक स्थिरता व एकाग्रता प्राप्त करता है साथ ही चित्त शांत रहता है जिससे अध्यात्मिकता को प्राप्त किया जा सकता है

मुद्रा एवं प्राण–

मुद्राओं के अभ्यास में जो भाव और भंगीमायें अपनाई जाती हैं वह आत्मा को मनोमय कोश और प्राण में कोश के बीच सीधा संबंध स्थापित करती हैं। प्रारंभ में इससे अभ्यासी के भीतर शरीर में प्राण प्रवाह के प्रति सजगता विकसित होती है। अंततः यह कोशो में प्राणिक संतुलन स्थापित करता है और सोच में ऊर्जा को ऊपर के चक्रों में दिशांतरित करता है, जिससे चेतना की उच्च स्थिति प्राप्त होती है।

जिस प्रकार प्रकाश या ध्वनि के रूप में ऊर्जा तरंग जब दर्पण या खड़ी चट्टान से टकराती है तो वहां से परिवर्तित हो जाती है उसी प्रकार मुद्राएं भी प्राण की दिशा को परिवर्तित करती है।

नाडियों और चक्रों में निरंतर प्राण का विकिरण होता रहता है जो सामान्य रूप से शरीर से बाहर निकल कर बाह्य जगत में बिखर जाता है। मुद्राओं के अभ्यास से शरीर में अवरोध उत्पन्न किए जाते हैं। जो ऊर्जा प्रवाह की दिशा को बदल कर उसे पुनः शरीर के भीतर वापस ले आते हैं।

उदाहरण के लिए पंचमुखी मुद्रा में उंगलियों से आंखों को बंद करने से आंखों के द्वारा बाहर निकलने वाला प्राण परावर्तित होकर शरीर में वापस आ जाता है इसी प्रकार वज्र नाड़ी द्वारा उत्सर्जित होने वाली काम–ऊर्जा वज्रोली मुद्रा के अभ्यास से पुनः मस्तिष्क की ओर दिशांतरित हो जाती है।

तंत्र शास्त्रों में कहा गया है कि प्राण के बिखराव को यदि मुद्रा के अभ्यास द्वारा रोक दिया जाए तो मन अंतर्मुखी हो जाता है जिससे स्वाभाविक रूप से प्रत्याहार और धारणा की स्थिति आती है। प्राण को वापस लाने की क्षमता प्राप्त होने के कारण कुंडलिनी के जागरण में मुद्राओं के अभ्यासों का महत्वपूर्ण स्थान है। इसी कारण क्रिया एवं कुंडलिनी योग के अभ्यासों में बड़ी संख्या में इनका समावेश किया गया है।

मुद्राओं पर एक वैज्ञानिक दृष्टि–

वैज्ञानिक शब्दावली में मस्तिष्क स्तंभ के चारों ओर मस्तिष्क के प्राथमिक क्षेत्रों में उत्पन्न होने वाली अचेतन प्रतिक्रियाओं और पुरानी सहजवृत्तिजन्य आदतों के मूल तक पहुंचने और उन्हें प्रभावित करने के लिए मुद्राएं एक उत्तम साधन हैं। वह इन क्षेत्रों के साथ एक सूचना अबौद्धिक संबंध स्थापित करती हैं। प्रत्येक मुद्रा एक अलग संबंध का निर्माण करती है और शरीर, मन एवं प्राण पर उसी के अनुसार उसका प्रभाव पड़ता है। इसका लक्ष्य है एक निश्चित शरीरिक स्थिति या मुद्रा का सृजन करना, जो बार–बार दोहराए जाने पर अभ्यासी को सहजवृत्ति से उत्पन्न आदतों से मुक्त कर अधिक शुद्ध चेतना को स्थापित कर सके।

मुद्रा एक दृष्टिकोण–

घेरण्ड संहिता में 25 मुद्राओं का वर्णन आता है जो कि सभी लाभों की जन्मदाता है परंतु मुख्य रूप से हम उन मुद्राओं का वर्णन करेंगे जिन का प्रचलन ज्यादा है। अन्य मुद्राओं के लाभ भी हमें इन्हीं मुख्य मुद्राओं से प्राप्त होते हैं। ये सभी मुद्राएं सरल हैं एवं क्रमिक रूप से हमें सार्थकता प्रदान करती हैं।

शरीर में नाड़ी संस्थान के भीतर अनेक संवेदनाएं उत्पन्न होती हैं। मन के क्षेत्र में अनेक परिवर्तन होते हैं, जिन पर हमारा ध्यान जाता है प्राण के क्षेत्र में शरीर में ऊर्जा का उत्पादन समय–समय पर बढ़ता है या कम होता है। इन सब कारणों से मानसिक या आंतरिक अवस्था में चंचलता या विक्षिप्तता का अनुभव होता है।

सामान्य रूप से नृत्य में हम मुद्राओं को देखते हैं नृत्य तरह–तरह की मुद्राओं का प्रदर्शन होता है जो व्यक्ति के भाव विशेष को प्रकट करती है।

क्रोध के भाव को आंखों के द्वारा, हाथों की स्थिति के द्वारा और शारीरिक भंगिमा द्वारा बतलाया जाता है।

यह भी देखा गया है कि अगर कोई व्यक्ति किसी मुद्रा का अभ्यास लंबे समय तक करता है तो वह उस मुद्रा के भाव को प्राप्त कर लेता है, क्योंकि शरीर और मन में उसी प्रकार की स्थिति उसी प्रकार का उद्देश्य संवेदना उत्पन्न होने लगती है। सामान्य जीवन में भी अगर आप क्रोध की मुद्रा में आते हैं, आंखों को चढ़ा लेते हैं। हाथों को तान लेते हैं और मुक्का बाध लेते हैं तो भले ही आप क्रोधी ना हो पर या भाव शनैः शनैः आपके भीतर जागृत हो जाएगा, क्योंकि हम जिस किसी शारीरिक स्थिति को अपनाएंगे वह हमारे तंत्रिका तंत्र में एक विशेष प्रकार की संवेदना उत्पन्न कर हमारी मस्तिष्क तरंगों में परिवर्तन लाएगी। मस्तिष्क तरंगों में यह परिवर्तन फिर चेतना की स्थिति को प्रभावित करेगा और कुछ समय तक उस विशेषताओं को हम अपने भीतर अपने मानस में अनुभव करेंगे।

योग सुत्र में जिन मुद्राओं और बंधों का वर्णन किया गया है वह तंत्रिका तंत्र की संवेदना और उत्तेजना को शांत एवं संयत करने में सहायक सिद्ध होती हैं।

सामान्य रूप से योग में हम जिन मुद्राओं को जानते हैं वह साधु महात्माओं या देवी देवताओं के चित्रों या मूर्तियों में दिखलाई देती है जैसे ज्ञानमुद्रा, चिन्मुद्रा, शंखमुद्रा, अभयमुद्रा इत्यादि।

कुंडलिनी योग या क्रिया योग में जिन मुद्राओं का अभ्यास किया जाता है जैसे अश्वनी मुद्रा, वज्रोली मुद्रा, तड़ागी मुद्रा इत्यादि उनका प्रभाव प्राण में कोश पर पड़ता है। और वह प्राणमय कोश को परिवर्तित करने का प्रयास करती है। और उनका प्रभाव मस्तिष्क पर भी पड़ता है। और वह चित्त के भीतर भाव विशेष को जागृत करने में सहायक होती है ताकि हम अंतर्मुखी हो सके इनका अभ्यास एकाग्रता प्राप्ति में भी सहायक होता है।

योग मुद्राओं के पांच समूह–

योग मुद्राओं का लगभग 5 समूहों में बांटा जा सकता है, जिनका वर्णन नीचे किया जा सकता है

1. हस्त मुद्राएं –

हस्त मुद्राएं ध्यान की मुद्राएं हैं वह हाथों द्वारा उत्सर्जित होने वाले प्राण को पुनः शरीर में वापस कर देती हैं ऐसी मुद्राएं जिनमें अंगूठे और तर्जनी को मिलाकर रखा जाता है बहुत सूक्ष्म स्तर कॉर्टेक्स को प्रेरित करती हैं। जिससे ऊर्जा का एक परिपथ निर्मित होता है। जो मस्तिष्क से निकलकर हाथ तक आता है और फिर वापस मस्तिष्क में जाता है। इसे प्रक्रिया को सचेतन सजगता से बहुत शीघ्र

अन्तर्मुखता की अवस्था प्राप्त होती है इस समूह में निम्नलिखित मुद्राएं आती हैं 1. ज्ञान मुद्रा 2. भैख मुद्रा 3. चिन्मुद्रा 4. हृदय मुद्रा 5. योनि मुद्रा

2. मन मुद्राएं–

ये अभ्यास कुंडलिनी योग के अभिन्न अंग हैं और इनमें से कई अपने आप में ध्यान की विधियां भी हैं। इनमें आंखों, कानों, नाकों, जिह्वा एवं होठों का उपयोग किया जाता है इस समूह में निम्नलिखित मुद्राएं आती हैं–

1. शाम्भवी मुद्रा 2. भूचरी मुद्रा 3. नासिकाग्र दृष्टि 4. आकाशी मुद्रा 5. खेचरी मुद्रा 6. षठमुखी मुद्रा 7. काकी मुद्रा 8. उन्मनी मुद्रा 9. भुजंगिनी मुद्रा

3. काया मुद्राएं –

अभ्यास में शारीरिक स्थितियों के साथ श्वसन और एकाग्रता को जोड़ा जाता है इस समूह में निम्नलिखित मुद्राएं आती है–

1. प्राण मुद्रा 2. पाशिनी मुद्रा 3. विपरीतकरणी मुद्रा 4. मांडूकी मुद्रा 5. योग मुद्रा 6. तड़ागी मुद्रा

4. बंध मुद्राएं –

अभ्यास में मुद्रा एवं बंध का योग होता है यह शरीर को प्राण से उर्जान्वित कर देते हैं। और उसे कुंडलिनी जागरण के लिए तैयार करते हैं इस समूह में निम्नलिखित मुद्राएं आती है– 1. महामुद्रा 2. महाभेद मुद्रा 3. महावंध मुद्रा

5. आधार मुद्राएं –

ये अभ्यास प्राण को निम्न केंद्रों से पुनः मस्तिष्क की और दिशांतरित करते हैं। काम ऊर्जा के उर्ध्वगमन से संबंधित मुद्राएं इस समूह में आती हैं। इस समूह में निम्नलिखित मुद्राएं आती हैं– 1. अश्वनी मुद्रा 2. वज्रोली सहजोली मुद्रा

इन समूह की मुद्राएं प्रमस्तिष्क की प्रांतस्था (सेरेब्रल कार्टेक्स) के अधिकांश क्षेत्रों को प्रभावित करती है। सिर तथा हाथों से संबंधित मुद्राओं का अपेक्षाकृत अधिक संख्या में होना, इस बात का संकेत है कि इन दो क्षेत्रों से आने वाली सूचनाओं का अर्थ समझने और तदनुसार कार्य करने में प्रमस्तिष्क का 50: हिस्सा व्यस्त रहता है।

दुनिया में जितने दर्शन धर्म सिद्धांत और विचारधाराएं हैं उन सब का मत है कि यदि व्यक्ति को किसी प्रकार की अध्यात्मिक या आंतरिक अनुभूति चाहिए तो उसे बाह्य जगत से पूर्णरूपेण संबंध विच्छेद करना पड़ेगा। सभी धर्मों का मुख्य उद्देश्य है हमें अंतर्मुखी अवस्था की प्राप्ति कराना ताकि बाहर के संवेग मानसिक अवस्था को विक्षिप्त ना करें। हम अपने मन को पूर्णरूपेण एकाग्र करके प्रार्थना या ध्यान में लगा सकें और अपने भीतर नकारात्मक प्रतिक्रियाएं उत्पन्न ना होने दे।

वेदांत में भी कहा गया है कि सब कुछ क्षणभंगुर है, सब माया है, सब भ्रांति है, इसे छोड़ो, सत्य को अपनाओ। लेकिन योग और तंत्र शास्त्र में यह कहा जाता है कि जिस अवस्था ने तुम हो, ऊपर चढ़ने के लिए उसी अवस्था को सीढ़ी बना लो, यदि एकाग्रता चाहते हो, तो इंद्रियों के माध्यम से भी तुम एकाग्र अवस्था को प्राप्त कर सकते हो। यदि किसी प्रकार की आध्यात्मिक अनुभूति चाहते हो, तो इंद्रियों के माध्यम से भी वह अनुभूत तुम्हें प्राप्त हो सकती है। इंद्रियों का इतना विस्तार किया जाए, उन्हें इतना प्रबल बनाया जाए कि मन अपने आप ही उसमें केन्द्रित हो जाए।

11.2.1 महामुद्रा

इसका वर्णन धेरंड संहिता में निम्नानुसार किया गया है–

पायुमूलं वायगुल्फे संपीडय दृढ़यत्ननः।

याम्यपादं प्रासार्याथ करोपात्तपदाङ्गुलि।। घेरण्ड सहिता 2/29।।

कष्ठ संकोचनं कृत्वा भ्रुवोर्मध्यं निरीक्ष्येत्।

पूरकैर्वायुं सम्पूर्य महामुद्रा निगधते।। घेरण्ड सहिता 2/30।।

अर्थात बाईं एड़ी से गुदा प्रदेश को दबाए और दाहिने पैर को फैलाकर उसकी अंगुलियों को हाथ से पकड़े और कंठ को सिकोड़कर भौंहो के मध्य में दृष्टि लगाए यह 'महामुद्रा' कहलाती है।

विधि –

सर्वप्रथम दोनों पैरों को सामने की ओर फैलाकर दंडासन की अवस्था में बैठते हैं इसके बाद बाएं पैर को घुटने से मोड़ते हुए बाई एड़ी को मूल भाग (गुदा प्रदेश) में रखते हैं। दाहिना पैर सीधा रहता है फिर दोनों हाथों को ऊपर उठाकर श्वास छोड़ते हुए आगे की ओर झुकते हैं और दोनों हाथों से दाहिने पैर के पंजे को पकड़ लेते हैं फिर सिर को थोड़ा पीछे की ओर झुकाते हुए धीरे–धीरे श्वास

लेते हैं। कुंभक का प्रयोग करते हैं। दृष्टि दोनों के मध्य स्थित रहती है। तत्पश्चात सिर नीचे करते हैं। दोनों हाथों को नीचे करते हैं। फिर दूसरे पैर को इसी क्रम में रखकर यह क्रिया पुनः दोहराई जाती है।

लाभ–

- यहां चित्त को शांत करती है और मन की चंचलता को समाप्त करती है।
- यह मन को अंतर्मुखी बनाती है।
- तंत्रिका तंत्र को संतुलित करती है।
- प्राण ऊर्जा को जागृत करती है।
- उच्च रक्तचाप एवं हृदय रोगियों को इसका अभ्यास नहीं करना चाहिए।
- शारीरिक शुद्धीकरण पूर्ण किये बिना इस महामुद्रा का अभ्यास नहीं करना चाहिए।

11.2.2 विपरीतकरणी

इसका वर्णन धेरंड संहिता में निम्नानुसार किया गया है–

भूमौ शिरश्च संस्थाप्य करयुग्मं समाहितः।

उर्ध्वपादः स्थिरो भूत्वा विपरीतकरी मता।।

घे0सं0 3/47

अर्थात सिर भूमि में लगाकर दोनों हाथों का सहारा लेकर दोनों पांव को ऊपर उठाकर कुंभक के द्वारा वायु को रोके यही विपरीतकरणी मुद्रा है।

विधि –

सर्वप्रथम पीठ के बल सीधे लेट जाते हैं पर सीधे व मिले हुए रहेंगे, दोनों हाथों की हथेलियों को बगल में रखेंगे। शरीर शिथिल छोड़ देंगे। फिर श्वास भरते हुए दोनों पैरों को घुटनों से मोड़ें बिना एक साथ ऊपर उठाएंगे। कमर से थोड़ी मुड़ी हुई पैर थोड़ा सिर की ओर झुके रहेंगे। पैर आंखों की दृष्टि की सीध में रहेंगे। कुंभक लगाकर रखेंगे। तत्पश्चात श्वास छोड़ते हुए वापस सामान्य अवस्था में आएंगे।

लाभ–

- यह अभ्यास वृद्धावस्था को दूर करता है।
- पाचन संस्थान को दुरुस्त करता है।
- थायराइड की क्रियाशीलता में संतुलन आता है।
- मस्तिष्क में रक्त संचार ठीक प्रकार से होने लगता है।

सावधानियां –

कब्ज या अस्वस्थ हो तब इसका अभ्यास नहीं करना चाहिए। उच्च रक्तचाप, हृदय रोगियों को इसका अभ्यास नहीं करना चाहिए।

11.2.3 शांभवी मुद्रा –

इसका वर्णन धेरंड संहिता में निम्नानुसार किया गया है–

नेत्रान्तरं समालोक्य चात्मारामं निरीक्षयेत्।

सा भवेच्छाम्भवीमुद्रा सर्वतन्त्रेषुगोपिता।।

घे0सं0 3/76

अर्थात दृष्टि को दोनों भौंहों के मध्य स्थिर कर स्वयं पर अर्थात अपनी आत्मा पर ध्यान करें यही शांभवी मुद्रा है।

विधि –

किसी भी ध्यानात्मक आसन में सिर व मेरुदंड को सीधा करके बैठ जाते हैं दोनों हाथ ज्ञान अथवा ध्यान मुद्रा में रख लेते हैं आंखों को बंद कर शरीर को ढीला छोड़ देते हैं चेहरे को संपूर्ण मांसपेशियों को शिथिल करते हैं फिर आंख खोलकर सामने किसी बिंदु पर आंखों को एकाग्र करते हैं तत्पश्चात आंखों की दृष्टि ऊपर भूमध्य में टिका देते हैं। श्वास लेकर कुंभक का प्रयोग करते हैं तत्पश्चात श्वास छोड़ते हुए आंखों को सामान्य अवस्था से में लेकर आते हैं। यह प्रक्रिया फिर से दोहराई जाती है।

लाभ–

- मानसिक एकाग्रता का विकास होता है।
- आज्ञाचक्र के जागरण में सहायता मिलती है।
- मन एवं प्राण को संतुलित करता है।
- आंखें बहुत अधिक संवेदनशील होते हैं अतः ज्यादा देर तक इसका अभ्यास नहीं करना चाहिए।

सावधानी – जिन व्यक्तियों को आंखों का ऑपरेशन हुआ हो वह इसे ना करें।

11.2.4 काकी मुद्रा

कौवे के समान मुख की आकृति होने से इस मुद्रा को काकी मुद्रा कहते हैं। इसका वर्णन धेरंड संहिता में निम्नानुसार किया गया है–

काकचञ्चुवदास्येन पिबेद्वायुं शनैः शनैः।

काकी मुद्रा भवेदेषा सर्वरोग विनाशिनी।।

घे0सं0 3/86

अर्थात मुख को कौवे की चोंच के सामान करके उसके द्वारा धीरे–धीरे वायु का पान करें। यह सब रोगों को नष्ट करने वाली काकी मुद्रा कहलाती है।

विधि –

सर्वप्रथम किसी भी सुविधाजनक ध्यानात्मक आसन में सिर एवं मेरुदंड सीधा करके बैठ जाते हैं दोनों हाथों को ज्ञान मुद्रा में रख लेते हैं और आंखें बंद कर शरीर को शिथिल करते हैं तत्पश्चात आंख खोलकर दृष्टि को नासिकाग्र पर केंद्रित करते हैं कौवे के चोंच के समान मुख्य की आकृति बनाते हैं फिर जिह्वा के सहारे धीरे–धीरे मुख द्वारा वायु का पान करते हैं फिर कुंभक का प्रयोग करते हैं। तत्पश्चात नासिका से धीरे–धीरे श्वास छोड़ते छोड़ देते हैं। कुंभक की अवस्था में आंखें बंद रहती है।

लाभ –

- काकी मुद्रा से शरीर व मन में शीतलता का विकास होता है।
- मानसिक तनाव चिंता कम होती है।

- समस्त प्रकार की बीमारियां दूर होती है।

सावधानियां –

- काकी मुद्रा का अभ्यास प्रदूषित वातावरण में नहीं करना चाहिए। ठंड के मौसम में भी इसका अभ्यास नहीं किया जाता है।
- गुड़ानाल में होने अथवा बवासीर से पीड़ित व्यक्ति इसका अभ्यास न करें।

11.2.5 योग मुद्रा

योग मुद्रा शब्द 'योग' और 'मुद्रा' शब्दों के मिलने से बना है यह अभ्यास कुंडलिनी जागरण में सहायक इसलिए इसे योग मुद्रा कहा गया है।

विधि –

सर्वप्रथम पद्मासन में बैठते हैं यहां दोनों पैरों की एड़ी का दबाव बृहदांत्र एवं रीढ़ की हड्डी एवं अंतिम निचले छोर (संक्रम) पर पड़ता है कमर, रीढ़ एवं गर्दन सीधी रहेंगे अब दोनों को पीछे ले जाकर दाहिने हाथ से बाएं हाथ की कलाई को पकड़ते हैं। गहरी श्वास लेते हैं। तत्पश्चात श्वास छोड़ते हुए आगे की ओर झुकते हुए ललाट को जमीन से सटाने का प्रयास करते हैं। कुछ देर के पश्चात लेते हुए श्वास पुनः वापस आ जाते हैं।

लाभ–

योग मुद्रा के प्रमुख लाभ निम्नलिखित हैं–

- अभ्यास से मध्यपटल पेशी सबल होता है।
- उधर स्थित सभी अंग अपने स्थान पर बने रहते हैं।
- नाड़ी संस्थान, खासकर कटित्रिक नाडिया सबल बनती है।
- कोष्ठबद्धता कम करने में सहायक होता है।
- प्रजनन अंग संबंधी रोगों में भी लाभदायक होता है।
- कुंडलिनी शक्ति के जागरण में सहायक होता है।

सावधानियां –

अंग मुद्रा में निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए मुद्रा का अभ्यास करते समय खासकर ललाट को भूमि पर सटाते समय पेट को झटके के साथ न झुकाए। अभ्यास में अभ्यास धीरे–धीरे शुरू करें। प्रारंभ में यथासंभव जितना झुक सकते हैं वहीं पर थोड़ी देर रुके अपने आप मेरुदंड में झुकाव बढ़ता जाएगा। आरंभ में 5 से 10 सेकंड तक ही अपनी स्थिति में रुके तत्पश्चात धीरे–धीरे समय बढ़ाते जाएं शुरू में इस अभ्यास को 3 से 5 बार दोहराए।

11.2.6 मातड़िनी मुद्रा

इसका वर्णन धेरंड संहिता में निम्नानुसार किया गया है–

कण्ठमग्नेजले स्थित्वा नासाभ्यां जलमाहरेत्।

मुखात्रिर्गमयेत्पश्चात् पुनर्वक्त्रेण चाहरेत्।। 3/88 घे.सं.

नासाभ्यां रेचयेत् पश्चात कुर्यादेवं पुनः पुनः।

मातन्गिनी परा मुद्रा जरामृत्यू विनाशिनी।। 3/89 घे.सं.

विरले निर्जने देशे स्थित्वा चौकाग्रमानसः।

कुर्यान्मातग्ङिनी मुद्रां मातन्गइव जायते।। 3/90 घे.सं.

यत्र यत्र स्थितो योगी सुखमत्यन्तपश्नुते।

तस्मात् सर्व प्रयत्येन साधयेत् मुद्रिकांपराम्।। 3/91 घे.सं.

अर्थ गले तक जल में खड़े होकर नासिका द्वारा जल खींचकर मुख से जल को बाहर निकालना चाहिए और फिर मुख से जल भरकर नासिका के द्वारा निकाले। यह क्रिया बार–बार करें। यह मातंड़िनी नाम की मुद्रा है।

विधि –

सर्वप्रथम गले तक जेल में बैंठें। अब सिर को झुका कर नाक से पानी खींचे इस क्रिया से जब पानी मुहँ पर पहुंच जाए तब मुंह द्वारा पानी बाहर निकाल दें। इस तरह अब मुंह से पानी खींचकर नाक से बाहर निकाले। पुनः नाक से पानी खींच यह क्रिया क्षमतानुसार दोहराए।

लाभ –

- इस मुद्रा के अभ्यास से साधक को आनंद की प्राप्ति होती है।
- इसके सिद्ध होने से जरा मरण का भय नहीं होता।
- इस मुद्रा को करने से सब प्रकार के सुख मिलते हैं।
- इससे व्यक्ति शक्तिशाली व बलवान होता है।

सीमाएं – यह अभ्यास सावधानीपूर्वक तथा एकांत स्थान में एकाग्रचित्त होकर करना चाहिए।

11.2.7 भुजङ्गिनी मुद्रा

इसका वर्णन धेरंड संहिता में निम्नानुसार किया गया है–

वक्त्रं किञ्चित्सुप्रसार्य चानिलं गलया पिवेत्।

सा भवेद् भुजन्गिी मुद्रा जरामृत्युविनाशिनी।। 3/92 घे.सं.

यावच्च उदरे रोगमजीर्णादि विशेषतः।

तत्सर्वनाश्येदाशु यत्र मुद्रा भुजन्गिनी।। 3/93 घे.सं.

अर्थ– मुख को फैलाकर, खोलकर कंठ से वायु का पाठ करें। यह भुजङ्गिनी मुद्रा कहलाती है। इससे सिद्ध होने पर जरा मृत्यु का नाश होता है। इससे अजीर्णादि सभी उदर रोग नष्ट हो जाते हैं।

विधि –

सर्वप्रथम किसी भी ध्यानात्मक आसन में बैठे। पीठ गर्दन सीधी रखें। आंखें बंद करें तथा संपूर्ण शरीर विशेषकर पेट को शिथिल करें। ठुड्डी को थोड़ा आगे और ऊपर की ओर लाएं। मुंह को पूरी तरह खोलें व कंठ से वायु खींचते हुए उदर में संचित करें। जिस तरह पानी गटका जाता है। वायु को फेफड़े में कम से कम रखने का प्रयास करें। उदर को अधिक से अधिक फैलाए। जब तक आराम से संभव हो, वायु को उदर में रोके और फिर डकार लेते हुए उसे बाहर निकाल दें।

लाभ –

- उदर रोग संबंधी विकारों का नाश करता है।
- अजीर्ण रोग दूर होते हैं। पाचन संस्थान मजबूत होता है।
- पाचक रस उत्पन्न करने वाली ग्रंथियों एवं अत्र नलिका की दीवारों को नवजीवन प्रदान करता है।
- मसूड़े और मुंह की भीतरी स्वास्थ्य के रोगों में लाभदायक है तथा गैस्ट्रिक, अपचन और अल्सर इत्यादि रोगों में अत्यंत लाभदायक है । निष्क्रिय उदर वायु का निष्कासन होता है।

सावधानियां –

स्वास्थ संबंधी परेशानी होने पर अधिक समय तक श्वास भीतर नहीं रोकने चाहिए व उचित निर्देशन पर यह अभ्यास करना चाहिए।

11.2.8 तड़ागी मुद्रा

इसका वर्णन धेरंड संहिता में निम्नानुसार किया गया है–

उदरंपश्चिमोत्तानं कृत्वा व तड़ागाकृतिः।

ताड़ागी सा परामुद्रा जरा मृत्यू विनाशिनी।। घे.सं.3/73

अर्थ पश्चिमोत्तानासन में बैठे और पेट को इस प्रकार फुलाए मानो उसके भीतर पानी भरा हो यह एक महत्वपूर्ण मुद्रा है। जिससे बुढ़ापे एवं मृत्यु का भय दूर हो जाता है।

विधि –

पैरों को शरीर के सामने फैला कर बैठ जाएं और पंजों के बीच थोड़ी दूरी रखें पूरे अभ्यास के दौरान भी पैर सीधे रहने चाहिए सिर और मेरुदंड को सीधा रखते हुए हाथों को घुटनों पर रखें आंखों को बंद करें और पूरे शरीर को विशेषकर उदर क्षेत्र को विश्राम की स्थिति में लाएं आगे की ओर झुककर पैरों के अंगूठे एवं तर्जनियों से पकड़ ले। सिर को सामने की ओर रखें। उदर की पेशियों को पूरी तरह फैलाते हुए धीरे–धीरे गहरी सांस ले। फेफड़ों पर बिना किसी प्रकार का जोर डाले श्वास को जितनी देर तक आराम से हो सके भीतर रोके। उदर को शिथिल करते हुए धीरे–धीरे गहरी सांस छोड़ें। पैरों के अंगूठे को पकड़े रखे 10 बार श्वसन करें। उसके बाद अंगूठे को छोड़ दें और प्रारंभिक स्थिति में वापस आ जाए। यह एक चक्र हुआ। पुनः धैर्य पूरक के साथ यह क्रिया प्रारंभ कर तीन से पांच आवृत्ति करें।

लाभ–

- उदर संबंधी सभी रोग नष्ट होते हैं।
- पेट लचीला होता है तथा पाचन तंत्र सुचारू होता है।
- तड़ागी मुद्रा मध्यपट और श्रोणी तल में संचित तनाव को दूर करती है। इन क्षेत्रों में रक्त संचार को सुचारू बनाती है।
- यह मणिपुर चक्र के प्रति सजगता बनाती है

सीमाएं – हर्निया या भ्रंश पीड़ित व गर्भवती महिलाओं को यह अभ्यास नहीं करना चाहिए।

11.2.9 अश्विनी मुद्रा

इसका वर्णन घेरण्ड संहिता में निम्नानुसार किया गया है–

आकुंचयेद् गुदाद्वारं प्रकाशयेत् पुनः पुनः।

सा भवेदश्विनीमुद्रा शक्तिप्रबोधकारिणी।। घे.सं. 3/82

अर्थात गुदाद्वार का बार–बार संकोच और प्रसार करें जहां अश्विनी मुद्रा कहलाती है।

विधि –

किसी भी ध्यानात्मक आसन में सिर मेरुदंड सीधी करके बैठ जाते हैं दोनों हाथ ज्ञान मुद्रा में रख लेते हैं तत्पश्चात गुदा को संकुचित करके पुनः उसको ढीला छोड़ देते हैं। गुदा को सुकोड़ने और फैलाने की क्रिया लयबद्धता के साथ की जाती है। प्रयत्न किया जाता है कि केवल गुदाद्वार का संकुचन होना चाहिए।

लाभ –

- गुदा के स्नायु पर नियंत्रण स्थापित हो जाता है।
- गुदाद्वार संबंधी रोग होने की संभावना समाप्त हो जाती है।

11.3 सारांश–

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् समझ में आया कि मुद्राएं साधक की सिद्धि में कितना महत्वपूर्ण स्थान रखती है। मुद्राओं का जहाँ साधना की दृष्टि में महत्व है, वहाँ उनका भौतिक दृष्टि से चिकित्सीय प्रयोग भी हितकर है। मुद्राएं शारीरिक स्थिरता देने वाली तथा चित्त का नियंत्रित करने वाली है, इनका अभ्यास शरीर की अनैच्छिक क्रियाओं को वश में लाता है तथा प्राण ऊर्जा को जागृत कर साधना की उच्च भूमि की ओर अग्रसर करता है। अतः स्पष्ट है कि मुद्राओं का मुख्य उद्देश्य कुण्डलिनी जागरण कर समाधि की प्राप्ति करता है।

मुद्रा के अभ्यास से काम, क्रोध, मोह, लोभ आदि कषायों से निवृत्ति होकर चित्त में पवित्रता आती है। साधक भाव से रहित होकर सम्पूर्ण सृष्टि में आत्मभाव देखता है तथा धीरे–धीरे साधक चरम लक्ष्य कैवल्य की प्राप्ति मुद्रा के अभ्यास से सहज रूप में करता है।

11.4 अभ्यास प्रश्न–

1. मुद्रा से आप क्या समझते है? इनके उद्देश्यों की विस्तारपूर्वक चर्चा कीजिये।
2. मुद्रा का अर्थ समझाते हुये इनके महत्व पर चर्चा कीजिये।
3. महामुद्रा व विपरीतकरणी मुद्रा की व्याख्या करते हुये उनके उद्देश्यों पर प्रकाश डालिये।

11.5 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची–

6. घेरण्ड संहिता – स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती , योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर बिहार, भारत
7. आसन , प्राणायाम, मुद्रा बंध – स्वामी सत्यानन्द सरस्वती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर बिहार, भारत
8. योगासन विज्ञान – धीरेन्द्र ब्रम्हचारी, धीरेन्द्र योग प्रकाशन, नई दिल्ली
9. हठयोग प्रदीपिका– स्वात्मारामकृत संस्करणकर्ता – स्वामी दिगम्बर जी , कैवल्य धाम लोनावाला
10. योग विज्ञान – स्वामी विज्ञानान्द सरस्वती, योग निकेतन ट्रस्ट मुनि की रेती, ऋषिकेश, उत्तराखण्ड

इकाई. 12– घेरण्ड संहिता में प्रत्याहार, धारणा और ध्यान की अवधारणा। हठ प्रदीपिका में नादानुसंधान की अवधारणा और लाभ नादानुसंधान की चार अवस्थाएं

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 घेरण्ड संहिता में प्रत्याहार

12.3 धारणा

12.4 ध्यान

12.5 नादानुसंधान

12.6 सारांश

12.7 प्रश्न

12.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

12.0 उद्देश्य

- इस इकाई में आप प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, साधना के विषय में सामान्य जानकारी प्राप्त करेंगे।
- प्रत्याहार, धारणा, ध्यान की साधना की विभिन्न विधियों को समझ सकेंगें।
- प्रत्याहार, धारणा, ध्यान से अपने जीवन में परिर्वन ला सकेंगे।
- नाद का अर्थ एवं उसके भेद के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- नादानुसंधान के महत्त्व तथा लाभों से परिचित हो सकेंगे।

12.1 प्रस्तावना

अष्टांग योग के प्रथम पाँच सोपानो यम, नियम, आसन, प्राणायाम एवं प्रत्याहार की साधना से साधक अपने शरीर एवं मन को दृढ़ बनाता है। शरीर एवं मन ही साधन है। इन दोनों के सध जाने के बाद लक्ष्य प्राप्ति सरल हो जाती है। इस इकाई में हम अष्टांग योग के अंग– धारणा, ध्यान की मुख्य विधियों तथा उनके अभ्यास की चर्चा करेंगे। साथ ही हठयोग के प्रमुख अंग नादानुसंधान की विशेषताओं को जान सकेगे।

12.2 घेरण्ड सहिता में प्रत्याहार

प्रत्याहार शब्द दो शब्दो के मेल से बना है प्रति और आहार। प्रति का अर्थ विपरीत और आहार का अर्थ है भोजन यहाँ भोजन से तात्पर्य इन्द्रियों के भोजन से है। इन्द्रियों का भोजन क्या है? आँखों के लिए दृश्य, कानों के लिए ध्वनि, नाक के लिए गंध, जिह्वा के लिए स्वाद और त्वचा के लिये स्पर्शादि ही भोजन है। ब्रह्म परिवेश की जो वस्तुएं इन इन्द्रियों के आहार के स्रोत, वे विषय कहलाती है। ये विषय ही इन्द्रियों के मुख्य आधार होते है। इन्द्रियाँ विभिन्न प्रकार की सूचनाएं और संवेदना मन में इकट्ठा कर उसे मस्तिष्क को उपलब्ध कराती रहती है। यह क्रम सदैव चलता रहता है। इतना कि हमारा मस्तिष्क सब कुछ त्याग कर सदैव विषयों में ही लीन रहता है।

जैसे तीसरे प्रहर में सूर्य अपनी प्रभा को सिमेटने लगता है। ऐसे ही योगी मन के विकारो को प्रत्याहार द्वारा नियन्त्रित करता है। ऐसे ही योगी मन के विकारो को प्रत्याहार द्वारा नियन्त्रित करता है। वह कछुवे के समान अपनी इन्द्रियों को संकुचित कर उन्हें आत्मोन्मुख करने का प्रयत्न करता है। जिस

प्रकार गोपालक वन में विचनण करती हुई गायों को लेकर सायंकाल वापिस गाँव की ओर लौटता है, उसी भाँति विषय रूपी वनों में संलिप्त इन्द्रियों को वहाँ से हटाकर उन्हें अन्तर्मुख करने का नाम प्रत्याहार है, जैसे मधुमक्खियाँ रानी मक्खी के बैठने पर बैठती और उसके उड़ने पर उड़ने लगती है वैसे ही इन्द्रियाँ चित्त के अधीन होकर कार्य करती है।

चित्त जब यम–नियम, आसन, प्राणायाम के अभ्यास से बाहर के विषयों से विरक्त होकर समाहित होने लगता है तब उसका अनुसरण करती हुई इन्द्रियों भी अपने व्यापार को रोक देती है। चित्त की एकाग्रता के कारण इन्द्रियों की अपने विषयो में प्रवृत्ति न होना ही इन्द्रिय जय है।

प्रत्याहार का अर्थ है इस प्रक्रिया को रोकना। इन्द्रियों पर अपना नियंत्रण स्थापित करना। महर्षि पतंजलि ने प्रत्याहार की परिभाषा इस प्रकार दी है–

स्वविषया सम्प्रयोगे चित्तस्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः

पा0यो0द0 2–154

अर्थात अपने विषयों से हटकर इन्द्रियों का चित्त के स्वरूप में स्थित हो जाना ही प्रत्याहार है तात्पर्य यह कि इन्द्रियों की विषयों में लीन रहने की अवस्था की समाप्ति हो और वे साधक के वश में हो जाये।

महर्षि व्यास–

इन्द्रियगण भी चित्तनिरोध होने पर निरुद्ध होते है, यही प्रत्याहार है।

स्वामी विवेकानन्द –

यदि तुम चित्त को सब विभिन्न आकृतियाँ धारण करने से रोक सको, तभी तुम्हारा मन शांत होगा और इन्द्रियाँ भी मन के अनुरूप हो जायेगी। इसको प्रत्याहार कहते है।

इन्द्रियों की बहिर्मुखी प्रवृत्ति के कारण मनुष्य बाहर देखता है, अपने अन्दर नही। कोई बिरला धीर पुरुष अमृत की कामना करता हुआ आँखों अर्थात् इन्द्रियो को बन्द करके अन्तर्मुख होकर प्रत्याहार द्वारा आत्मा को देखता है। हठयोगियों ने इसे प्राप्त करने के लिए मन को एकाग्रचित्त कर हठयोग साधना का मार्ग बतलाया है।

इन्द्रियो का स्वभाव है विषयों की ओर जाना। मन के साथ इन्द्रियाँ विषयों का ज्ञान नहीं करा सकती। जैसे व्यवहारिक जगत में हमें बहुत से शब्द प्रवणेन्द्रिय से टकराते है, पर सुनाई नहीं पड़ते। ऐसा इसलिये होता है क्योंकि उस समय मन का संयोग इन्द्रियों से नहीं होता है। आँखे खुली होने पर

भी देख नही पाती, कान जागे हुये भी कुछ सुन नही सकते, मन की इच्छा न होने पर स्वादिष्ट व्यंजन अस्वादिष्ट लगते है क्योकि मन का संयोग इन्द्रियों से नही है।

निरंकुश इन्द्रियाँ दुखदायी होती है परन्तु संयमित इन्द्रियाँ सधे हुये घोड़े के समान आनन्दमयी होती है। इन्द्रियाँ निग्रह का संदेश गीता में बड़े ही सुन्दर व सरल शब्दों में किया है।

यदा संहारते चायंकूर्मोडड.गानीव सर्वशः।

इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।।

अर्थात् जिस प्रकार कछुआ अपने अंगो को सब ओर से समेट लेता है। सिकोड़ लेता है, उसी प्रकार जब मनुष्य सब ओर से इन्द्रियों को उसके बाह्य विषयो से समेट लेता है, अर्थात् अपने अन्दर कर लेता है, तब उसकी बुद्धि स्थिर है, ऐसा समझ लेना चाहिए। यही प्रत्याहार है।

प्रत्याहार की व्याख्या भक्ति सागर में इस प्रकार दी गई है–

विषय ओर इन्द्री जो जीवै। अपने स्वादन को ललचावै।।

तिनकी ओर न जाने देई। प्रत्याहार कहावे एई।।

प्रत्याहार पाँचवा अंग है। योगी को इसकी अत्यन्त आवश्यकता है। यदि इन्द्रिय अपने स्वाद को प्राप्त करने के लिये अपने विषय की ओर भागती है तब इन्द्रियो को उस ओर न जाने को प्रत्याहार कहते है। अतः इन्द्रियों को उनके विषयो से हटाकर बार–बार आत्मा की ओर ले जाना चाहिये।

जिस प्रकार माँ बच्चों को खिलाती है और बालक वस्तु की तरफ ललचाता है। यह दशा मन व इन्द्रियों की है क्योंकि बिना परिणाम को जाने हुए यह हर कही भागने लग पड़ती है जैसे कि बच्चा साँप, आग या किसी तेज शस्त्र को पकड़ने के लिये या अन्य किसी कष्टकारक वस्तु के लिये बिना उसके परिणाम को जानते हुए भागता है। परन्तु माँ को पता है, इसलिए वह बार–बार उसको खींचती है व धीरे–धीरे उसको इसकी जानकारी देती है। इसलिए बुद्धिरूपी ज्ञान से इन्द्रियों को उनके विषयों से हटाकर अपनी ओर खींचना चाहिए ताकि वह संसारिक भोगो में न पड़े। चरणदास जी इसके प्रति कहते है–

ऐसे ही बुधि ज्ञानसों, पाँचो इन्द्री रोग।

विषय ओर सो फेरिए, लहै न अपना भोग।।

ज्यों–ज्यों इनको भोग दे, परबल होती जाहिं।

बिना भोग होनी नही, वह बल रहै जु नाहिं।।

ज्यों–ज्यों इन्द्रियों को उनके विषय भोगो की प्राप्ति होती है वह नित्यप्रति बलवान होती जाती है परन्तु जब उनको भोग की वस्तुएँ नही मिलती तो वह उस बल से वंचित रह जाती है।

अतः यह आवश्यक है कि इन्द्रियों को वश में करना चाहिये, ताकि मन वश में हो जाए। ज्यों–ज्यों प्राण वश में होता जाता है, त्यों–त्यों मन वश में होता जाता है। जब इन्द्रियाँ वश में हो जाती है तब विषय की महत्ता समाप्त हो जाती है। इसलिए पतंजलि जी की तरह चरणदास जी भी प्राण साधना, प्रत्याहार से पूर्व बतलाते हैं क्योंकि प्राणायाम ही स्थिरता व हल्कापन प्रदान करता है–

ज्यों ज्यों होवे प्राणवश, त्यों त्यों मनवश होय।

ज्यों ज्यों इन्द्री घिर रहै, विष जाय सब होय।।

ताते प्राणायाम करि, प्राणयामाहि सार।

पहिले प्राणायामक, पीछे प्रत्याहार।।

घेरण्ड संहिता में इसका विवरण इस प्रकार से दिया है–

इन्द्रियों के माध्यम से मन या चित्त को संयमित नियंत्रित करने की प्रक्रिया प्रत्याहार कहलाती है। कहा गया है कि अगर हम अपने मन को इन्द्रियों की अनुभूति से अलग कर दें तो इन्द्रियों का अपने विषयों की तरफ जाना बंद हो जाता है। कहा गया है कि इन्द्रियाँ ही मन में चंचलता उत्पन्न करती है। मन में किसी प्रकार की ब्राह्यय नकारात्मक या सकारात्मक भावना इन्द्रियों द्वारा ही उत्पन्न होती है। महर्षि घेरण्ड कहते हैं कि मन का संतुलन नहीं बिगड़ना चाहिए अर्थात् किसी भी परिस्थिति में धैर्य नहीं खोना चाहिए और सजगता का अभाव नहीं होना चाहिए। इसी धैर्य की प्राप्ति के लिए वे अपने शिष्य चण्डकपालि को कहते है–

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि प्रत्याहारकमुत्तमम्।

यस्य विज्ञानमात्रेण कामादिरिपुनाशनम्।।

यतो यतो निश्चरति मनश्चंचलमस्थिरम्।

ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत्।।

पुरस्कारं तिरस्कारं सुश्राव्यं वा भयानकम्।

मनस्तमान्नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत्।।

सुगन्धे वाऽपि दुर्गन्धे मनो घ्राणेषु जायते।

तस्मात्प्रत्याहरेदेतदात्मन्येव वशं नयेत्।।

मधुराम्लकातिक्तादिरसं गतं यदा मनः।

तस्मात्प्रत्याहरेदेतदात्मन्येव वशं नयेत्।।

घे०सं० 4/1 2 3 4 5

अर्थात् महर्षि घेरण्ड ने कहा कि अब मैं प्रत्याहार का वर्णन प्रारम्भ करता हूँ। प्रत्याहार के करने से मनुष्य के शत्रुओं जैसे कामना, तृष्णा, इच्छा आदि का नाश होता है अर्थात् मान–अपमान आदि का मन में कोई प्रभाव न पड़े। मन का स्वभाव चंचल है इसलिए जब कभी यह चंचल मन इधर–उधर भागने का प्रयत्न करें और अपना मुख्य कार्य अर्थात् एकाग्रता को खोने लगे तो उसे प्रयास कर वापस लाना चाहिए अर्थात् आत्मा के वश में करे। प्रिय तथा अप्रिय वचनों, सुगन्ध तथा दुर्गन्ध आदि आदि से मन को हटाकर वश में करें। अर्थात् अपनी सीमा का ख्याल करते हुए उसे स्वयं के नियंत्रण में रखे उसे यहाँ–वहाँ भटकने न दें। किसी भी प्रकार के इस के स्वाद जैसे मधुर, अम्ल, तिक्त आदि की तरफ आकर्षित न हो। यही प्रत्याहार हैं।

महर्षि घेरण्ड कहते हैं कि बहुत से लोग, अपनी इन्द्रियों को भीतर समेटना, जिस प्रकार कछुवा अपने अंगो के कवच के अन्दर समेटता है, प्रत्याहार समझते हैं किन्तु यह प्रत्याहार कछुवा अपने अंगो को कवच के अन्दर समेटता है, प्रत्याहार समझते हैं किन्तु यह प्रत्याहार नहीं है बल्कि प्रत्याहार विचारों को बाँधने की शक्ति के बाह्य विषयों की ओर विचारों का जो प्रवाह है उसे बाँध देना, रोक देना ही प्रत्याहार है। यह अवस्था अन्तर्मुखता की है। प्रत्याहार के अभ्यास से इन्द्रियाँ वशीभूत हो जाती है, तब मन स्वतः नियन्त्रण में आ जाता है। प्रत्याहार के अभ्यास से दुःख के मूल कारण का समूल नाश हो जाता है।

यम नियम आसन एवं प्राणायाम की क्रिया द्वारा अभ्यास करते–करते मन एवं समस्त इन्द्रियाँ परिकृत हो जाती है। तत्पश्चात् इन्द्रियों की बाह्य वृत्ति को सब ओर से हटाकर, एकत्रित करके मन में लय करने के अभ्यास को 'प्रत्याहार' कहते है। इन्द्रियों का विषयों से अलग होना ही प्रत्याहार है।

जिस प्रकार साधक अपने साधना काल में इन्द्रियों, इन्द्रियों के विषयों का परित्याग कर देता है और चित्त को अपने इष्ट में एकाकार कर देता है, तब उस समय जो चिन्तन इन्द्रियो के विषयों की तरफ न जाकर चित्त में समाहित हो जाता है, वही प्रत्याहार सिद्धि की पश्चान है यदि उस क्षण भी इन्द्रियाँ पूर्ववत् अभ्यास से इसके समक्ष बाह्य विषयों का चित्र दिखाती रहे, तो यह जानना चाहिए कि अभी प्रत्याहार सिद्ध नहीं हुआ है।

जिस तरह से मनुष्य की छाया चलने पर चलने लगती है रुकने पर रुक जाती है वैसी ही इन्द्रियाँ चित्त के अधीन रहकर कार्य करती है यही प्रत्याहार के अभिमुख होना है।

ततः परमा वश्यतेन्द्रियाणाम्।। 55।।

योगी–साधक जब प्रत्याहार की सिद्धि प्राप्त कर लेता है। तब समस्त इन्द्रियाँ उसके वश में जाती है वह जितेन्द्रिय हो जाता है। इन्द्रियों की स्वतन्त्रता का सदैव के लिये अभाव हो जाता है। प्रत्याहार की सिद्धि के पश्चात इन्द्रियजित् होने के लिए योगी को फिर अन्य किसी साधना की आवश्यकता नहीं रह जाती। यह तभी सम्भव है, जब चित्त एकाग्र हो जाता है तथा चित्त के निरोध होने पर समस्त इन्द्रियों का भी निरोध हो जाता है। यही इन्द्रियों की परमवश्यता है।

12.3 धारणा

देश बंधःचित्तस्य धारणा

(प0यो0 सूत्र 3/1)

नाभिचक्र, हृदय कपल आदि शरीर के भीतर देश और आकाश या सूर्य चन्द्रमा आदि देवता या कोई भी मूर्ति तथा कोई भी वस्तु बाहर के देश है उसमें से किसी एक देश में चित्त की वृत्ति को लगाने का नाम 'धारणा' है।

धारणा का अर्थ है– 'धारण करना' मन में जब किसी विषय को धारण करने की योग्यता आ जाए और कुछ देर तक उस विषय पर टिकने का अभ्यास हो जाये तो मन की वैसी अवस्था धारणा है। धारणा में मन का विचरण व स्थान सीमित और निश्चित रहता है। धारणा में अभ्यास से मानसिक शक्ति का विकास होता है। मानसिक एकाग्रता के लिये उत्तम साधन है।

अष्टांग योग के उपर्युक्त अंग का अभ्यास चित्त एकाग्र करने का उपाय कहा जा सकता है। इस प्रकार मन को स्थूल विषय से प्रारम्भ कर, सूक्ष्म लक्ष्य आत्मा–परमात्मा पर केन्द्रित करने को धारणा कहते है। धारणा, ध्यान की नींव है। जैसे–जैसे धारणा का अभ्यास परिपक्व होगा वैसे–वैसे ध्यान का अभ्यास भी साथ–साथ होने लगेगा।

यम, नियम, आसन, प्राणायाम एवं प्रत्याहार में द्वारा चित्तवृत्ति की चंचलता संयमित कर उसे शरीर के अन्दर या बाहर के किन्ही भी पदार्थो में इस तरह से आबद्ध कर देना चाहिये, जिससे कि वृत्ति मात्र से उसी स्थान–विशेष में एकाग्रतापूर्वक स्थित हो जाये अन्यत्र कहीं न जाये। यही धारणा है।

धारणा का अर्थ है मन को एक बिन्दु, एक वस्तु या एक क्षेत्र में बन्द करके रखना। एकाग्र अवधान का एक अच्छा उदाहण महाभारत में है। पाण्डवों को धनुर्विद्या की शिक्षा देते समय उनके गुरु द्रोणाचार्य ने उनसे पूछा कि वे कौन–सी वस्तु देख रहे है? अर्जुन ने कहा लक्ष्य में दिये गये पक्षी की आँख के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं दिख रहा है। यह एकाग्रता की धारणा काएक उदाहरण है।

जब मन किसी बिन्दु पर एकाग्र हो जाता है तो दृष्टि तीव्र हो जाती है। जब आँखें बन्द कर लेते है तब वस्तु, जो एक विचार, एक भाव या एक शब्द के रूप में भी हो सकती है, चेतना में तीव्रता के साथ प्रकट होती है। मन विचलित नहीं होता। यदि वह स्थिर नहीं होता है तो विक्षेप है। विक्षेप का अर्थ है दोलन धारणा में देश के अतिरिक्त अन्य किसी चीज की सजगता नही रहती है। धारणा के अनेक स्वरूप है महर्षि घेरण्ड संहिता के मुद्रा प्रकरण में पाँच धारणाओं का अभ्यास बताया है जो निम्न है–

1. पार्थिवी धारणा
2. आम्भसी धारणा
3. आग्नेयी धारणा
4. वायवीय धारणा
5. आकाशी धारणा

1. पार्थिवी धारणा–

पृथ्वी तत्व का वर्ण हरताल के समान 'ल' बीज, वर्ग आकार और ब्रह्म देवता है इसको योग बल से प्रकट कर हृदय में धारण करें तथा पाँच घड़ी पर्यन्त प्राण का निरोध (कुम्भक) करें। यह पार्थिवी मुद्रा अथवा अधोधारणा मुद्रा कहलाती है इसके सिद्ध होने पर साधक पृथ्वी को विजय करने वाला होता है। इस पृथ्वी धारणा को करने वाला साधक मृत्युन्जय और सिद्ध होकर पृथ्वी में विचरण करता है।

2. आम्भसी धारणा–

शेख, चन्द्र या कुन्द के समान शुभ्र वर्ण का जल होता है। इसका बीज मंत्र वकार या 'व' और देवता विष्णु है। इस तत्व धारणा को हृदय में धारण करके एकाग्रचित्त हो पाँच घड़ी तक कुम्भक द्वारा प्राण को धारण करें। यह आम्भसी धारणा नामक मुद्रा है। चिन्तामुक्त होकर, वायु को अन्दर खींचकर पाँच घड़ी तक कुम्भक लगायें और जल तत्व पर ध्यान करें। जल तत्व के गुणो, अवगुणो, यन्त्र और प्रतीक र ध्यान करें। इस धारणा द्वारा मनुष्य के सभी दुःख, ताप और पाप नष्ट होते है, अर्थात् भीतर की गरमी और आन्तरिक उत्तेजना हो जाती है। इस अभ्यास को करने से गहरे पानी में डूबने पर भी मनुष्य को हानि नहीं पहुँचती। यह एक महत्वपूर्ण मुद्रा है, और इसे

गोपनीय रखना आवश्यक है। अगर साधक इस विधि का वर्णन दूसरो को करता है अथवा इस विद्या को प्रकट करता है, तो उसकी सिद्धि नष्ट हो जाती है। यह मैं कहता हूँ।

3. आग्नेयी धारणा–

अग्नि का क्षेत्र नाभि स्थान है। इसका रंग लाल है। इसका यन्त्र त्रिकोण है। मन्त्र 'रं' और देवता रुद्र है। यह अग्नि तत्व तंजपुंज, युक्त दीप्तियुक्त और सिद्धिदायक है इसे योग बल से आविर्भूत कर एकाग्रचित्त से पाँच घड़ी कुम्भक द्वारा प्राण–धारण करें। यह आग्नेयी धारणा कहलाती है। इसके अभ्यास से काल का भय नहीं रहता और अग्नि से किसी प्रकार की हानि नहीं होती। इसे वैश्वानरी धारणा कहते है।

4. वायवीय धारणा–

वायु का रंग अन्जय या धुँए के रंग के समान हल्का काला होता है। इसका बीज मंत्र :'यं' यकार है। यह तत्व सत्व गुण वाला है योग–बल से इसका आविर्भाव होने पर एकाग्रचित्त सं कुम्भक द्वारा पाँच घड़ी तक वायु को धारण करें इस वायवीय धारणा नाम की मुद्रा के अभ्यास से साधक को आकाश–गमन की शक्ति प्राप्ति होती है और वायु से कोई नुकसान नहीं हो सकता।

5. आकाशी धारणा–

आकाश तत्व का वर्ण समुद्र के नीले, शुद्ध जल के समान है। इसका बीज मन्त्र हकार और देवता सदाशिव है। शान्त मन से प्राण–वायु को रोककर पाँच घड़ी तक कुम्भक करने से यह नभोधारणा सिद्ध होती है और यह मोक्ष के द्वार खोल देती है जो योग का ज्ञाता आकाशी धारणा को जानता है उसे मरण, प्रलय का दुःख नही होता है।

प्रत्याहार व धारणा में लगभग समानता है प्रत्याहार में इन्द्रियों के विषयों पर नियंत्रण पाने के लिये उन्हें अन्तमुर्खी बनाने का अभ्यास करना पड़ता है।

धारणा में पंचतत्वों में बारी–बारी ध्यान लगाकर शरीरस्थ उन्हें साध्य करने का विधान है। इन्द्रिय विकार से पंचभूत सम्बन्धी विकार पैदा होते है व पंचतत्वों पर विजय न होने के कारण पंचेन्द्रियां नियंत्रणहीन हो जाती है। अगर इन्द्रिजय की भावना नहीं होगी तो पंचतत्वों की साधना में विहन ही विहन होगे। इसलिए साधक को चाहिए कि विषय–विकार त्याग कर शुद्ध तन व मन के साथ प्रत्याहार व धारणा की साधना करें।

12.4 ध्यान

ध्यान–साधना भारतीय आध्यात्म विज्ञान का विशेष पहलू है, जिससे साधक अपने अन्दर विद्यमान सूक्ष्म रहस्यों को जान सकता है। यह सब कुछ मन की शक्तियों से सम्पन्न हो सकता है। मन की

शक्तियों को अपने जीवन में उजागर करने के लिए जिस प्रक्रिया को अपनाते हैं वही ध्यान है। ध्यान मन की शक्तियों को नष्ट होने से बचाता है। परेशान व अशान्त मन को शान्त करता है। मन की एकाग्रता बढ़ाता है। ध्यान सबके लिये समान रूप से उपयोगी है। ध्यान लगातार चिन्तन–मनन की एक क्रिया है– सरल शब्दों मे कहें तो चित्त को निरंतर सजगतापूर्वक एकाग्र रहने की क्रिया को ध्यान कहते हैं। ध्यान हमारे जीवन के साथ प्रतिपल जुड़ा हुआ है जब भी हमारे घर व परिवार के बड़े बुजुर्ग किसी कार्य को विधिवत सम्पन्न करने हेतु कहते है तो सर्वत्र यही वाक्य होता है भाई ध्यान से पढ़ना, ध्यान से चलना, प्रत्येक कार्य को ध्यान से करना । ध्यान जीवन का अपरिहार्य अंग है, जिसके बिना जीवन अधूरा है, और हम ध्यान के बिना अपने किसी भी भौतिक व आध्यात्मिक लक्ष्य में सफल नहीं हो सकते। ध्यान से ही हम सदा आनंदमय व शांतिमय जीवन जी सकते है।

अपने आंतरिक जीवन के साथ लय का व सामंजस्य स्थापित करना ही ध्यान है। ध्यान द्वारा ही चेतना का विकास, इन्द्रियों पर नियंत्रण तथा अपने ज्ञान व प्रकाश स्वरूप से सारूप्य स्थापित होता है।

ध्यान का लक्षण बताते हुए महर्षि पतंजलि ने योग दर्शन में बताया है–

तत्र प्रत्यैकतानता ध्यानम्

जहाँ चित्त को ठहराया जाए, इसी में वृत्ति का एक–सी बना रहना ही ध्यान है। ध्येय में चित्त वृत्ति का निरन्तर समान प्रवाह से लगे रहना, बीच में किसी अन्य प्रवाह का न आना, ध्यान यही स्वरूप है अर्थात् एक मात्र ध्येय की एक ही तरह की वृत्ति का प्रवाह गतिशील होना, उसके मध्य में किसी भी दूसरी वृत्ति का न उठना ही 'ध्यान' कहलाता है। चित्त–वृत्तियाँ अपने ध्येय में इस तरह से तल्लीन हो जाएँ, जैसे भ्रमर कमल पुष्प में लीन होने पर सबकुछ भूल जाता है तथा सूर्यास्त में कमल का मुख बंद होने पर स्वयं उसी में बंद हो जाता है। ऐसी तल्लीनता का होना ही ध्यान कहलाता है।

ध्यान करने से मन जब स्थिर हो जाता है आंतरिक शक्तियों को देखने में अधिक स्पष्टता और तीक्ष्णता आ जाती है। क्योंकि स्मरण मन जब पूर्वाग्रह से मुक्त होता है। कीचड़युक्त जल सूरज की चमक को प्रतिबिंबित नहीं कर सकता, केवल शुद्ध और शांत पानी ही सूरज की रोशनी को दर्शाता है। धारणा की अवस्था में धारणाकर्ता को स्वयं का, धारणा का विषय बनायी गयी वस्तु का तथा धारणा की प्रक्रिया का पृथक–पृथक सा अहसास बना रहता है। यहाँ धारणा की अवस्था जब प्रगाढ़ हो जाती है तो धारणा की प्रक्रिया का अहसास होना बन्द हो जाता है। उस अवस्था में धारणाकर्ता को स्वयं का तथा धारणा का विषय बनायी गयी वस्तु का अहसास बना रहता है। यही अवस्था ध्यान कहलाती है। जैसे– बोतल में तेल या पानी डालते है जब वह बूँद–बूँद करके गिरता है तो उसे धारणा जानना चाहिये और जब वह निरंतर धारा बनकर गिरता है वैसी स्थिति का नाम ध्यान है।

महर्षि घेरण्ड जी ने घेरण्ड संहिता में ध्यान की विधियाँ बतायी गयी है–

महर्षि घेरण्ड जी ने बताया जब ध्यान में प्रत्यक्ष अनुभूति होने लग जाये तब उस अवस्था को वास्तविक ध्यान कहा जाता है। जिस प्रकार हम अपनी आँखों के सामने एक पदार्थ को स्पष्ट देख सकते हैं, उसी प्रकार अगर हम अपने मन के सूक्ष्म अनुभवों को अन्तश्चक्षु के सामने मनःदृष्टि के सामने स्पष्ट कर सके, तो उसे ध्यान की स्थिति मान लेना चाहिये।

ध्यान अयास नहीं है। ध्यान एक स्थिति है, बिना किसी अवरोध के अनवरत गतिमान चेतना की स्थिति। मनुष्य संरचना के तीन मुख्य तत्व होते है– शरीर, मन, आत्मा महर्षि घेरण्ड जी तीन अवस्थाओं की चर्चा हुये कहते है–

स्थूलं ज्योतिस्थासूक्ष्मं ध्यानस्य त्रिविधं विदुः।

स्थूलं मूर्तिमयं प्रोक्तं ज्योतिस्तेजोमयं तथा।

सूक्ष्म बिन्दुमयं ब्रह्म कुण्डली पर देवता।। 1।।

अर्थात्– स्थूल ध्यान, ज्योतिर्ध्यान और सूक्ष्म ध्यान के भेद से ध्यान तीन प्रकार का होता है, स्थूल ध्यान वह कहलाता है, जिसमें मूर्तिमय इष्टदेव का ध्यान हो, ज्योतिर्मय ध्यान वह है, जिसमें तेजोमय ज्योतिरूप ब्रह्म का चिन्तन हो तथा सूक्ष्म ध्यान उसे कहते है, जिसमें बिन्दुमय ब्रह्म कुण्डलिनी शक्ति का चिन्तन किया जाय।

1. स्थूल ध्यान–

स्थूल ध्यान की दो विधियों का वर्णन महर्षि घेरण्ड ने किया है। पहली विधि है– हृदय स्थान या अनाहत चक्र पर ध्यान। दूसरी विधि है– ब्रह्मरन्ध्र या सहस्रार चक्र पर ध्यान।

अ– हृदय में 'गुरू' के स्थूल रूप पर ध्यान–

अपने हृदय पर ध्यान कीजिये। कल्पना कीजिये कि वहाँ एक बड़ा सागर अमृत से भरा हुआ है। उसके बीच में एक द्वीप है, जो रत्नों से भरा हुआ है और वहाँ की बालू भी रत्नचूर्णो की है। इस द्वीप में फलो से लदे अनेक वृक्ष है, जो द्वीप की शोभा बढ़ा रहे है। ये पुष्प द्वीप की खाइयों की भांति प्रतीत होते है। अनेकानेक सुगन्धित पुष्प मालती, मल्लिका, चमेली, केशर, चम्पा, पारिजात, स्थल, पद्म आदि बिखरे हुये है। द्वीप के कोने–कोने में इन पुष्पों की सुगन्ध फैली हुयी है।

इस द्वीप के मध्य में कल्पवृक्ष नामक पेड़ है। इसकी चार शाखायें चारो वेदो का प्रतिनिधित्व करती है। यह वृक्ष सुन्दर फल फूलों से लदा हुआ है। सम्पूर्ण द्वीप में कोयल पक्षी की मधुर बोली एवं भ्रमर के गुन्जन की ध्वनि सुनाई दे रही है। इस द्वीप में एक चबूतरा है। यह चबूतरा, हीरे,

नीलम आदि अनेक प्रकार के रत्नो से सजा हुआ है। पुनः कल्पना कीजिये उस चबूतरे पर आपके इष्ट देव बैठे हुये है। गुरु द्वारा बतायी गयी विधि के अनुसार इष्ट पर ध्यान कीजिये।

इष्ट देव यदि गुरु है, तो उसके स्वरूप को देखिये। उन्होने शरीर में जो वस्तुएँ धारण की हुई है, जैसे वस्त्र, माला इत्यादि, उन पर अपनी एकाग्रता को केन्द्रित कीजिये। इस विधि से विद्वान व्यक्ति अपने गुरु के स्थूल रूप पर ध्यान करते है।

ब– सहस्रार में गुरु के स्थूल रूप पर ध्यानः–

सहस्रार प्रदेश में महापद्य है, जिसमें एक हजार दल है और उसके मध्यवर्ती प्रदेश में बारह दलो वाला एक छोटा सा कमल है। इन दलो का रंग सफेद और तेज पूर्ण है। इन बारह दलो की शोभा बढ़ाने वाले मन्त्र है– "ह, स, क्ष, म, ल, द, र, य, ह, ख, फ्रें।" कमल के केन्द्रीय भाग में तीन रेखायें अ, क, घ, वर्ण सहित है। ये तीन रेखाये मिलकर एक त्रिशूल की रचना करती है।

इस त्रिभुज के कोणो का सांकेतिक शब्द 'हं, धं और लं' है। त्रिभुज के मध्य में प्रणव मंत्र ऊँ स्थित है। ध्यान के समय सहस्रार में देखने का प्रयास कीजिये कि सहस्र दल कमल के मध्य में ध्वनि और प्रकाश के प्रतीकात्मक रूप में हंसो का एक जोड़ा बैठा है। हंसो का यह जोड़ा गुरु पादुकाओं का प्रतीक है, श्वेत पद्य मे बैठे हुये गुरु के दो हाथ और तीन नेत्र है। वे श्वेत वस्त्र तथा श्वेत पुष्पों से बनी माला पहले हुए है और उनके वाम भाग में लाल वस्त्र धारण किये उनकी शक्ति सुशोभित हैं। इस प्रकार गुरू का ध्यान करने से स्थूल ध्यान की सिद्धि होती है।

2. ज्योति ध्यान–

मूलाधारे कुण्डलिनी भुजग्डाकाररूपिणी।

तत्र तिष्ठति जीवात्मा प्रदीप कलि का कृतिः

ध्यायेत्तेजोमयं ब्रह्म तेजोध्यानं परात्परम्।। घे. सं.6/16

भ्रूवोर्मध्ये मनऊर्ध्वे यत्तेजः प्रणवात्मकम्।

ध्यायेज्जवालावलीयुक्तं तेजोध्यानं तदेव हि।। धे. सं.6/17

अर्थ–

मूलाधार में सर्पाकार रुपिणी कुण्डलिनी है। यही दीपक की लौ के रूप में आत्मा का निवास है। यहाँ तेजोमय परात्पर ब्रह्म का ध्यान करना ही तेजोध्यान, अर्थात ज्योति ध्यान है।

भौहे के मध्य और मन के उर्ध्व भाग में जो प्रवणात्मक ज्योति है, उस ज्यालामुखी युक्त ज्योति का ध्यान ही ज्योतिर्ध्यान कहलाता है।

3. सूक्ष्म ध्यान –

महर्षि घेरण्ड ने राजा चण्डकपालि को सूक्ष्म ध्यान के बारे में बताया। बहुत ही भाग्य से योगी को कुण्डलिनी शक्ति का जागरण होता है। वह आत्मा के साथ संयुक्त होकर और नेत्र–रन्ध्र से निर्गत होकर उर्ध्व भाग में स्थित राजमार्ग नामक स्थान पर विचरण करती है, परन्तु सूक्ष्मतत्व और चन्चलत्व के कारण वह दिखाई नही देती है। शाम्भवी मुद्रा का अभ्यास करते हुये योगी कुण्डलिनी का ध्यान करे, यही सूक्ष्म ध्यान कहलाता है, जो कि अत्यन्त गोपनीय है और देवताओं के लिये भी दुर्लभ है। स्थूल ध्यान से ज्योति ध्यान सौ गुना श्रेष्ठ है और ज्योति ध्यान से सूक्ष्म ध्यान लाख गुना विशिष्ट है इस विशिष्ट ध्यान की सिद्धि होने पर आत्म साक्षात्कार होता है।

ध्यान के लाभ–

- ध्यान योगाभ्यास का सबसे महत्वपूर्ण घटक है।
- यह साधक को नकारात्मक भावनाओं से दूर रखता है, भय, क्रोध, अवसाद, चिंता दूर करता है और सकारात्मक भावनाएं विकसित करने में सहायता करता है।
- मस्तिष्क को शांत और निश्चल रखता है।
- एकाग्रता, स्मृति, विचारो की स्पष्टता और मनोबल को बढ़ाता है।
- पूरे शरीर और मस्तिष्क को पर्याप्त आराम देते हुये उन्हे तरोताजा करता है।
- ध्यान आत्म अनुभूति की और ले जाता है।

सावधानियाँ–

- ध्यान के अभ्यास किसी गुरु, शिक्षक के मार्गदर्शन में ही शुरू करें।

12.5 नादानुसंधान

ऋषियों ने समाधि व्यवस्था में देखा था कि प्रकृति के अन्तराल में निरन्तर एक सूक्ष्म ध्वनि निःसृत होती रहती है जो परमाणुओं की गति उत्पन्न करके सृष्टि की रचना और संचालन का महान उत्तरदायित्व निभाती रहती है। इस प्रारम्भिक ध्वनि का नाम उन्होंने ऊँ दिया। यह ओंकार ध्वनि जिस

तत्व के साथ सम्पर्क स्थापित करती है। उसी तरह की स्वर लहरियाँ उत्पन्न होती रहती है। इन स्वर लहरियो के श्रवण को ही नाद योग की संज्ञा दी गई है।

प्राचीन काल से ही ऋषि इस नाद योग का आध्यात्मिक उत्थान के लिये एक उच्च साधना के रूप में अनुभव करते रहते है। जिस तरह से संगीत को सुनकर सर्प की नस–नाड़ियों में एक विद्युत लहर प्रवाहित होती है और वह उसमें तन्मय हो जाता है। इसी तरह से सर्प रूपी मानव मन भी अपने अन्तर की स्वरलहरियों से इतना तरंगित होता है कि साधक के शरीर में एक दिव्य झंकार निरंतर तुनाई देती है। उसके रोम–रोम में विद्युत का संचार होने लगता है और वह अपनी सारी–सारी चपलताएं भूलकर इन्ही स्वर लहरियों में खो जाता है।

नाद को स्वर लहरियों में सरल रूप से एकाग्र हुआ मन बिखरी हुयी शक्तियों को एकत्रित करने का महान कार्य सम्पादन करता है। आध्यात्म मार्ग के पथिक जानते है कि मन की एकग्रता से इतनी असाधारण शक्ति विकसित की जा सकती है जिसकी तुलना संसार की कोई भी बड़ी से बड़ी शक्ति नहीं कर सकती। नाद योग के साधक को यह एकाग्रता सहज ही प्राप्त हो सकती है और वह शक्ति पुंज के रूप में परिणित होकर उच्च आध्यात्मिक अनुभूतियों का आगार ही बन जाता है।

नाद का अर्थ है ध्वनि। घोष और शब्द भी उसी के पर्याय है। शब्द अथवा नाद एक है और वह विभिन्न अनुभूतियों के साथ अनेक रूप हो जाता है। देखते है कि कोई नदी अपने उद्‌गम स्थल से अकेले चलती है, किन्तु मार्ग में उसकी अनेको शाखा– प्रशाखाएं हो जाती है तथा वह अपने अन्तिम स्थान समुद्र तक पहुँचते–पहुँचते वह नहर, नाले के रूप में अनेक रूप धारण कर लेती है।

इसी प्रकार नाद भी एक है, उसमें अनेकात्म का आभास भौतिक विद्याओं को अभिन्नता के कारण होता है। इनेक विद्वान नाद के मुख्य दो भेद मानते है–

1. दिव्य
2. भौतिक

दिव्य नाद को अनहद नाद भी कहते है। वह अविनाशी है सदा से चला आया है और सदैव रहेगा। वह कभी नहीं मिटता तथा प्रत्येक पदार्थ में स्थित रहता है पंच भौतिक जगत के पाँचों भूतो में उसकी अनिवार्यता विद्यमानता है। प्रत्येक वस्तु के कण–कण में वह व्याप्त है। सभी शरीरों में नाद का अस्तित्व अभिप्राय यह है कि दिव्यनाद चेतन और अचेतन सभी में स्थित है।

भौतिक नाद विभिन्न शब्द ध्वनियों के रूप में प्रत्यक्ष सुनाई देता है। हंसने, गाने, रोने, चलने, बोलने आदि में जो शब्द निकलता है। वह भौतिक ही है। बाजे के स्वर, किसी धातु के उठाने, रखने,

गिरने का शब्द गाड़ी आदि के चलने की आवाज आदि सब भौतिक नाद में आते हैं किन्तु यह नाद भी ब्रह्म सम्बन्धी उसी सर्वव्यापक दिव्य नाद के ही अंशभूत है।

यद्यपि दिव्य नाद भी बाह्य जगत में भी सदैव गूंजता रहता है। किन्तु हम उसके अभ्यस्त होने के कारण सुन नहीं पाते है। उसका एक कारण बाहर अनेक प्रकार की ध्वनियों का होने रहना है। यदि हम बाह्य ध्वनियों से अपना ध्यान हटाकर इसे दिव्य ध्वनि में लगा दे तो सहन में ही सुन सकते है।

अनहद नाद "ऊँ"

NASA के वैज्ञानिकों ने अनेक रिसर्च के बाद डीप स्पेस में यंत्रों द्वारा सूर्य में होने वाली एक ध्वनि को रिकार्ड किया। उस ध्वनि को सुना तो वैज्ञानिक भी चकित रह गये, क्योंकि यह ध्वनि कुछ और नहीं बल्कि भारतीय संस्कृति की वैदिक ध्वनि "ओउम" की। सुनने में बिल्कुल वैसी जैसे हम "ओउम" बोलते है।

इस यंत्र का गुणगान वेदो में भी किया गया है। आश्चर्य इस बात का था कि जो गहन ध्वनि मनुष्य अपने कानों से नहीं सुन सकता, उसको ऋषियों ने कैसे सुना। सामान्य व्यक्ति 20 मेगा हर्ट्स से 20000 मेगा हर्ट्स ध्वनियों को ही सुन सकता है। इतना ही हमारे कान की श्रवण शक्ति है। उससे नीचे या उससे ऊपर की ध्वनि को सुनना संभव ही नहीं है। इन्द्रियों की एक सीमा ही उससे कम या ज्यादा ये वे कोई जानकारी नहीं दे सकती।

वैज्ञानिकों का आश्चर्य असल में समाधि की उच्च अवस्था का चमत्कार था, जिससे ऋषियों ने यह ध्वनि सुनी, अनुभव की और वेदों के हर मंत्र से पहले लिखा और महामंत्र बताया।

ऋषि कहते है यह ऊँ की ध्वनि परमात्मा तक पहुँचने का माध्यम है। यह उसका नाम है महर्षि पतंजलि कहते है

तस्य वाचकः प्रणव।।

अर्थात्परमात्मा का नाम प्रणव है। प्रणव यानि ऊँ।

ऋषियों ने कहा था यह ध्वनि ध्यान में ही अनुभव की जा सकती है, लेकिन कानों से सुनी नहीं या सकती। ब्रह्मांड में ही नहीं, यह ध्वनि हमारी चेतना की अंतरतम गहराइयों में भी गूंज नही हैं। जब हम ऊँ का जाप करते है, तब सबसे पहले मन विचारो से खाली हो जाता है। उसके बाद भी जब ये जाप चलता रहता है, तब साधक के जाप की फ्रीक्वेंसी या ब्रह्मांड में गुंजती 'ऊँ' की ध्वनि की फ्रीक्वेंसी के समान हो जाती है उस समय साधक ध्यान की गहराइयों में चला जाता है। इस अवस्था को समाधि या अद्वैत कहा जाता है। इस अवस्था में मन चेतन के साथ लीन हो जाता है।

यह अकेला ऐसा यंत्र है। जिसका उच्चारण एक मूक भी कर सकता है। आप इसे अपनी जीभ हिलाये बिना ऊँ का उच्चारण करने का प्रयास करिए। ऊँ के तीन ताल अ, ऊ और म है, जिन्हें वेदों से लिया गया है। यह तीन वर्ण परम ब्रह्म को दर्शाते हैं।

ऊँ केवल एक पवित्र ध्वनि ही नही, अपितु अनंत शक्ति का प्रतीक है।

ऊँ अर्थात् ऊँ तीन अक्षरों से बना है जो सर्व विदित है अ, ऊ और म

अ का तात्पर्य है आर्विभाव या उत्पन्न होना

ऊ का तात्पर्य है उठना, उड़ना अर्थात विकास

म का तात्पर्य है मौन हो जाना अर्थात् 'ब्रह्मलीन' हो जाना

ऊँ सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति और पूरी सृष्टि का घोतक है। ऊँ धर्म, अर्थ काम, मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों का प्रदायक है। मात्र ऊँ का जप कर साधकों ने अपने उद्देश्य की प्राप्ति कर ली। गोपथ ब्राह्माण्ड ग्रन्थ में उल्लेख है कि जो 'कुश' के आसन पर पूर्व की ओर मुख कर एक हजार बार ऊँ रूपी मंत्र का जाप करता है उसके सब कार्य सिद्ध हो जाते है।

यदि आप ध्वनि की प्रकृति पर ध्यान दे तो आपको पता चलेगा कि यह तभी उत्पन्न होती है जब कोई दो वस्तुएँ आपस में टकराती है।

उदाहरण के लिए– धनुष और प्रत्यंचा, ढोलक और हाथ, दो मुख ग्रन्थियाँ, तट से समुद्र की लहर, पत्तियों से हवा, सड़क पर गाड़ी के पहिये इत्यादि।

संक्षेप में कहा जाए तो हमारे आस–पास की सभी ध्वनियाँ दृश्य और अदृश्य वस्तुओं द्वारा उत्पन्न की जाती है, उनके आस में लड़ने या एक साथ कम्पन्न करने से वायु के कणों की तरंगे उत्पन्न जिनसे ध्वनि का जन्म होता है।

नाद योग का क्रमिक साधन और अभ्यास –

नादयोग को साधना के दो रूप है। एक तो अन्तरिक्ष सूक्ष्म जगत से आने ताली दिव्य ध्वनियों का श्रवण, दूसरा अपने अन्तरंग के शब्द ब्रह्मा का जागरण और उसका अभीष्ट क्षेत्र में अभीष्ट उद्देश्य के लिये परिप्रेषण, यह शब्द उत्थान एवं परिषेषण ओउमकार साधना के माध्यम से ही बन पाड़ता है। साधारण रेडियोयन्त्र मात्र ग्रहण करते है, वे मूल्य की दृष्टि से सस्ते और संरचना की दृष्टि से सरल भी होते है, किन्तु परिप्रेषण यन्त्र, ब्राडकास्ट ट्रांसमीटर मंहगे भी होते है और उनकी संचरना भी जटिल होती है उनके प्रयोग करने की जानकारी भी श्रम साध्य होती है जबकि साधारण रेडियो का बजाना

बच्चे भी जानते है। रेडियो की संचार प्रणाली तभी पूर्ण होती है। जब दोनो पक्षो का सुयोग बन जाये। यदि ब्राडकास्ट की व्यवस्था न हो तो सुनने का साधन कहाँ से बन पड़ेगा? जिस क्षेत्र में रेडियो का लाभ जाना है। वहाँ आवाज को ग्रहण करने की ही नहीं, आवाज को पहुँचाने की व्यवस्था होनी चाहिये।

नादयोग की पूर्णता दोनों ही प्रयोग प्रयोजनों से सम्बद्ध है। कानों के छिद्र बन्द करके दिव्य लोक से आने वाले ध्वनि–प्रवाहों को सुनने के साथ–साथ यह साधन भी रहना चाहिये कि साधक अपने अन्तः क्षेत्र से शब्द शक्ति का उत्थान कर सके। इसी अभ्यास के सहारे अन्यान्य मन्त्रों की शक्ति सुदूर क्षेत्रों तक पहुँचाई जा सकती है। वातावरण को प्रभावित करने परिस्थितियों को बदलने एवं व्यक्तियों को सहायता पहुँचाने के लिए मन्त्र शक्ति का प्रयोग परावणी से होता है। चमड़े की जीभ से निकलने वाली बैखरी ध्वनि तो जानकारियों का आदान–प्रदान भर कर सकती है। मन्त्र की क्षमता तो परा और पश्यन्ति वाणियों के सहारे प्रचण्ड बनती है और लक्ष्य तक पहुँचती है। परावाक का जागरण ओउमकार साधना से सम्भव होता है कुण्डलिनी अग्नि के प्रज्जवलन में भी ओउमकार को ईंधन की तरह प्रयुक्त किया जाता है।

नाद योग के द्वारा चक्र जागरण

नाद योग की साधना विधि–

नाद योग चक्र जागरण के लिये योग सबसे आसान माध्यम है। कुंडलिनी के सात चक्रों में से पाँचवा चक्र शुद्विकरण का केन्द्र है। इसका सम्बन्ध जीवन चेतना के शुद्विकरण व सन्तुलन से है। योगियों ने इसे अमृत और विष के केन्द्र के रूप में भी परिभाषित किया है। विशुद्धि चक्र की साधना से एक ऐसी स्थिति प्रकट होती है। जिससे जीवन में अनेकों विशिष्ट माध्यात्मिक अनुभूतियां आती है। इससे साधक के ज्ञान में वृद्धि होती है। जीवन कष्टप्रद न रहकर आनन्द से भरपूर हो जाता है।

नादानुसंधान ध्यान के पूर्व का अभ्यास है। यह ध्यान के लिये साधक को तैयार करता है। अनाहत नाद को सुनना इसका उद्देश्य ही यह अन्तर्यात्रा में सहायक है। ध्यान मुद्रा में बैठकर चिन् मुद्रा धारा कर आँखे बन्द व शरीर शिथिल रखे। धीरे से श्वास भरे व धीरे–धीरे ऊ–कार का उच्चाचरण करते हुये श्वास छोड़े। अपना होश कमर के नीचे ले जाएं। कमर के नीचे के भाग में कम्पन्न व मालिश को महसूस करें। इसके नौ चक्र करे। ध्यान मुद्रा में बैठकर चिन्मय मुद्रा धारण करें। आंखे बन्द रखे शरीर को शिथिल करें। धीरे से श्वास भरे व ऊ–कार का उच्चरण करते हुये धीरे–धीरे श्वास छोड़े। पेट, छाती, व पीठ पर ध्यान ले जाएं। गर्दन के नीचे के भाग में कम्पन्न व मालिश को महसूस करें। इसके नौ चक्र करें। ध्यान मुद्रा में बैठकर आदि मुद्रा धारण करें। आँखें बन्द रखे व शरीर को शिथिल करे। धीरे से श्वास भरे व म–कार का उच्चरण करते हुये श्वास छोड़े। सिर में कम्पन्न महसूस करें। इसके नौ चक्र करें। ध्यान मुद्रा में बैठकर ब्रह्म मुद्रा धारण करें। आँखें बन्द रखे व शरीर को शिथिल

करे। धीरे से श्वास भरे व ओम का उच्चारण करते हुये श्वास छोड़े। पूरे शरीर में कम्पन्न महसूस करे। इसके नौ चक्र करे। अ, ऊ, म व ओम का उच्चारण अलग–अलग इस तरह करे कि शरीर में सूक्ष्म कम्पन्न उत्पन्न हो सके। शरीर के प्राकृतिक कम्पन्नों के अनुरूप उच्चारण होने पर ही अनुनाद उत्पन्न होता है इसलिये इन ध्वनियों को उच्चारण इस तरह करें कि शरीर में अनुनाद उत्पन्न हो सके। इस तरह के अनुनाद उत्तेजक का कार्य करते है एवं अनुनाद के बाद का मौन हमारे होश को बढ़ाता है जो सूक्ष्म तनावों को समाप्त करता है। यह अभ्यास ध्यान में सहायक है। इसको करने से शरीर में लयबद्धता बढ़ती है। यह होश बढ़ाता है। इसको करने से शरीर में अराजकता कम होती है इसको करने से गहरा ध्यान होता है।

इठ प्रदीपिका के अनुसार नादानुसंधान को चार अवस्था बतलाई गई है–

आरम्भश्च घटश्चैव तथा परिचयोऽपि च।

निष्पत्ति सर्वयोगेषु स्यादवस्या चतुष्टयम्।।

हठप्रदीपिका 4/69

अतः नादानुसंधान की चार अवस्थाएं निम्नवत् हैं– आरंभावस्था, घटावस्था, परिचयावस्था और निष्पत्ति अवस्था

1. आरंभावस्था–

इस अवस्था में ब्रह्म ग्रन्थि का भेदन होता है। जिसके फलस्वरूप आनन्द का अनुभव होता है। अर्थात् अर्थात शरीर में विचार शून्यता और विचित्र प्रकार की ध्वनि अर्थात असाधारण झण– झण रूप अनाहत शब्द सुनाई पड़ता है। (तब वह) योगी दिव्य देह वाला, ओजस्वी दिव्य गंध वाला, अरोगी, प्रसन्नचेतस एवं शून्यचारी हो जाता है। इस स्थिति में साधक के हृदय में योग ज्ञान का प्रकाश भर जाता है। यह योग साधना की दिशा में प्राणायाम, मुद्राबन्ध, चक्रभेदन और कुण्डलिनी के प्रबोधन द्वारा आरम्भावस्था कहलाती है।

इसमें प्राण वायु, अपानवायु, नाद और बिन्दु को सम्मिलित करके विशुद्ध चक्र में प्रवेश करती है।

2. घटावस्था –

नादानुसंधान की दूसरी अवस्था में योगी के आसन में दृढ़ होने पर विष्णु ग्रन्थि के भेदन से (जव) निबंध वायु का सुषुम्ना में संचार होता है। तब अतिशून्य अर्थात् कपाल कुंवर में परमानंद का सूचक 'भेरी' (एक प्रकार का वाद्ययंत्र) एवं आघात जन्य (जैसे) शब्द सुनाई पड़ते है। तब योगी–ज्ञानी एवं देवतुल्य हो जाता है। जिससे योगी पूर्ण निमग्न हो उठता है।

3. परिचयावस्था–

तृतीय अवस्था में उस भ्रूमध्याकाश में ढोल की ध्वनि जैसे नाद सुनाई देता है और तब प्राण, सभी सिद्धियाँ प्रदान करने वाले महाशून्य (अंतराकाश) में पहुँचता है।

चित्रानन्दं तदा जित्वा सहजानन्दसम्भवः।

दोषदुःख जरा व्याधिसुधानिद्रा विवर्जितः ।। 4/75

तव चित्तवृत्ति के आनन्दानुभव के ऊपर उठकर दोष दुःख जश–व्याधि–सुधा–निद्रा आदि से रहित सहजानन्द (परमानन्द) की स्थिति प्राप्त होती है।

इस अवस्था में साधक को मर्दल संज्ञक वाद्य विशेष की ध्वनि सुनाई देती है। साधक को चाहिये उस ध्वनि को पहिचानने का प्रयत्न करे और महाशून्य में वायु का संयम भी करे तो उसे सभी प्रकार की सिद्ध हो सकती हैं।

अभिप्राय यह है कि जब मर्दल संज्ञक वाद्य विशेष का शब्द सुनाई देने लगे, तब भैहो के मध्य जो आज्ञा चक्र का स्थान है, वही आकाश स्वरूप महाशून्य कहा जाता है। वह अणिमादि अष्टसिद्धियों का आश्रय स्थान भी है। यहाँ मुख्य प्राणवायु को स्थापित करें। यह स्थिति कुम्भक के द्वारा सम्पन्न हो सकती है।

ऐसी करने से चिप्त में अत्यन्त आनन्द उत्पन्न होकर दुःख, सन्ताप, भय, भूख, प्यास, निद्रा, रोग, बुढ़ापा आदि कुछ भी नहीं व्यापता और साधक को अणिमादि आठो सिद्धियाँ तथा समस्त एंश्वर्यो की उपलब्धि सहज हो जाती है। उसके साथ ही मुख्य प्राण स्वयं ही रुद्रगन्थि का भेदन कर रुद्र के धाम रूप भौहों के मध्य (आज्ञा चक्र) में स्थिति हो जाता है।

4. निष्पत्यावस्था–

निष्परित अवस्था में जब वायु रुद्र ग्रंथि का भेदन कर आज्ञाचक्र स्थिति शिव के स्थान में पहुँचता है। तब (साधक को) अच्छी तरह मिलाए हुए स्वर वाली वि0 वीणा का झंकृत शब्द सुनायी पड़ता है।

तब चिप्त सर्वथा एकाग्र होकर समाधि संज्ञक बनता है और तब योगी सृष्टि–संहार कर्ता ईश्वर के समान हो जाता है।

आहद नाद और अनाहत नाद की अत्यन्त सूक्ष्म प्रवाह, प्रवाह श्रंखला, को नादयोग के आधार पर अनुभव में लाया जाता है।

वस्तुतः यह राजयोग की सर्वोच्च स्थिति है। जिस अवस्था में चिप्त की अत्यन्त एकाग्रता हो जाएं, वही राजयोग है। ऐसी अवस्था में साधक को किसी भी अन्य विषयों का ज्ञान नहीं रहता और वह निर्विकार समाधि में लीन हो जाता है। जिसकी आत्मिक शक्ति जितनी ऊँची होगी वे उतने ही सूक्ष्म शब्दों को सुनेंगे।

नादयोग की निष्पत्ति अवस्था ही अन्तिम अवस्था है। इससे ऊपर कुछ नही है। जो साधक इस स्थिति को प्राप्त कर लेता है। उसमें ईश्वर के समान सामर्थ्य शक्ति उत्पन्न हो जाती है। वह समस्त ऐश्वर्यों से सम्पन्न तथा सभी कार्यो में पूर्ण समर्थ हो जाता है।

यद्यपि नाद योग के अभ्यासी को आरम्भ से ही एक अलौलिक आनन्द का अनुभव होने लगा है और फिर वह उसी में रम जाता है।

हठयोग के प्रवर्तक योगीराज आदिनाथ ने भी इस विषय में बहुत अनुंसाधन किये और अन्त में उन्होंने **"नादयोग"** के नाम से प्रयुक्त एक विशिष्ट योग–साधना को खोज निकाला, यह साधना हठयोग की अपेक्षा बहुत सरल और शीघ्र फल देने वाली है। श्री आदिनाथ का भी यह मत रहा है। कि नादयोग के बिना हठयोग भी निरर्थक है यह तथ्य हठयोग प्रदीपिका के ही निम्न उद्दरणों से सहज ही स्पष्ट हो जाता है–

अस्तु वा मास्तु वा मुक्तिरत्रैवाखण्डितं सुखम्।

लयोद् भर्वामदं सौख्यं राजयोगदवाप्यते।। 4/78 हठयोग प्रदीपिका

राजयोगमजानन्तः केवलं हठर्कार्मणः।

एतानभ्यासिनी मन्ये प्रयास फलवर्जितान्।। उ4/79 हठयोग प्रदीपिका

अर्थात्– अन्य कुछ भी हो या न हो (मुक्ति मिले या न मिले) नाद के अनुसन्धान में अखण्ड सुख है और लय से उत्पन्न होने वाला यह सुख राजयोग से ही प्राप्त होता है। राजयोग को न जानकर केवल हठयोग की क्रिया में ही लगे रहने वाले अभ्यासी के परिश्रम को मैं निष्फल मानता हूँ।

बताया जा चुका है कि राजयोग नादयोग की निष्पत्ति अवस्था सम्पन्न होने पर उपलब्ध हुई स्थिति को ही कहते है। हठयोगकार ने राजयोग की प्राप्ति के एक सरल उपाय पर भी प्रकाश डाला है–

उन्मन्यवाप्तये शीघ्रं भ्रूध्यानं मम सम्मतम्

राजयोगपदं प्राप्तुं सुखोपायोडन्य चेतसाम्।

सद्यः प्रत्ययसन्धायी जायते नादजो लयः।। 4/80 हठयोग प्रदीपिका

अर्थात् उन्मयी अवस्था और राजयोग के पद तक शीघ्र पहुँचने के लिए भौंहो के मध्य ध्यान करना ही मेरे मन में अल्पमति वाली के लिये सरल उपाय है तथा नाद से उत्पन्न चित्त का यह शीघ्र ही प्रत्यय का संधान करने वाला होता है।

नादानुसन्धान की अन्तिम अवस्था (निष्पत्ति अवस्था) सिद्ध होने पर जो चित्र में एकाग्रता आती है उसी को लय कहते है। उसमें समाधि की अवस्था उत्पन्न हो जाती है।

नादानुसन्धान समाधिभाजां

योगीश्वराणां दृदि वर्धमानम् ।

आनन्दमेकं वचसाम्य गम्यं

जानाति तं श्री गुरुनाथा एकः।।

वस्तुतः नाद से उत्पन्न होने वाला आनन्द वर्णनातीत है। इसका अनुभव कोई विरले अनुभवी सन्तो को और ज्ञानी गुरूओं को ही हो पाता है। इसीलिए इसके साधनाभ्यास की विधि अनुभवी सद्गुरु से सीखना श्रेयस्कर समझा जाता है।

हठयोग प्रदीपिका कार आगे कहते है–

कर्णो विधाय हस्ताभ्यां ये शृणोति ध्वनिं मुनिः।

तत्र चित्रं स्थिरी कुयधिावतृ स्थिर पदं ब्रजेत।। 4/82 हठयोग प्रदीपिका

कानों को हाथो से ढंक कर जो साधक अनाहत ध्वनि को सुनने का अभ्यास करता है, वह वहाँ चिज के स्थिर हो जाने पर स्थिर पद को ही प्राप्त हो जाता है।

नादानुसन्धान के अभ्यास से मन में स्थिरता आने लगती है यह निश्चय है कि जब तक मन स्थिर नही हो पाता, तब तक किसी प्रकार की सिद्धि नहीं हो सकती है। इस विषय में भी हठयोग प्रदीपिका में कहा है–

अभ्यस्यमानों नादाऽयं बाह्मयातृणुते ध्वनिय्।

पमाद्विक्षेयमखिलं जित्वा योगी सुखी भवेत्।। 4/83

अर्थात् अभ्यास हो जाने पर यह नाद बाजा शब्द का आवरण कर लेता है, जिससे योगी पक्ष भर में ही सब विक्षेपों पर विजय प्राप्त करके सुखी हो जाती है।

जब बाहरी शब्द भीतर प्रविष्ट नहीं करेगे तब तो चित्त का एकाग्र हो जाना स्वाभाविक है।

बद्धं तु नादबन्धंन मनः संत्यक्तचापलम्।

प्रचाति सुतरां स्थैर्य दित्रपक्षः खगो यथा।। 92

सर्वचिन्तां परित्यज्य सावधानेन चेतसा।

नाद एवानुसन्धेयो योग साम्राज्य मिच्छता ।। 93

विषय रूपी उद्यान में मदोन्मय हाथी के समान घूमते हुये मन को वश में लाने के लिए नाद रूपी तीएण अंकुश ही समर्थ है। क्योंकि नाद के बन्धन में बंधने पर मन अपनी चंचलता का पूर्ण रूप से त्याग कर करे हुए पक्षी के समान अत्यन्त निश्चलता को प्राप्त हो जाता है। उस समय योग समस्त चिन्ताओं से मुक्त तथा सावधान चित्त होता है।

योगदर्शन ने संप्रज्ञात योग के चार लक्षण कहे है– वितर्क, विचार, आनन्द और अस्मिता। इन विचारानुगत भेदों के अनुसार स्थूल पदार्थो का साक्षात करने के पश्चात् सूक्ष्म तन्मात्राओं के भावनात्मक विचार से तथा उसी के माध्यम से समाधि की अवस्था उत्पन्न होती है।

नादयोग में हठयोग के समस्त साधनों का स्वतः ही अन्तर्भाव हो जाता है क्योंकि हठयोग के द्वारा जो भी कुछ प्राप्त किया जा सकता है वह नादयोगी के लिये सुगम है इस सम्बन्ध में हठयोग प्रदीपिका में कहा गया है–

सर्वे हठलयोपाया राजयोगस्य सिद्वये।

राजयोगसमारूटः पुरुषः कालवभ्यकः 114/103

तत्वं बीजं हठः क्षेत्र मौदासीन्यं जलं त्रिभिः

उन्मनी कल्पलतिका सद्य एव प्रवर्ततं 114/104

अर्थात् हठ और लय के समस्त उपाय राजयोग द्वारा स्वतः सिद्ध हो जाते है। जो साधक राजयोग पर समारुढ़ होता है, वह काल की वंचना करने मे भी समर्थ है। तत्व बीज है हठ क्षेत्र है और उदासीनता जल है, इन तीनों के संयोग से उन्मनी कल्पलता शीघ्र उत्पन्न एवं प्रवृत्त होती है।

नादयोग के द्वारा समाधि को प्राप्त हुआ योगी सभी अवस्थाओं और चिन्ताओं से मुक्त हो जाता है। उसे गन्ध, रस, रुप, स्पर्श, शब्द तथा अपने पराये का ज्ञान भी नहीं रहता। शीत, उष्ण, सुख–दुःख के अनुभव से भी मुक्त रहता है। उसे मान–अपमान की चिन्ता भी नही रहती।

कर्मफल रुप पाप–भोग के बिना किसी भी जीव को छुटकारा नहीं मिल पाता। किन्तु नादयोगी पाप फल का भोग किये बिना ही पवित्र ही जाता है। हठयोग प्रदीपिका के ही अनुसार–

सदा नादानुन्धानात् श्रीयन्ते पापसञ्चयाः

निश्ञ्जने विलीयेते निश्चितं चिन्मारूतौ ।। 4/105।।हठयोगप्रदीपिका

अर्थात् सदैव नादानुसन्धान में लगे रहने वाले योगी के संचित पाप समूह क्षीण हो जाते है और चित्त तथा वायु दोनों ही लय को प्राप्त हो जाते है।

इस प्रकार नाद योग सबसे ऊँची साधना है, उसकी समता कोई अन्य साधना नहीं कर सकती। जो साधक समस्त सिद्धियों युक्त मोक्ष के आकांक्षी हो, उन्हें अवश्य ही नादयोग का अभ्यास करना चाहिये।

निष्कर्ष –

नादयोग ध्यानकी अवस्था को प्राप्त करने की सबसे सरलतम साधना है। इसको कभी भी कहीं भी किया जा सकता है जैसा कि हमने देखा इसके द्वारा विभिन्न प्रकार के लाभ प्राप्त किए जा सकते है। इससे हमारे दैनिक जीवन पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। यह हमारे सामाजिक जीवन पर भी प्रभाव डालता है। यह शारीरिक मानसिक एवं आध्यात्मिक लाभ प्रदान करता है।

हम सभी को प्रतिदिन कम से कम 50 मिनट नादयोग का अभ्यास करना चाहिये जैसे–जैसे हम नादयोग साधना में आगे बढ़ेगे हर जगह यह नाद ईश्वर के होने का आभास देगा एवं एक अच्छे साथी के रूप में नाद हमेशा आपके साथ रहेगा।

प्रसन्नचित्त और सदाचारी पुरुष को स्वर्ग का सुगम प्रशस्त और समीप का मार्ग मिल जाता है वह सबका मित्र होता है वह न किसी से द्वेज करता है, न कोई उससे द्वेष करता है। उसका चेहरा सदा हंसता हुआ होता है। क्रोध या लोभ उसके पास फटकने नहीं पाते। धर्मवीरता और नैतिक धीरता में वह किसी से पीछे नहीं रहता।

नादब्रह्म–शब्दब्रह्म की विद्या का अध्यात्म क्षेत्र में अपना महत्वपूर्ण स्थान है। आत्मोकर्ष के लिये किये जाने वाले अनेकानेक उपक्रमों में से सर्वाधिक महत्वपूर्ण इसे ही माना जाता है। शब्द शक्ति को चेतन ईधन माना गया है। जब इस ईंधन की पूर्ति में कमी होने लगती है तो व्यक्ति का समूचा व्यक्तित्व ही असंतुलित हो जाता है।

मनुष्य जाति को भगवान ने अनेक दिव्य वरदान दिए है उनमें से नादयोग भी है। नाद की विशिष्ट ध्वनि तरंगे मानसिक व शारीरिक रोगों के निवारण में चमत्कारी लाभ प्रस्तुत कर रही है।

नाद का उपयोग वर्तमान में चिकित्सा, शिक्षा आदि सभी क्षेत्रों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने को तैयार है। बस आवश्यकता है तो सिर्फ इसके गहराई में जाकर चिन्तन की। जिससे कि समस्त शक्तियों का विकास हो सके और हमारे मानव समाज को इसका सम्यक लाभ मिल सके।

अतः नादानुसंधान में सम्पूर्ण सृष्टि को चलायमान करने का सामर्थ्य विद्यमान है। यदि देखा जाये तो नाद शक्ति से समस्त ब्रह्मांडीय चेतना कार्यरत हैं।

इस प्रकार निष्कर्ष निकलता है कि इस नाद के माध्यम से मनुष्य इस प्रह्माण्ड में व्याप्त समस्त सिद्वियों शक्तियो एवं कैवल्थ तक की प्राप्ति कर सकता है।

यदि नाद का सम्यक उपयोग किया जाये तो सम्पूर्ण जगत में होने वाली समस्त क्रियाओं की जानकारी सहजता से ही पाई जा सकती है ऐसा दिव्य नादानुसंधान का प्रभाव है।

12.6 सारांश

हमारी इन्द्रियाँ हमारे मन को वासनाओं से जोड़ने का साधन है। इस प्रकार यह मन को विषय वस्तुओं में उलझाये रखती है। प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, नादानुसंधान इन्द्रियों पर नियंत्रण प्राप्त करने का अभ्यास है। प्रत्याहार द्वारा हम यह सीखते है कि हम जैसे चाहे वैसे इन्द्रियों का उपयोग करें न कि हमारी इन्द्रियाँ चाहें जैसे हमारे मन का उपयोग करें। प्रत्याहार के अभ्यास से चित्त की चंचलता नष्ट होती है, जिससे एकाग्रचित्त होकर किसी भी कार्य को करने की क्षमता में वृद्धि होती है। अतः मन संयम के लिये यह महत्वपूर्ण अभ्यास है। प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, नादानुसंधान का अभ्यास से साधक काम, क्रोध, मद, लोभ आदि पर विजय प्राप्त करके वह समाधि की ओर अग्रसर हो जाता है।

12.7 अभ्यास प्रश्न

1. धारणा से आप क्या समझते है? पाँच धारणाओं का वर्णन करें।
2. प्रत्याहार की परिभाषा देते हुए विस्तारपूर्वक चर्चा कीजिए।
3. प्रत्याहार क्या है? जीवन में इसके महत्व को रेखांकित कीजिए।
4. ध्यान के महत्व का वर्णन करें।
5. नाद से आप क्या समझते है? इनके महत्व को बताइए।
6. नाद के स्वरूप का वर्णन करते हुये इसके प्रमुख भेदों पर प्रकाश डालिये।
7. ध्यान क्या है? स्थूल ध्यान का विस्तार से वर्णन करें।
8. ध्यान की परिभाषा बताते हुये ध्यान के प्रकारों पर विस्तारपूर्वक चर्चा कीजिये।

12.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

11. घेरण्ड संहिता – स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती , योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर बिहार, भारत

12. आसन , प्राणायाम, मुद्रा बंध – स्वामी सत्यानन्द सरस्वती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर बिहार, भारत

13. योगासन विज्ञान – धीरेन्द्र ब्रम्हचारी, धीरेन्द्र योग प्रकाशन, नई दिल्ली

14. हठयोग प्रदीपिका– स्वात्मारामकृत संस्करणकर्ता – स्वामी दिगम्बर जी , कैवल्य धाम लोनावाला

15. योग विज्ञान – स्वामी विज्ञानान्द सरस्वती, योग निकेतन ट्रस्ट मुनि की रेती, ऋषिकेश, उत्तराखण्ड